

ब्रह्म-स्तुति

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी

'ब्रह्म-स्तुति'

•

प्रवचन :

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालाबार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो.: 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 09837219460

●

प्रथम संस्करण : 1100
आराधन महोत्सव
19 नवम्बर 2015

●

●

मूल्य : ₹ 85/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम, वाराणसी - 221001
फोन : (0542) 2392337

प्रकाशकीय

परमपूज्य महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजीने श्रीमद्भागवत-दशम स्कन्ध पर अत्यन्त ही सार-गर्भित सरस प्रवचन किये थे।

उस प्रवचनके आरम्भके दो प्रवचनोंसे आप 'भागवत-विमर्श' नामक पुस्तिकाओंसे परिचित हो चुके हैं।

'उनकी कृपा' ब्रह्म-स्तुतिके एक मात्र श्लोक पर व्याख्या भी पूर्व प्रकाशित है।

प्रसन्नता है कि सम्पूर्ण ब्रह्म-स्तुतिका लेखन साध्वी कञ्चनजी द्वारा हुआ और वह आराधन उत्सवके पावन पर्व पर आपके कर-कमलोंमें शोभायमान है।

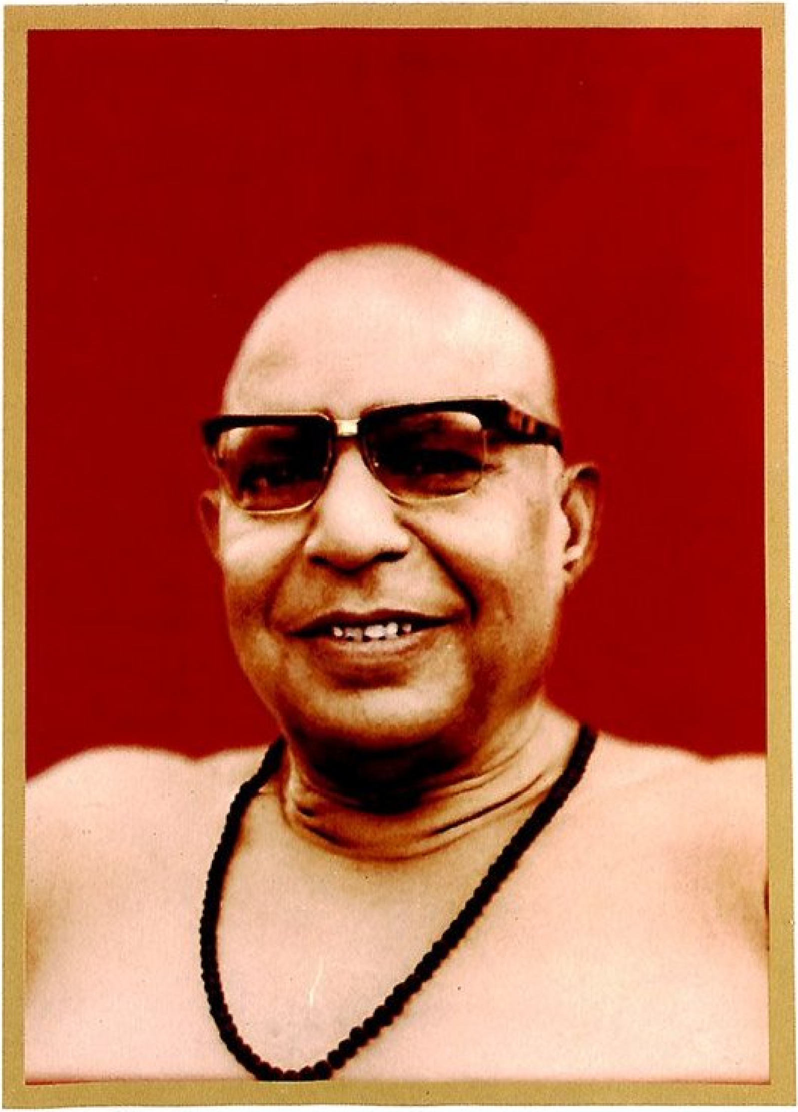
ब्रह्माजी द्वारा भगवान् कृष्णकी मनोहारी स्तुति, उस पर पूज्य महाराजश्रीकी कर्ण-प्रिय-अमृतरसवाणी अलौकिक आनन्द प्रदान करनेवाले बन पड़े हैं।

आप भी इसका रस लें।

-सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

मुम्बई / वृन्दावन

अनुक्रमणिका



स्वामीश्री अखण्डानन्दजी सरस्वती

'ब्रह्म-स्तुति'

'पृष्ठभूमि'

: 1 :

प्रसंग है कि भगवान् श्रीकृष्णने ग्वालों और बछड़ोंको अघवदन रूप मृत्युसे बचाया। अघासुरमें जो प्रवेश है, यही मृत्यु है। जिसे आप लोग मृत्यु मानते हैं, उसका नाम मृत्यु नहीं है। हमने मृत्युकी बहुत खोज की थी। जो वस्तु है, उसकी मृत्यु नहीं होती। यह शरीर जब जलाते हैं तो जितनी मिट्टी शरीरमें है, उसका वजन घटता नहीं। मिट्टी-मिट्टीमें, पानी-पानीमें, गर्मी-गर्मीमें, हवा-हवामें, आकाश-आकाशमें-पञ्चभूतकी मृत्यु नहीं होती। वासनावान् ज्ञानग्रन्थि अन्तः-करणकी मृत्यु नहीं होती। साक्षी आत्माकी मृत्यु नहीं होती। परब्रह्म परमात्माकी मृत्यु नहीं होती। मृत्यु नामकी चीज सृष्टिमें कहीं है ही नहीं। घड़ेकी शकल फूट गयी तो क्या घड़ेकी मृत्यु हो गयी? अरे, मिट्टी-पानी तो ज्यों-का-त्यों है। शकल बदलनेका नाम मृत्यु नहीं है।

तो मृत्य क्या है?

प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि।

यह जो अपने जीवनमें प्रमाद है, यही मृत्यु है।

मृत्यु बाघकी तरह किसीको नहीं खाती है। यह जो हम ईश्वरको भूलते हैं, अपने स्वरूपको भूलते हैं, इसीका नाम मृत्यु है। तो कौन मर गया? जिसने प्रमादसे अपने अन्तःकरणको गन्दा कर दिया।

तो जब भगवान्‌ने ग्वाल-बालों और बछड़ोंकी अघासुरसे रक्षा की तो कहा कि चलो, नदी पर चलें-

सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत्। (भाग. 10.13.4)

ग्वालबालोंको लेकर भगवान् यमुनाजीके तटपर आये।

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः

श्रीकृष्ण बोले, 'मेरे प्यारे सखाओ! यह क्या रमणीय पुलिन है। आओ, बाहर छोड़ो, वृत्तिके तटपर अन्तर्मुख हो जाओ। यहाँ अपनी क्रीड़ाके लिये सारी सम्पत्ति है। कैसी मृदुल, स्वच्छ बालुका है। सरोवरमें कमल खिले हुए हैं। भँवरे गुँजार कर रहे हैं। भ्रमर-गुफा भी है यहाँ। और, पक्षी कलरव कर रहे हैं। विहंगम-मार्ग भी है यहाँ भला।'

भगवान्‌ने कहा कि देखो, हम लोगोंको भूख लग गयी है। आओ यहीं भोजन करें। बछड़े भी जल पीकर तृण चरें। योगमें भोग होना चाहिए। ग्वालोंने कहा, 'ठीक'। अनुशासन मानते हैं। अब यह हुआ कि छींके खोलो।

देखो, घरसे जब सब ग्वाल-बाल चले तो भोजनका छींका लेकर चले थे और अघासुरके मुँहमें घुस गये, मर गये और फिर जिन्दा हो गये। परन्तु, उनके भोजनका क्या हुआ? किसीने कहा कि सब ग्वाल-बाल जब वनमें जाकर क्रीड़ा करने लगे तो अपने-अपने छींके उन्होंने पेड़ों पर टाँग दिये थे। उनको लेकर वे अघासुरको मुखमें नहीं गये थे। किसीने कहा कि जो भगवान् मुर्देको जिन्दा कर सकता है, वह क्या विषको अमृत नहीं बना सकता? अरे, छींके लेकर अघासुरके मुखमें चले गये तो क्या हुआ? जब भगवान्‌की दृष्टि पड़ गयी तो सब अमृत हो गया।

मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा।

(10.13.7)

देखो भाई, भगवान्‌के पास जो चीज होती है, वह मुक्त होती है, बद्ध नहीं होती और तुम्हारे छींके बँधे हुए हैं। अब इनको भी मुक्त कर दो, खोल दो। भगवान्‌के पास कोई वस्तु जड़ नहीं होती। बड़े-बड़े

महात्मा थे। उन्होंने तपस्या किया। तपस्या काहके लिए की? हम ग्वाल-बालोंके हाथमें कैसे पड़ें। उनके हाथमें कैसे आवें। तो भगवान्‌ने कहा कि जाओ तुम लोग छींका बन जाओ, हमारे ग्वाल-बाल तुमको हाथमें लेंगे। बोले कि महाराज, कुछ सेवा भी मिले। 'हाँ वे अपने-अपने छींकेमें भरकर जो वस्तु लावेंगे, सो हम खायेंगे।

नारायण, भगवान्‌की लीलामें जड़-चेतनका भेद नहीं होता।

जो चेतन कहँ जड़ करहिं, जड़हिं करइ चैतन्य।

ये भगवान् हैं।

अब तो छींकोंका भाग्य जगा। उन्होंने अपने प्रेमसे अपनी वस्तुको नीची कर दिया, अमृतमय कर दिया। वर्णन है कि श्रीकृष्णके चारों ओर भण्डाकारमें ग्वाल-बाल बैठ गये। ऐसे बैठे कृष्ण कि सबको मालूम पड़े कि मुँह हमारी ओर। माने सबका मुख अभिमुख है। सबकी आँखें प्रेमसे मिली हुई है। ऐसी उनकी शोभा हुई जैसे कमल-कर्णिकाके दलों पर ये सब-के-सब ग्वाल-बाल बैठे हों। अब इनकी थाली देखो-

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरङ्कुरैः फलैः।
शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः।।

(10.13.9)

किसीने फूलका पत्तल बनाया, किसीने कमल-दलका बनाया, कोई पात ही ले आये, किन्हीं-किन्हींने अंकुरसे सजा दिया, किसीने फल ऐसे जमा दिये कि उनके ऊपर रखकर खा सके। कोई अपना छींका ही लेकर बैठ गये कि उसीमें खा लेंगे। किसी-किसीने पेड़की छाल फैला ली। कोई-कोई पत्थर पर ही खाने लगे। न गिलासकी जरूरत, न लोटेकी जरूरत, न थालीकी जरूरत।

अब खाते समय सब ग्वाल-बाल अपनी-अपनी रुचि बतावें-कोई कहे कि हमको बड़ा बहुत अच्छा लगा, कोई कहे कि कढ़ी बहुत अच्छी लगी, हमारी खीर बहुत अच्छी थी। जबतक एक खाने लगता,

तबतक पत्तल परसे उठाकर दूसरा खाजाता है। अरे, वे तो एक दूसरेके हाथसे छीन कर खा लेते हैं। क्योंकि प्रेममें अपना-पराया तो होता नहीं और प्रेम उच्छिष्ट-अनुच्छिष्टका भी विवेक नहीं करता।

हसन्तो हासयन्तश्च।

परस्पर हँसी-मजाक करते भोजन कर रहे हैं। **'यज्ञभुग् बालकेलिः'**-हैं तो ये यज्ञभोक्ता भगवान्। कितने बड़े आश्चर्यकी बात है कि जो यज्ञमें बड़े-बड़े आवाहन-मन्त्र पढ़ने पर भी साक्षात् आकर भोजन नहीं करते, वे ग्वाल-बालोंके साथ बैठकर हँसी-मजाक करते हुए आनन्दसे भोजन कर रहे हैं। उनके बायें हाथमें दही-भात है और वे दाहिने हाथसे ले-लेकर खा रहे हैं। वेणुको फेंटेमें लगा रखा है। ब्रह्माजीने यह सब देखा तो आश्चर्यचकित हो गये। उनकी दृष्टि उन ग्वाल-बालों पर पड़ी जो श्रीकृष्णके साथ भोजन करते हुए अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे। लेकिन वहाँ तो जात-पाँत और जूठन आदिका कोई विवाद ही नहीं था। ब्रह्माजी यह देख विभ्रममें पड़ गये। अरे, इस प्रकारका आचरण तो वेद-विरुद्ध है।

इधर ब्रह्माजीके ऐसा विचार आया और उधर बछड़ोंको हरी-हरी घास चरनेका लोभ हो गया। 'तृणलोभिता' और वे जंगलमें घुस गये। अब ग्वाल-बालोंकी दृष्टि भी श्रीकृष्णकी ओरसे हटकर बछड़ोंके पीछे चली गयी। वे उनको लौटानेकी चिन्तामें पड़ गये और उन्होंने भोजन करना छोड़ दिया। श्रीकृष्णने कहा कि अरे ग्वाल-बालों तुम भयको दूर कर दो। 'मित्राण्याशान्माविरमत'-मेरे मित्रो, तुम भोजन मत छोड़ो, मैं अभी बछड़ोंको लेकर आता हूँ। यह कहकर श्रीकृष्ण चले गये- 'सपाणिकवलो ययौ'।

देखो, जब बछड़े तृणके लोभमें पड़े तब उनको भगवान्का वियोग हुआ और जब ग्वाल-बाल बछड़ोंकी चिन्तामें पड़े तब उनको श्रीकृष्णका वियोग हुआ। जबतक मन श्रीकृष्णमें रहता है, तबतक उनका वियोग नहीं होता।

अब भगवान् श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंसे तो भोजन न छोड़नेके लिये कहा और स्वयं हाथमें दही-भातका ग्रास लिये चल पड़े। ब्रह्माजीने सोचा कि यह तो परमात्मा ही बालक बना हुआ है तो इसकी कोई और मञ्जु महिमा देखनी चाहिए-'द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि' देखें इनके अन्दर क्या शक्ति है? इस उद्देश्यसे उन्होंने वनमें घुसे बछड़ोंको पकड़कर दूसरी जगह पहुँचा दिया और जब कृष्ण ग्वाल-बालोंके पाससे चले गये तब उनको भी गुफामें सुला दिया।

इधर श्रीकृष्णके ढूँढ़ने पर जब न तो कहीं बछड़े मिले और न ग्वाल-बाल, तब उन्होंने दिव्य-दृष्टिसे जान लिया कि यह सब ब्रह्माकी करतूत है-'सर्वं विधिकृतम्'। वे मेरी लीला देखना चाहते हैं। लेकिन लीला किसकी दिखायी जाये। ब्रह्माको सृष्टि-विधानकी चातुरी ज्ञात है। वे सृष्टि बनानेमें बड़े निपुण हैं। किन्तु पहलेसे प्रकृति रहती है, पञ्चभूत रहते हैं, अन्तःकरण रहते हैं, उनकी कर्मवासना रहती है, उनका प्रारब्ध रहता है, जीव रहता है। भगवान्ने मन-ही-मन कहा कि ब्रह्माजी, तुम पुर्जे जोड़-जोड़कर बढ़िया-बढ़िया चीजें बनाते हो। लेकिन आज देखो मैं सृष्टि बनाता हूँ। इसमें न तो पहलेसे जीव है, न प्रकृति है, न पहलेसे कर्म है, न अन्तःकरण है-कुछ भी मसाला नहीं हैं। फिर भी मैं अकेला ही अनेक रूप ग्रहण करता हूँ। और, भगवान् श्रीकृष्णने अपने संकल्पमात्रसे ऐसी विश्वसृष्टि बना दी, जो एक वर्षतक चलती रही। इस अद्भुत सृष्टिको देखकर बलरामजीके मनमें शंका हुई तो भगवान्ने उनको संक्षेपमें बता दिया कि ऐसा-ऐसा हुआ है।

जब ब्रह्माजी बछड़ों और ग्वाल-बालोंको छिपाकर अपने लोकमें गये तब वहाँ पहलेसे ही एक ब्रह्मा मौजूद थे। सो द्वारपालोंने उन्हें नकली जान उनका तिरस्कार कर दिया। उन्हें भीतर घुसने ही नहीं दिया। वहाँसे पुनः व्रजमें आये तो यह देख और आश्चर्यमें पड़ गये कि

उनके छिपाये ग्वाल-बाल और बछड़े अपने स्थानपर ज्यों-के-त्यों अचेत पड़े हैं। परन्तु, उन्हींके समान दूसरे ग्वाल-बाल और बछड़े पहलेकी तरह ही क्रीड़ा कर रहे हैं। ब्रह्माजीके तो आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उसी क्षण क्रीड़ा करते वे सब ग्वाल-बाल और बछड़े ब्रह्माजीको श्रीकृष्णके रूपमें दिखायी पड़े। यह सब देखकर ब्रह्माजी चकित हो गये, उनका तेज फीका पड़ गया, और वे एक कठपुतलेकी तरह मौन होकर खड़े हो गये। सारे घटना क्रमका चिन्तन करो कि क्या आश्चर्य! क्या आश्चर्य!!

अद्वयं च वत्सान् विचिन्वत्

जो अद्वितीय है, वह बछड़ोंको ढूँढ़ रहा है।

एकं च सखीन् विचिन्वत्

अकेला होकर भी अपने सखाओंको ढूँढ़ रहा है।

जो अगाध-बोध होगा, वह ढूँढ़ेगा नहीं। उसको तो सब मालूम है। जो अद्वितीय होगा, उसमें बछड़े कहाँसे होंगे! जो अकेला होगा, उसके सखा कहाँसे होंगे? तो जो अद्वितीय है वह बछड़ोंको ढूँढ़ रहा है, जो एक है वह सखाओंको ढूँढ़ रहा है, जो अगाध-बोध है वह ढूँढ रहा है।

अनन्तं च परितोऽपि विचिन्वत्

जो अनन्त है, वह चारों ओर ढूँढ़ रहा है। भला अनन्तमें चारों ओर कहाँ है?

और,

परं च शिशुत्वनाट्यं बिभ्रद्

जो सबका बाप है, वह बेटेका नाटक कर रहा है।

ब्रह्म च सपाणिकवलं

ब्रह्म है और हाथमें ग्रास लिये हुए है।

यह सब क्या है? यह सब नाटक है। ब्रह्माजीने अपनी आँखसे देखा नाटकधारी परब्रह्म परमात्माको।

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य
पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवाभिपात्य।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुट कोटिभिरङ्घ्रियुग्मं
नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम्।।

(10.13.62)

अब ब्रह्माजीसे नहीं रहा गया। तुरन्त अपने वाहन परसे उतर गये। बड़ी त्वराके साथ उतरे और जैसे सोनेकी छड़ी धरती पर गिर जाये, ऐसे धरती पर गिरे और चारों मुकुटसे उन्होंने श्रीकृष्णके दोनों पाँवोंका स्पर्श किया। माने लोट-पोट हो गये। और, चरणोंके स्पर्शका जो आनन्द है, उससे आँखोंसे आँसू निकल रहे हैं। बारम्बार उठते हैं और फिर गिर जाते हैं, बारम्बार उठते हैं, फिर गिर जाते हैं। मञ्जुलमहिमा देखना चाहते थे। और, यह मञ्जुलमहिमा देखकर बारम्बार आनन्दमें मग्न हो रहे हैं। फिर उठे, आँखें पोंछी। कृष्णको देखकर उनका सिर झुक गया। कृष्ण मुस्करा रहे हैं भला। विनयका भाव चित्तमें आया। समाहित चित्त, हाथ जोड़ लिया और 'गद्गदयैलत'-गद्गद वाणीसे उन्होंने श्रीकृष्णकी स्तुति की।

●

: 2 :

श्रीमद्भागवतमें जो विशेष-विशेष स्तुतियाँ हैं-जैसे वेद-स्तुति, गर्भ-स्तुति, अक्रूर-स्तुति आदि उनमें-से यह एक है।

'स्तुति' माने श्रेष्ठताका ख्यापन। जब हम किसीकी श्रेष्ठताका वर्णन सुनते हैं तब उसपर श्रद्धा होती है, उसकी भक्ति होती है, उसके प्रति आदर होता है। और, बड़े आदमीके मुँहसे सुनें? तो वक्ता कौन है? बोले कि बड़ा अनुभवी है, बड़ा पुराना है, बड़ा बूढ़ा है, बड़ा ज्ञानी है। चार दिमाग वाला है। ब्रह्माके चार मुख थे और वेद चारों कण्ठस्थ और सरस्वतीके पति और हंसपर चढ़नेवाले। इतना बड़ा विवेकी, इतना बड़ा ज्ञानी, इतना बड़ा विद्वान्।

देखो, हँस पर चढ़ते हैं इसलिए विवेकी हैं। सरस्वतीके पति हैं, इसलिए ज्ञानी हैं और वेद चारों मुखमें हैं, इसलिये विद्वान् हैं। और, वे कृष्णकी ऐसी महिमा गाते हैं, इससे श्रीकृष्णके निरतिशय उत्कर्षका ख्यापन होता है कि उनसे बड़ा कोई नहीं।

ब्रह्मोवाच

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय।।

(10.13.1)

'प्रभो! एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल है, इसपर स्थिर बिजलीके समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ पीताम्बर शोभा पाता है, आपके गलेमें घुँघचीकी माला, कानोंमें मकराकृत कुण्डल तथा सिरपर मोर पंखोंका मुकुट है, इन सबकी

कान्तिसे आपके मुखपर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्षःस्थल पर लटकती हुई वनमाला और नन्हीं-सी हथेली पर दही-भातका कौर। बगलमें बेत और सींग तथा कमरकी फेंटमें आपकी पहचान बतानेवाली बाँसुरी शोभा पा रही है। आपके कमलसे सुकोमल परम सुकुमार चरण और यह गोपाल-बालकका सुमधुर वेष। मैं और कुछ नहीं जानता, बस, मैं तो इन्हीं चरणों पर न्योछावर हूँ।'

श्रीधरस्वामीने बड़ा मजाक किया। बोले कि हम बाबा, ब्रह्म ईश्वर, अन्तर्यामी-ये सब कुछ नहीं जानते। हमको तो यह काले-काले बादलके समान तुम्हारा जो साँवरा सलोना शरीर दिखायी पड़ता है, हम तो इसीसे प्रेम करते हैं और इसीको चाहते हैं और इसीके लिये हम तुमको नमस्कार करते हैं।

'तडिदम्बराय'-बिजलीकी तरह तो वस्त्र धारण करते हो तुम और 'गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय' गुञ्जीके दानोंका कुण्डल और मयूरके पिच्छका मुकुट-इनसे मुखारविन्दकी शोभा हो रही है। हमको तो यह झाँकी चाहिए।

देखो, यह तो आप जानते हो कि दिल न कहीं जाता है और न ही दिलमें कोई आता है। झूठ ही लोग कहते है कि हमारा दिल टूटकर गिर पड़ा या: हमारा दिल पेरिस चला गया। वह तो अपनी जगह पर ही रहता है। कहो कि कलकत्ता आ गया हमारे कलेजेमें! तो कलकत्ता तुम्हारे कलेजेमें आयेगा तो कलेजा फट जायेगा कि रहेगा? तो यह दिल न कहीं ज़ाता है और न इसमें कोई आता है। यह बात आप समझ लोगे तो आपका दुःख मिट जायेगा।

जो बिछुड़े हैं प्यारे से भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हममें हमन को इन्तजारी क्या?
कबीरा इश्क का माता दुइ को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है, हमन से बोझ भारी क्या?

तो देखो, यह जो हम दुनियाकी बातें सुनते रहते हैं-किसीने कह

दिया कि कल भूकम्प आनेवाला है-और दिल धड़क गया। तो भूकम्प क्या तुम्हारे दिलमें आकर घुस गया और तुम्हारा दिल धड़कने लगा? नानाकी याद आगयी तो आँखमें आँसू आगये कि हाय-हाय, बड़े अच्छे थे। तो क्या नाना तुम्हारे कलेजेमें आकर घुस गये? न तो भूकम्प तुम्हारे कलेजेमें आया और न ही नाना कलेजेमें आये-यह बात जो तुमने सुनी उसने तुम्हारे कलेजेको एक कल्पनाका रूप दे दिया-यही संसारमें तुम्हारा सुख-दुःख है। सारा-का-सारा कल्पनाका रूप है। भूतकी बात आकर लग गयी और तुम भूतग्रस्त हो गये। भविष्यकी बात आकर लग गयी तो तुम भयग्रस्त हो गये। तो कुल-का-कुल मतलब यह है कि तुम्हारे जीवनका जो सुख-दुःख है, वह तुम्हारे मनकी कल्पनासे ही बनता-बिगड़ता है। इस रहस्यको समझो-इसके हम चिकित्सक हैं, इसके हम जानकार हैं भला!

तो हम कृष्णका वर्णन करते हैं। जैसे आपके दिलमें झटसे कलकत्ता आजाता है, पेरिस आजाता है, नाना-नानी आ जाते हैं-उनको मत भरो अपने दिलमें, यह सांवरा-साँवरा कृष्ण आने दो। काला-काला शरीर और बिजलीकी तरह कपड़ा चमक रहा। आपके चित्तमें शान्ति होवे, सुख-दुःख न आता हो, भूत-भविष्य न आता हो, उससे आपको सुख-दुःख न होता हो-आने पर भी कोई हर्ज नहीं। लेकिन यदि आपका चित्त बातोंमें आजाता है-बात हुई और मन वहाँ पहुँच गया, तो देखो हम आपको वह बात सुनाते हैं कि काला-काला शरीर, बिजलीकी तरह कपड़ा चमक रहा, घुटनों तक गुञ्जाकी माला पहने हुए और हाथमें दही-भातका ग्रास और काँखके नीचे बेंत और सींग, बाँसुरी फेंटेमें कसी, बड़े कोमल उसके चरण। जहाँ धरती पर पाँव रखता है, वहाँ पृथिवी अपना हृदय प्रकट कर देती है। एक महात्माने लिखा कि जहाँ-जहाँ कृष्ण अपना चरण रखते हैं, पृथिवी अपनी जीभ वहाँ फैला देती है और श्रीकृष्णके तलवे पृथिवीकी जिह्वा पर पड़ते हैं। दिल बिछा देती है पृथिवी। जैसे बोलते हैं कि तुम हमारे घर

आओ, हम तुम्हारे लिये पलक पाँवड़े बिछा देंगे। अब आँखका पाँवड़ा थोड़े ही बिछाया जाता है। ऐसे कहनेका रिवाज है माने प्यारसे हम तुम्हारा इन्तजार करते हैं।

तो बड़े कोमल चरण हैं श्रीकृष्णके।

अच्छा, इस श्लोकमें एक शब्द है 'पशुपाङ्गजाय'। जिनसे मैं श्रीमद्भागवत पढ़ता था, बड़े अनुभवी थे। तो उन्होंने एक ऐसी कुञ्जी बतायी कि 'पशुपाङ्गजाय' इस छः अक्षरमें-से भागवतके बारहों स्कन्धकी कथा निकल आती है। काशीमें जब कभी विद्वानोंकी सभा होती और इनको बुलाया जाता तो वे इस बातको जरूर सुनाते थे। 'पशुपाङ्गजाय'-यह ब्रह्माने सही कर दी कि तुम 'पशुप' माने नन्द, ग्वाल-उनके अंगज हो मांने उनके पुत्र हो। ब्रह्माजी तो बुलाने गये थे क्षीरसागरके तटपर और उन्हींकी प्रार्थनासे भगवान् आये हुए हैं और वहाँ भगवान्ने कहा था कि मैं देवकी-वसुदेवसे प्रकट होऊँगा।

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः।।

(भाग. 10.1.23)

ब्रह्माजीने सबको सुनाया था कि वसुदेवके घरमें भगवान्का जन्म होगा। और, आज उन्होंने अपना निश्चय ही बदल दिया। क्या बदल दिया? 'पशुपाङ्गजाय'-तुम तो नन्दके अंगज हो। नन्दनन्दनाय हो। फिर वसुदेवका क्या होगा? वह भी इसीमें-से निकलता है-

पशुपो नंदस्तस्यांगो वसुदेवः तस्मात् जायते इति।

वसुदेवके बेटे हैं।

पशून् मूर्खान् ज्ञानदानेन पान्ति रक्षन्ति इति पशुपः ब्राह्मणः, ये अंगजः मुखजः यस्य तस्मै।

मूर्खोंको ज्ञानदान करके उनकी रक्षा करनेवाले ब्राह्मण हैं और वे जिसके अङ्गज हैं। पशुपः क्षत्रियः, पशुपः वैश्यः-इस प्रकार सारे विराट्का वर्णन निकलता है।

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहाय
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः।।
(10.13.2)

'स्वयं प्रकाश परमात्मन्! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनोंकी लालसा-अभिलाषा पूर्ण करनेवाला हैं, यह आपकी चिन्मयी इच्छाका मूर्तिमान् स्वरूप मुझपर आपका साक्षात् कृपा प्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करनेके लिये ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पञ्चभूतों की रचना है? प्रभो! यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानन्द-विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता। फिर आत्मानन्दानुभवस्वरूप साक्षात् आपकी ही महिमाको तो कोई एकाग्रमनसे भी कैसे जान सकता है।'

अब देखिये, कोई ब्रह्माजीसे पूछे कि क्यों महाराज, आपने जब और जगह स्तुति की है तो प्रारम्भसे ही आप ऐसी बातें बोलने लगे कि दूसरेकी समझमें ही न आवे। और, यहाँ क्या कर रहे हो? भगवान्‌की स्तुति की प्रतिज्ञा कर रहे हो और भगवान्‌का जो स्वरूप है, उनके जो आभूषण हैं, अंग हैं-इसको गिना रहे हो। यह कैसे स्तुति है तुम्हारी? तो ब्रह्माजी क्या कहने जा रहे हैं? कहने जा रहे हैं कि देखो,

निर्गुण रूप सुलभ अति, सगुण न जाने कोय।

भगवान्‌के सगुण रूपको ही समझना बड़ा कठिन काम है। इसलिये ब्रह्माजीको पूरी तरहसे आज यह मालूम पड़ गया है कि जैसे भगवान्‌का निरुपाधिक, निर्विशेष स्वरूप सर्वथा अप्रमेय है माने अज्ञेय है, उसी प्रकार भगवान्‌का सगुण स्वरूप भी व्यापक, अप्रमेय है माने अज्ञेय है। क्यों? क्योंकि भगवान्‌का जो सगुण स्वरूप है, वह मायाके गुणोंका तो बना हुआ है नहीं। वह तो दिव्य, चिन्मय है। इसलिए भगवान्‌का यह विग्रह सगुणरूपमें दृष्टिगोचर होते हुए भी जिस कोटिका

निर्विशेष तत्त्व है, उसी कोटिका है। यही तो नयी बात ब्रह्माको मालूम पड़ी है। इसलिए कोई यह न समझ ले कि केवल भगवान्‌के अंग-सौन्दर्यका वर्णन कर रहे हैं, स्तुति तो कर नहीं रहे। स्तुति करनेका ढंग तो दूसरा ही होता है। इसलिए कहते हैं कि नहीं, हे देव, हे भगवन्! यह जो आपका विग्रह है, मैं जानता हूँ कि यह तो आपने मेरे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए प्रकट किया है-'मदनुग्रहाय'। कोई भी भगवान्‌का रूप अनुग्रहके लिये ही प्रकट होता है। 'स्वेच्छामयस्य' और वह रूप स्वेच्छामय है। माने भगवान् जो चाहें सो रूप बना लें। 'न तु भूतमयस्य कोऽपि'-भगवान्‌का विग्रह पञ्चभूतमय नहीं है। इसलिए ब्रह्मा भी भगवान्‌के स्वेच्छामय अनुग्रहवाले रूपको जान नहीं सकते। अथवा 'कोऽपि' माने कोई भी नहीं जान सकता। कोई समर्थ नहीं है। परन्तु ब्रह्मा कहते हैं कि भगवान्‌ने उसे कृपा करके हमारे लिये सुलभ बना दिया।

मनसाऽऽन्तरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः

देखो, विशुद्ध मनके द्वारा, मनको धारणा, ध्यानके द्वारा भगवान्‌के विग्रहमें प्रवेश करा दिया जाये तो भी जानना कठिन है। और फिर भला बताइये, जो आपका साक्षात् स्वरूप है, जो अनुग्रहके लिये ग्रहण नहीं किया गया अर्थात् कूटस्थ, गुणातीत स्वरूप है, निर्विकार, निर्विशेष है-जो आत्मसुखकी अनुभूतिमें दृष्टिगोचर होता है, साक्षात्कृत होता है-उसको भला कोई क्या जान पावेगा?

देखो, हमारी इन्द्रियाँ, हमारे करण-मन, बुद्धि आदि चूँकि प्राकृत हैं, तो प्राकृत-वस्तुको ही ग्रहण करनेमें समर्थ हैं। भगवान्‌का विग्रह अप्राकृत है, विशुद्ध-सत्त्वमय है। उसको ग्रहणका सामर्थ्य उनमें नहीं है। हाँ, भगवान् ही कृपा कर दें, तब ग्रहण हो जायेगा। इस श्लोककी व्याख्या करते हुए श्रीधर स्वामी अन्तमें एक बड़ा ही विलक्षण भाव प्रकट करते हैं कि असलमें यह पञ्चभूतमय जो संसार है, यह भी भगवान्‌का ही विराट्-विग्रह है। और, यह उनके द्वारा नियम्य भी है। सो इसीकी महिमाको जब कोई जान नहीं सकता, तब फिर भला बताइये

कि जो भगवान्‌का असाधारण स्वरूप है–जहाँ कोई नियम्य नहीं, कोई नियन्ता नहीं, भेद है ही नहीं, एकरस है, अद्वितीय रूप है–उस स्वरूपकी महिमाको जाननेमें कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं जान सकता–कैमुतिक न्यायसे ब्रह्माजीने इस बातको पुष्ट किया।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्।।

(10.14.3)

'प्रभो! जो लोग ज्ञानके लिये प्रयत्न न करके अपने स्थानमें ही स्थित रहकर केवल सत्सङ्ग करते हैं और आपके प्रेमी संत–पुरुषोंके द्वारा गायी हुई आपकी लीला–कथाका, जो उन लोगोंके पास रहनेसे अपने–आप सुननेको मिलती है, शरीर, वाणी और मनसे विनयावनत होकर सेवन करते हैं–यहाँ तक कि उसे ही अपना जीवन बना लेते हैं, उसके बिना जी ही नहीं सकते–प्रभो! यद्यपि आप पर त्रिलोकीमें कोई कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता, फिर भी वे आपपर विजय प्राप्त कर लेते हैं, आप उनके प्रेमके अधीन हो जाते हैं।

देखिये, जहाँ भगवान्‌का साकार विग्रह भी अज्ञेय है, दुर्ज्ञेय है, किन्तु व्यक्ति लगा रहता है कि हम जब भगवान्‌का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे तब पूजा करेंगे, जप करेंगे, ध्यान करेंगे। समझे बिना हम करेंगे ही नहीं। अब सोचो! पहले वह भगवान्‌को समझ़ लेना चाहता है, तब भजन करना चाहता है। तो ब्रह्माजी कहते हैं कि ज्ञान प्राप्त करनेके प्रयासमें जो लगे हैं–उसको हटाओ, उसको अलग करो। और, कुछ ऐसे भी हैं जो संत–महापुरुषोंके श्रीमुखसे भगवान्‌की लीला–कथा सुननेमें अपना जीवन लगाये रहते हैं। लगाये ही नहीं रहते, बल्कि उसीके लिए जी रहे होते हैं। जीनेका और कोई लक्ष्य उनका नहीं रह जाता। वे आपकी लीला–कथा गाथाको ही अपने जीवनका सम्बल बना लेते हैं।

देखो नारायण, भगवान्‌के सम्बन्धमें कोई जब ऐसी दृष्टि बना लेता है तो जहाँ रह रहा है कुटियामें या घरमें वहीं स्थित रहे। कहीं भागनेकी जरूरत नहीं है। अच्छा, एक स्थान पर रहेगा तो कैसे सुनेगा? नारायण, उसके कानमें भगवान्‌की लीला-कथा, चरित्रका गान अपने आप आता रहेगा। जैसे वृन्दावनकी किसी भी गलीमें निकल जाओ तो भगवान्‌का नाम अपने आप कानमें आता है। यह महिमा है। यह महिमा और कहीं भी नहीं। तो इस प्रकारसे शरीर वाणी और मन-इन तीनोंके द्वारा जो उसके कानमें अपनी जगह रहते-रहते ही भगवान् की लीला-कथाकी वार्ता आजाती है। ब्रह्माजी कहते हैं कि हे अजित, आपको कोई जीत नहीं सकता। किन्तु, हे भगवन्, उन पुरुषोंके द्वारा आप तीनों लोकोंमें जीत लिए जाते हो। अन्यथा तीनों लोकोंमें आपको जीतनेवाला कोई है ही नहीं। किन्तु ऐसे जो आपके भक्त हैं, जो भगवान्‌की लीला-कथाके लिए ही जी रहे होते हैं-कहीं दौड़-भाग नहीं करते, भगवान्‌की लीला-कथाको सुनकर और उसीमें डूबे रहते हैं, फिर उनके द्वारा आप जीत लिए जाते हो।

अब कोई कहते हैं कि नहीं, हम तो पहले ज्ञानकी बात मानेंगे, तब भक्तिकी बात सुनेंगे। उलटी बात हो गयी। क्योंकि, ज्ञान सिद्ध हो ही नहीं सकता। ज्ञान तभी सिद्ध होगा जब भगवान्‌में प्रीति होगी। इसलिए कहते हैं,

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्।।

(10.14.4)

'भगवन्! आपकी भक्ति सब प्रकारके कल्याणका मूलस्रोत है-उद्‌गम है। जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं, उनको बस क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है,

और कुछ नहीं-जैसे थोथी भूसी कूटनेवालेको केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं'।

असलमें वेदमें कर्मकाण्डका मार्ग भी भगवद्-समर्पण-बुद्धिसे विधान किया गया है। उपासना तो खैर है ही, कर्मकाण्ड भी तत्त्वकी आराधना है, पूजा है। इसलिए, भगवान्को छोड़कर कोई साधन किसी कीमत पर नहीं हो सकता। अकाट्य सिद्धान्त है कि भक्तिके बिना ज्ञान सिद्ध हो ही नहीं सकता।

एक बात श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीके सिद्धान्त बिन्दुमें आती है कि तत्त्वज्ञान प्राप्त होते ही भक्तिके बिना प्राणी रह नहीं सकता। उसको ज्ञानोत्तरा-भक्ति कहा है। माने या तो पहले भक्तिके मार्गको लेकर चलो और या तो ज्ञानके बाद भक्तिमें प्रतिष्ठा हो। श्रीमद्भागवतमें ही देखिये, जो दस पदार्थोंका निरूपण है उसमें मुक्तिका निरूपण तो ग्यारहवें स्कन्धमें है। 'मुक्ति' माने 'अन्यथारूपं हित्वा स्वरूपेण व्यवस्थितिः'। अब जब अन्यथा रूपको छोड़कर स्वरूपमें स्थिति हो गयी-हो गयी मुक्ति। अब क्या जरूरत है? किन्तु क्या होगा? मुक्तिको समझ लेनेके बाद भी अगर भगवान् हमारे आश्रय नहीं बनेंगे तो मुक्ति आयी-गयी हो जायगी। कुछ पता नहीं रहेगा। इसलिए बारहवें स्कन्धमें आश्रयकी स्थापना की गयी है। मुक्त हो आश्रयमें निश्चिन्त होकर बैठ जाओ।

संसारमें अनेक प्रकारके श्रेय हैं। क्योंकि व्यक्ति अपनी-अपनी बुद्धिसे समझता है कि यह श्रेय है, यह श्रेय है, यह श्रेय है। दार्शनिक मतभेद तो है ही। तो जो भी जिसके मतका श्रेय है-अभ्युदय और अपवर्गका जिस दर्शनमें जो भी रूप है, उन सबकी धारा भक्तिसे ही बहती चली आ रही है। जैसे किसी जलाशयसे झरने झरते रहते हैं, ऐसे ही भक्ति देवीके द्वारा ही निःश्रेय प्राप्तिके झरने झरते रहते हैं। माने भक्ति सब प्रकारके निःश्रेयका उद्गम है, स्रोत है जब भी मिलेगा तो वहींसे मिलेगा; अन्यथा मिलेगा नहीं। ऐसी जो भक्ति है, उसको तो त्याग दिया, छोड़ दिया, श्रेयकी मार्ग-भूता जो भक्ति है, उसको तो अपनाया नहीं-

ऐसे लोगोंको जीवनमें बीसों-पचासों वर्षोंकी साधनाके बाद केवल क्लेश ही हाथ लगता है। ब्रह्माजी कहते हैं कि जो भक्तिको छोड़कर केवल बोधके लिए लगे रहते हैं, उनकी यही स्थिति है।

देखिये, श्री ब्रह्माजीके चित्तमें यह कहाँसे आ रहा है? यह अर्थ उनके भीतरसे इसलिए आ रहा है कि भगवान्‌का मैंने पहले दर्शन किया, उनकी उपेक्षा कर दी। अपनी बुद्धिसे काम करने लगा कि अरे भगवान् ऐसे हैं, ऐसे हैं, ऐसे-कैसे भगवान्! भगवान् तो ऐसे-ऐसे होने चाहिए। उसका जो परिणाम ब्रह्माजीको देखनेको मिला तो उस सबसे शिक्षित हो गये, समझ गये कि भई कोरा ज्ञान कुछ भी नहीं है। दो कौड़ीकी वस्तु भी नहीं है। बुद्धिके द्वारा ज्ञान ही का प्रयोग कर रहे थे, तर्क-वितर्क कर रहे थे। चूँकि दूधका जला मट्ठा फूँक-फूँककर पीता है, इसलिए वे कह रहे हैं कि उनको तो केवल क्लेश ही हाथ लगेगा, जैसे मुझे हाथ लगा। यह तो फिर भी भगवान्‌का अनुग्रह है और वे अनुग्रहके पात्र थे-ब्रह्माजी कोई ऐसी-वैसी हस्ती तो है नहीं-तो इसलिए वे कहते हैं-

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन-
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युतते गतिं पराम्।।

(10.14.5)

'हे अच्युत! हे अनन्त! इस लोकमें पहले भी बहुत योगी हो गये हैं। जब उन्हें योगादिके द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई, तब उन्होंने अपने लौकिक और वैदिक समस्त कर्म आपके चरणोंमें समर्पित कर दिये। उन समर्पित कर्मोंसे तथा आपकी लीला-कथासे उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई। उस भक्तिसे ही आपके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बड़ी सुगमतासे आपके परमपदकी प्राप्ति कर ली।'

देखिये, यथार्थ-वस्तुका दर्शन होनेके बाद सब संगति लगती

चली जाती है। क्या कहते हैं ब्रह्माजी? वे कहते हैं कि भगवन् यह जो मैं कह रहा हूँ, यह मनगढ़न्त नहीं कह रहा हूँ। प्रामाणिक बात है। प्रामाणिक बात कैसे होती है? पहले वेदने कहा हो। स्मृतिने उसको पुष्ट किया हो और तीसरे महान्-पुरुषोंने उसको अपने जीवनमें अपनाया हो।

तो ब्रह्माजी कहते हैं-'हे भूमन्! 'भूमन्' भगवान्के लिए संबोधन है। मैं बड़े-बड़े योगी महापुरुषोंको जानता हूँ जो पहले तो बड़ी-बड़ी साधना करते रहे, लेकिन उनको शान्ति नहीं मिली। किन्तु जब उन्होंने परम्परासे दीक्षा लेकर सारे कर्मोंको, सारी चेष्टाओंको भगवान्के चरणोंमें अर्पणकर दिया। अब भगवान्को अर्पण करनेकी बात कहाँसे आयी? 'निजकर्म लब्धया'-उन्होंने जो सदाचारका, धर्मका पालन किया था, उसके फलस्वरूप ही यह दृष्टि उनको प्राप्त हुई कि छोड़ो सारे चक्करोंको। भगवान्के चरणोंका आश्रय लो। और, उन्होंने भगवान्को सब अर्पण कर दिया। इसके पहले वे भटक रहे थे। पद्मपुराणके माहात्म्यमें यही तो कहा है-ऋषियोंने सूतजीसे पूछा कि महाराज, हमने सुना है कि लोग भगवान्का साक्षात्कार कर लेते हैं और काम, क्रोध, लोभ पर विजय पा जाते हैं उनको शान्ति मिल जाती है। और, हम तो सौ-सौ वर्षसे लगे हुए हैं, कुछ भी नहीं मिला अबतक! उनको यह सब कैसे मिल जाता है-आप यह रहस्य बताइये? इसी प्रश्नके उत्तरमें सूतजीने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया है।

अब देखो, सदाचार-धर्म पालनके फलस्वरूप जीवनमें जो भगवदाश्रय ग्रहण करता है व्यक्ति तो उसको भगवान्की लीला-कथा सुननेमें रुचि होती है और उसके श्रवणसे जीवनमें भगवद्-भक्ति-प्रादुर्भूत होती है। नारायण, चाहे कोई दुनियाके साधनोंके पीछे लगा रहे, परन्तु भगवद्-प्रीतिके बिना उसको कहीं भी सफलता नहीं मिल सकती। अर्थात् परमगति माने परम-पद 'तद् विष्णोः परमंपदं'की प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवद्-भक्ति, भगवद्-प्रीति द्वारा स्वरूप बोध अत्यन्त सुगम हो जाता है। ●

तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते
विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो
ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा।।
(10.14.6)

'हे अनन्त! आपके सगुण-निर्गुण दोनों स्वरूपोंका ज्ञान कठिन होने पर भी निर्गुण स्वरूपकी महिमा इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके शुद्धान्तःकरणसे जानी जा सकती है। (जाननेकी प्रक्रिया यह है कि) विशेष आकारके परित्यागपूर्वक आत्माकार अन्तःकरणका साक्षात्कार किया जाय। यह आत्माकारता घट-पटादि रूपके समान ज्ञेय नहीं है, प्रत्युत आवरणका भङ्गमात्र है। यह साक्षात्कार 'यह ब्रह्म है', 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' इस प्रकार नहीं किन्तु स्वयं प्रकाश रूपसे होता है।'

मानस चिन्तय चिन्मय भासम्।

यह प्रसंग चल रहा है कि निर्गुण और सगुण-दोनोंको समझना कठिन है। इसलिये पहले उसकी कथा-वार्ता सुनकर हृदयमें प्रीतिका उदय होने दो। सत्संग छूट जायेगा तो प्रीति कट जायेगी। यह जीवको ईश्वरके साथ जोड़नेकी कड़ी है भगवान्की कथा, भगवान्की लीला। जैसे रोज-रोज भोजन कर लेते हैं तो शरीरमें शक्ति बनी रहती है, ऐसे रोज-रोज भगवान्की लीला-कथा सुन लेते हैं तो मनमें शक्ति बनी रहती है। यह मनकी खुराक है, यह मनका भोजन है। शरीरका भोजन जरा बड़ा है। है शब्द एक ही। मनका भोजन भजन है। उसमें 'ओ' नहीं है। और भोजनमें ओदनका 'ओ' है।

तो जहाँ ज्ञान तत्त्वविषयक है-आकार, विकार, संस्कार, प्रकार विषयक नहीं है। ज्ञान तो उस तत्त्वका है, जिसको जान लेनेके बाद

आकार बाधित हो जाता है, विकार बाधित हो जाता है, प्रकार बाधित हो जाता है, संस्कार बाधित हो जाता है। ज्ञान तो वह वस्तु है। और, भक्ति है मनुष्यके जीवनमें जो हृदय है, उसको भगवान्‌के साथ मिलानेवाली प्रीति। व्यक्तिके हृदयमें जो भगवद्-भावकी अभिव्यक्ति है, जो सारे दोष-दुर्गुणोंको दूर करनेवाली शक्ति है, उसको भक्ति कहते हैं। यह केवल वाद-विवाद करनेसे, बड़ी ऊँची चर्चा करनेसे नहीं होता है। यह तो मल-प्रक्षालिनी शक्ति है। यह तो दिलको रंगीला बनानेवाली चीज है।

अच्छा आओ, थोड़ी श्लोककी चर्चा करें। ये कहते हैं, निर्गुणका ज्ञान सुलभ है, चटपट हो जाये। आज एक सज्जन आये थे। वेदान्तके बड़े जानकार हैं-ऐसा सुनते हैं। वे बोले कि एक व्यतिरेक-दृष्टि होती है और एक अन्वयदृष्टि होती है। बहुत लोग व्यतिरेक-दृष्टि तो कर लेते हैं कि मैं संसारसे न्यारे हूँ-यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं, सबसे परे 'मैं'। लेकिन अन्वयदृष्टि नहीं होती है कि 'सब मैं'। इस लिये बेचारे एक कोनेमें पटक दिये जाते हैं। यह ज्ञान उनको एक कोनेमें पटक देता है। ज्ञान तो वह बहादुरी है जो नरकमें भी ब्रह्म बनाये रखता है। दुनियाकी दृष्टिमें नरक, अपनी दृष्टिमें ब्रह्म। लेकिन जो कोई यह समझ लेगा कि हम इससे न्यारे, इससे न्यारे, इससे न्यारे-न्यारे होते-होते वैसे ही जैसे एक आदमी पीछे हटे और हटते-हटते एक कोनेमें पहुँच जाये और भीतसे सट जाये और फिर कहीं हटनेकी गुंजाइश नहीं। फँस गया बेचारा। न्यारे-न्यारे वालोंकी यह गति होती है। और, अन्वय किया तो बोले हम सब हैं। तो नारायण, वे कल्पनामें फँस गये। असलमें अन्वय-व्यतिरेक कोई वेदान्तका अनुभव नहीं है। यह तो विवेककी एक प्रक्रिया है, विवेकका एक ढंग है। इसका नाम अनुभव नहीं है।

परन्तु, वेदान्तका विषय बड़ा सूक्ष्म होता है भाई! उसको मामूली-मामूली लोग समझते नहीं हैं। अब हम बहस तो करें

वेदान्तकी और निर्णय छोड़ दें आपके ऊपर! अच्छा; ज्ञान है? अगर ज्ञानको वोट पर छोड़ दिया तो अपने ज्ञानको चौपट कर दिया। ज्ञान वोटसे नहीं होता है, वह एक विशुद्ध अनुभूति है।

अब देखो, ब्रह्मका ज्ञान सुलभ कैसे? ब्रह्मानुभूति सुलभ कैसे? बोले कि-'स्वानुभवात्'। जो लोग वेदान्तमें रुचि नहीं रखते, उनको यह बड़ा भारी पड़ेगा। इसलिये हम जरा-जरा सा बता देते हैं। आत्मा कैसा है? बोले कि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिका द्रष्टा है। और, ब्रह्म कैसा है? सत्य, ज्ञान, अनन्त है। तो वेदान्तका विचार करनेसे कि ब्रह्म क्या है, ब्रह्म क्या है, ब्रह्म क्या है-अन्तःकरण ब्रह्माकार हो जाता है। **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'**। तत् पद लक्ष्यार्थका विचार करो, त्वं-पद लक्ष्यार्थका विचार करो। तो जिसका विचार करोगे, अन्तःकरण तदाकार हो जायेगा। परन्तु, उस तदाकार अन्तःकरणमें फँसो मत। उसके तुम अधिष्ठान और प्रकाशक हो। उस ब्रह्माकार अन्तःकरणके भी तुम साक्षी ब्रह्म हो। ब्रह्माकार अन्तःकरण तुम नहीं हो। बस देखो, एक मिनटकी बात हुई।

हमारे नामवाले एक महात्मा चित्रकूटके हैं। उनके यहाँ कोई जाता है तो बोलते हैं, 'अरे, तू तो ज्ञान-स्वरूप है। व्यक्ति कहता है कि न महाराज, मैं तो अज्ञानी हूँ। वे बोलते कि तू अपने अज्ञानी-पनेको जानता है कि नहीं? 'जानते हैं महाराज'! तो तू अज्ञानी नहीं है। अज्ञानीको जाननेवाला है और यह जाननेवाला तो देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न है। ज़ा, तू ब्रह्म है, अज्ञानी नहीं है। चोटी कटानी हो कटा़ ले, गेरुआ पहनना हो तो पहन ले!

तो ब्रह्माकार अन्तःकरणका साक्षात्कार होता है। सो उस ब्रह्माकार अन्तःकरणका जो द्रष्टा है, वह स्वयं ब्रह्म है। इसलिये अन्तःकरणकी ब्रह्माकारता बाधित हो जाती है। माने अन्तःकरण ही बाधित हो जाता है। ब्रह्मज्ञानका यह सीधा तरीका हुआ। नारायण भागवतमें जो बात लिखी है, सो तो आपको सुनानी पड़ेगी।

अच्छा बताओ भला, ब्रह्माकार जो अन्तःकरण हुआ, वह अन्तःकरणका विकार है कि नहीं है? क्योंकि, अन्तःकरणने जब एक आकार धारण किया तो वह तो अन्तःकरणका विकार हुआ। बोले कि नहीं-नहीं, किसी खास आकारका नाम ब्रह्माकार नहीं है; 'अविक्रियात्'-निराकारका ही नाम ब्रह्माकार है। लो, काट दिया उसको!

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज कहते थे लोगोंको कि ब्रह्माभ्यास करो, ब्रह्माभ्यास करो। मैंने एक दिन पूछा कि कौन-सा अभ्यास करें तो वह ब्रह्माभ्यास होगा? वे बोले कि कुछ मत करो, यही ब्रह्माभ्यास है।

अब एक तीसरी बात बताते हैं, अच्छा, निराकार अन्तःकरणका साक्षात्कार हुआ तो '**विशेषाकार रहितं ब्रह्माकारम् अन्तःकरणम् अहं जानामि**'-विशेष आकारसे रहित ब्रह्माकार हुए अन्तःकरणको मैं जानता हूँ-यह अनुभव होगा कि नहीं होगा? बोले-'अरूपतः'-नहीं होगा। 'अरूपतः'का अर्थ हुआ-वृत्ति-व्याप्ति मात्र होगी, फल-व्याप्ति नहीं होगी। केवल अन्धकारकी निवृत्ति होगी, घटका निर्माण नहीं होगा। अलग-अलग देखनेकी शैली होती है-यह भी बताना पड़ेगा। घड़ी भी जब हम देखते हैं तो घड़ी हो, तब दिखेगी, रोशनी हो तब दिखेगी, आँख हो तब दिखेगी। लेकिन हमारे आँख है कि नहीं, यह देखना हो तो न घड़ीकी जरूरत पड़ेगी और न रोशनीकी जरूरत पड़ेगी। अच्छा, हमारे मन है कि नहीं-यह देखना हो तो? मनकी भी जरूरत नहीं पड़ेगी। साक्षी उसको देखता है। लेकिन साक्षीको ही देखना हो तो? घड़ीको देखेंगे तो यह कहना पड़ेगा कि-'अहं घटीयन्त्रं जानामि'। पहले रोशनी करके, दीया जलाकर अन्धेरेको दूर किया और बोले कि मैं घटीयंत्रको देख रहा हूँ। परन्तु, आत्माको जानना हो तो सिर्फ एक बार तत्त्वमस्यादि महावाक्यजन्यवृत्ति जल गयी, अन्धेरा दूर हो गया, 'अहं ब्रह्म जानामि' इत्याकारक अभिमानका उदय नहीं हुआ। फलव्याप्ति नहीं हुई।

अविक्रियात् स्वानुभवादरूपतो।

आत्माका इदंतया कैसे बोध होगा? बोले कि नहीं, 'स्वप्रकाशतया'-प्रकाश्य रूपसे बोध नहीं होगा, स्वयं प्रकाश रूपसे ब्रह्माभिमान प्रत्यक चैतन्यका बोध होगा; और दूसरी कोई युक्ति नहीं है। बोले कि यह तो बड़ा सुगम है।

देखो, यह बात पहलेके लोगोंको बड़ी सुगम मालूम पड़ती थी। इसमें तो कुछ करना ही नहीं, कहीं जाना ही नहीं। घोड़ेकी रकाबमें पाँव और ब्रह्मज्ञान। फूल मसल दो और ब्रह्मज्ञान। आँख मींच लो और ब्रह्मज्ञान-ऐसे पुराने महात्मा बोलते थे। गीतामें लिखा है,

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते। (6.28)

सुसुखं कर्तुमव्ययम्। (1.2)

अच्छा, निर्गुणका ज्ञान बड़ा सुगम है, अब सगुणका ज्ञान बताओ? बोले कि बड़ा कठिन है। क्योंकि, यहाँ तो अपने आपके रूपमें ब्रह्मको जानना है। न तो इन्तजार करना है। सेठोंके घर मिलने जाओ तो कह देंगे कि अभी साहब बाथरूममें हैं, इन्तजार करो बैठकर। नारायण, यह तो अपना आपा है, किसीके घर-वरमें नहीं जाना है। ऐसा भी नहीं कि लिखा हो कि बिना इजाजत अन्दर आना मना है। यह तो अपना घर है। यहाँ तो इजाजतकी बात ही नहीं है। और, इन्तजार करना नहीं है और दूसरा है नहीं, अपना आपा ही है। देखनेमें क्या कठिनाई? अभी है, यहीं है और अपना आपा ही है। मारो गोली दुनियाको। क्या रखा है? अभी-अभी मिले-मिलाये।

एक अन्तःकरणशुद्धिकी बात भी कर लें।

जिनको जिज्ञासा उदय नहीं हुई है उनके लिये ही अन्तः-करणशुद्धिकी बात की जाती है। आप बिलकुल पक्का समझ लो। हमने देखा-एक सज्जनकी कुटियामें लिखा हुआ था कि खड़ाऊँ बाहर निकालकर तब आइये। और, उनको मैंने देखा कि स्वयं कुटियाके भीतर खड़ाऊँ पहनकर चलते थे। क्यों रे भाई, यह क्या बात है? सबके

लिये तो यह कायदा बना दिया कि खड़ाऊँ बाहर निकाल कर आओ और इस कुटियाके भीतर तू खड़ाऊँ पहनकर क्यों घूमता है? बोला कि यह कुटिया मेरी है। नारायण कहो। अगर आपको कहीं वैकुण्ठ आदिमें जाना हो तो दिल धोकर और उसको खूब बढ़िया रंगमें रंगकर, पीली पोशाक पहनकर चमक-दमक कर जाना। और अपने घरमें हमारी जैसे मौज हो, वैसे रहें। पाँव धोवें कि न धोवें! बहुतसे लोग सारी जिन्दगी नष्ट कर देते हैं अन्तःकरणकी स्वच्छताके नामपर। जो आँख बन्द करके सन्तोष कर सकता है कि हम ध्यान कर रहे हैं, उसके मनमें जिज्ञासा कहाँ है? जो किसीके भरोसे पर रह सकता है कि हमको वे ज्ञान दे देंगे, उसके मनमें जिज्ञासा कहाँ है? अरे बाबा, अभी ज्ञानकी इच्छा ही नहीं पैदा हुई। अगर ज्ञानकी इच्छा पैदा हो जाती तो न तो ईश्वरके भरोसे पर संतोष होता। पैसेके लिये क्यों नहीं ईश्वरके भरोसे पर रहते कि जब दे देगा, तब ले लेंगे। शान्तिसे अपने घरमें बैठ जाते हैं कि जब ज्ञानकी इच्छा होगी तब आ जायेगा। बेवकूफ हैं। सीधी बात करते हैं कि ज्ञानके लिये जब व्याकुलता होगी तब वेदना उठेगी। जब उत्कण्ठा होगी, तब तुम इस भरोसे पर बैठे रहोगे कि जब ईश्वर देगा, तब होगा? क्या हम अपने घरमें शान्तिसे बैठेंगे जब ज्ञान होना होगा तब हो जायेगा? जब जिज्ञासा होगी तो किसीके भरोसे पर अथवा शान्तिसे बैठे नहीं रहने देगी। वह तो नचा डालेगी तुम्हें! जहाँ सुनोगे कि यहाँ ज्ञान मिलनेकी संभावना है, जाकर वहाँ पटापट चरणोंमें गिरोगे।

जिज्ञासुको क्या विश्वास रोक सकता है? या जिज्ञासुको शान्ति रोक सकती है? जिज्ञासु ज्ञान प्राप्त किये बिना रह नहीं सकता। हजार शान्तिके पर्देको फाड़ दे, हजार भरोसेको तोड़ दे। अब तुम्हारे जिज्ञासा नहीं है तो क्या करें? प्रियतमसे मिलनेकी उत्कण्ठा हो और यह सोचें कि वह खुद ही आजायेगा? यह नहीं लेता है। चलना पड़ता है। 'अमलान्तरात्मभिः'का यही अर्थ है।

बोले कि मिलनेकी तो बहुत इच्छा है। लेकिन क्या करें, आज

साड़ीसे मैच करती हुई जूती नहीं मिली तो उसके पास कैसे जावें? आज कंघी नहीं मिली तो कैसे जावें? आज बढ़िया कपड़ा नहीं हुआ तो कैसे जावें? अरे मिलनेकी इच्छा होगी तो कपड़ा रोकेगा? जूती रोकेगी? या कंघी रोकेगी? यह अन्तःकरण ऐसा ही है। जूतीकी तरह है, कपड़ेकी तरह है, कंघीकी तरह है। जब ईश्वरसे मिलनेकी इच्छा होगी तो आदमी यह थोड़े न देखेगा कि यह कैसा है। वह तो कूद पड़ेगा। पगली छलाँग उसके जीवनमें आवेगी। अरे भई, ईश्वरकी ओर चलनेकी इच्छा ही नहीं होती है। हम सबकी पोलपट्टी जानते हैं। ये जितने जिज्ञासु लोग आते हैं, समझदार लोग आते हैं, तो नानीके आगे ननयोरेका (ननिहाल) बखान! हम तो इस विषयके नानी हैं।

आओ, अब आपको बतावें कि सगुणको जाननेमें क्या कठिनाई है?

हितसे भरकर, प्रेमसे भरकर भगवान् अवतार लेते हैं और अनन्त गुणोंको अपने जीवनमें प्रकट करते हैं।

> गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं
> हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य।
> कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै-
> र्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः॥
>
> (10.14.7)

'परन्तु भगवन्! जिन समर्थ पुरुषोंने अनेक जन्मों तक परिश्रम करके पृथिवीका एक-एक परमाणु, आकाशके हिमकण (ओसकी बूँदें) तथा उसमें चमकनेवाले नक्षत्र एवं तारों तकको गिन डाला है- उनमें भी भला, ऐसा कौन हो सकता है जो आपके सगुण स्वरूपके अनन्त गुणोंको गिन सके? प्रभो! आप केवल संसारके कल्याणके लिए ही अवतीर्ण हुए हैं। सो भगवन्! आपकी महिमाका ज्ञान तो बड़ा ही कठिन है।'

सगुण भगवान्में तो गुण-ही-गुण हैं। क्या उदार हैं!

स्मरतः पादकमलं स्वात्मानमपि यच्छति।

एकने भगवान्‌के चरण-कमलका स्मरण किया और भगवान्‌ने समूचा अपने-आपको दे दिया।

उत्पद्यतेऽस्ति ममकोऽपि समानधर्मा, कालो हि अयं निरवाधिरविपुलादि पृथिवी। (भवभूति)

कितना सुशील है।

नियम ते शिशुपाल प्रतिदिन देत गनि-गनि गारी

शिशुपाल रोज गाली देता है, लेकिन उनकी? शीलता देखो! पूतना विष पिलाने जाती है, परन्तु उसको 'मातु की गति देहि..।' यह सुशीलता है।

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाई।
मातुकी गति देई ताहि कृपालु यादवराई।।

अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम।।

(भागवत, 3.2.23)

अब एक गुणको गिनो-यह सुशीलता है, यह उदारता है, यह सुन्दरता है, यह मधुरता है-एक-एक गुणकी गणना करो। तो गणना किये से कोई भगवान्‌के गुण समाप्त होते हैं? संस्कृतभाषाका एक कवि हुआ है। तो उसने कहा कि देखो, अब मैं यह तो कह नहीं सकता कि मेरी बराबरीका दुनियामें कोई है कि नहीं है। क्योंकि धरती बहुत बड़ी है। और, यह भी मैं नहीं कह सकता कि आगे कोई पैदा होगा कि नहीं होगा। क्योंकि, काल बड़ा लम्बा है।

लेकिन हमारी जानकारीमें हमारे समान कोई न धरती पर है और न कालमें होनेवाला है। कवि लोग ऐसे सगर्व बोलते हैं।

अच्छा, अगर कोई गिनना चाहे कि भगवान्‌के गुण गिन लें, तो समय बड़ा लम्बा है-अनन्तकाल तक गिनता रहे। धरतीके कणोंको गिन सकता है। अच्छा भाई ऐसे कर लो-एक वर्गफुटमें नहीं, एक

घनफुटमें, जिसमें गहराई भी नाप लेते हैं-उसमें धूलिके कितने कण होते हैं उसको गिन लो और कितने हजार घनवर्ग मील यह पृथिवी है, इसका हिसाब लगा लो। बुद्धिमान क्या नहीं कर सकता है। अच्छा, आकाशमें हिमकण कितने हैं, जलकण कितने हैं-उसको भी कोई गिन सकता है और तारोंसे जो रोशनी आती है, उसमें कितने परमाणु कण है-इसकी भी गिनती हो सकती है। परन्तु, यदि कोई चाहे कि भगवान्‌के कितने गुण हैं तो कहते हैं,

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।

भगवान्‌के गुणोंकी जो गणना करना चाहे, वह बालबुद्धि है। धरतीके कण गिन लो, हिम-जलकण गिन लो और आकाशमें जो तारोंसे ज्योतिष्कण निकलते हैं, उनको गिन लो। परन्तु, अनन्तके अनन्तगुणोंका एक भाग भी नहीं गिना जा सकता।

देखो, सविशेष भगवान्‌की एक-एक विशेषताका ज्ञान कभी किसीको नहीं हो सकता। उसके सामने तो हाथ जोड़ना पड़ेगा। या तो प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न निर्विशेष अधिष्ठानके ज्ञानसे विशेषतामात्रका बाध होगा और या तो ईश्वरकी विशेषताके सामने बड़े-बड़े विद्वानोंको भी अपना सिर झुकाना पड़ेगा। गुणोंको गिन नहीं सकता कोई! अब जिन लोगोंके पास कोई दर्शन ही नहीं है, वह केवल कथा-कहानीके बलपर चलनेवाले मजहब-उनसे बात करनेकी कोई जरूरत नहीं है। यह तो दर्शन-शास्त्र है। यह बच्चोंका निर्णय नहीं है।

नारायण, या तो प्रत्यक्‌चैतन्याभिन्न निर्विशेष ब्रह्म-तत्त्वका साक्षात्कार होकर विशेषतामात्रका बाध हो जायेगा। वह बड़ा सुगम है। और, या तो विशेषताओंको न गिन सकनेके कारण ईश्वरके सामने सिर झुकाकर दण्डवती करनी पड़ेगी। इसमें दूरबीन नहीं चलेगा, खुर्दबीन नहीं चलेगा, कम्प्यूटरसे काम नहीं चलेगा। मशीनी दिमाग यह काम नहीं कर सकता है।

तब फिर करें क्या?

वैराग्य नहीं होनेसे निर्गुण ज्ञान जल्दी समझमें नहीं आता है। बुद्धि-सूक्ष्म न होनेसे निर्गुण जल्दी समझमें नहीं आता है। निर्गुण ज्ञान है सुलभ। जैसे एक कोई गंदा आदमी हो। उससे कहो कि लाल रंगकी चीज तुम्हारे सामने रखी है, हाथसे उठा लो। वह बहुत सुलभ है लालरंगकी चीज उसके लिये उठाना। लेकिन उसके आँख ही नहीं है जिससे वह लाल रंगको पहचान सके? तो यह लाल रंग दुर्लभ नहीं है। आँख होना आवश्यक है।

तो जो छोड़नेवाला है उसका निषेधावधि स्व-स्वरूप है। वही तो ब्रह्म है। और, उसमें निषेध्य और विधेय-कुछ है ही नहीं।

एक बात यह है कि ब्रह्मज्ञान होनेके बाद समाधिमें रहनेका नहीं है, गुफामें रहनेका नहीं है। यह तो पूर्ण स्वातन्त्र्यका दान करता है। क्या जिन्दगीका सार यही है कि मनुष्य गुफामें सिमट जाये? जबतक चारों ओर बहता हुआ परमात्मा नहीं देखोगे, तबतक पूर्णता कहाँ?

अब देखो, दो बात आपको सुना चुके। क्या? एक तो निर्गुण-ब्रह्म सुलभ है और दूसरे सगुण-ब्रह्मका ज्ञान दुर्लभ है। अब प्रश्न है कि हम रहें कैसे?

आओ, अब वह बात आपको सुनाते हैं।

जीवनका रहस्य है, सार है। यह छत्र, चँवरके पीछे नहीं रहता है भला। कोई छत्र-चँवर लगाकर बैठ जाये और बोले कि हम बड़े भारी ब्रह्मनिष्ठाचारी, शाहंशाह, बादशाह! यह किसी मजहबी आचार्यके बसकी चीज नहीं है। वे तो बड़े-बड़े घेरेमें बँधे हुए हैं। पुरोहितकी स्थितिमें हैं। जैसे एक-एक पन्थकी मर्यादाके अनुसार पूजा-पत्री करानेवाले, मुहूर्त बतानेवाले, गोत्र बतानेवाले, यज्ञोपवीत करानेवाले होते हैं, वैसे मजहबी लोग अपना एक-एक गुट लेकर मौलवी होते हैं। यह तो फकीरकी बात है।

आप अपने जीवनमें यदि शान्ति चाहते हैं, सुख चाहते हैं, दुःखका आत्यन्तिक निवारण चाहते हैं, तो आपको जीवनको सुखी

रखनेकी कला सीखनी ही पड़ेगी। आपको एक बात पहले ही हम सुना देते हैं। जो चाहता है कि ईश्वर हमारे ही मनके अनुसार काम करे, संसारमें वह दु:खी रहेगा। क्योंकि, ईश्वर सारे संसारकी अनुकूलता देखकर काम करता है, एकके मनकी अनुकूलता देखकर काम नहीं करता। बोले, हे ईश्वर, आज वर्षा मत करना! हे ईश्वर, आज गर्मी मत डाल!' अब तुम्हीं उसके प्रधानमन्त्री हो जो तुम्हारी सलाहसे सब काम करेगा? अच्छा, जो चाहेगा कि प्रकृति हमारे अनुसार चले-हम जब चाहें तब छींक आवे, जब चाहें तब उवासी आवे, जब चाहें तब नींद आवे! हम चाहें तो शरीरके रोयें बढ़े और न चाहें तो न बढ़ें। अगर ऐसा तुम चाहोगे कि हमारे शरीरके बाल सफेद न होने पावें। माने जब तुम प्रकृति पर अपने मनको चलाना चाहोगे तो दु:खी हो जाओगे।

हमने देखा है, ईश्वरसे सलाह की है। ईश्वरने साफ मना कर दिया कि हम तुम्हारे मनके अनुसार नहीं चलेंगे। प्रकृतिने साफ मना कर दिया कि हम तुम्हारे मनके अनुसार नहीं चलेंगे। तो हमने चेले बनाये कि ईश्वर नहीं चलता है तो छोड़ो। अब चेले तो हमारे मनके अनुसार चलेंगे! अरे, वे भी अपने-अपने मनके अनुसार चलते हैं। तो हमने सोचा कि इनके शरीरमें भी तो मन है। अगर हम दूसरेके मनकी परवाह नहीं करेंगे, हम समझेंगे कि वह पत्थर है, कठपुतली है-जैसा हम सोचें और करे वह! जिसदिन हम सोचें कि प्यास लगी है तो क्या, आज पानी माँगेंगे नहीं और अपने हाथसे उठाकर पीयेंगे नहीं, जब कोई पानी लाकर देगा तभी पीयेंगे! तो उसदिन तीन-चार घंटे प्यासे रह जायेंगे। अरे भाई, दूसरेके भी मन होता है, हमारे मनके मुताबिक कैसे काम करेगा? पति कहता है कि मन हमारा और काम करे कठपुतली पत्नी। और, पत्नी कहती है कि मन हमारा और काम करे कठपुतला पति। पति चाहता है कि हमारी पत्नी सती हो और पत्नी चाहती है कि हमारा पति सत्ता होये। तो ऐसे नहीं बनता है। सबके अन्दर अपना-अपना मन

होता है, अपना-अपना संस्कार होता है, अपनी-अपनी वासना होती है।

संसारमें दुःखी कौन है? आप नोट कर लो इस बात को। जो अपने मनके अनुसार दूसरेको चलाना चाहता है और जब सामनेवाला उसके मनके अनुसार नहीं चलता तो वह सिर पीटता है, दुःखी होता है। अगर आपको शान्तिके मार्ग पर चलना हो तो जो रोये, उसको थोड़ी देर रो लेने दो। जो बाहर जाये तो अपनी किवाड़ी बन्द कर लो कि जाओ, थोड़ी देर घूम आओ। सम्बन्ध तोड़कर सुखी हो सकते हो, सम्बन्ध जोड़कर सुखी नहीं हो सकते। उसके मनको छोड़कर सुखी हो सकते हो, उसके मनको जोड़कर सुखी नहीं हो सकते। यह सुखी जीवन व्यतीत करनेका उपाय है, भला!

तो जो दूसरेके मन पर हावी होना चाहता है, वह दुःखी है। जो समाजमें क्रान्ति हो रही है, जो परिवर्तन हो रहे हैं, जो परिस्थितियाँ बनती जा रही हैं-उनको जो सहन नहीं करेगा वह दुःखी होगा। जो प्रकृतिके परिवर्तनको-बाल सफेद होना, हाथ-पाँव कमजोर होना-इसको मंजूर नहीं करेगा, वह दुःखी होगा। जो ईश्वरकी ओरसे होनेवाली क्रियाको 'मालिक तेरी रजा' करके प्रसन्नतासे स्वीकार नहीं करेगा, वह दुःखी होगा। संघर्ष करनेवाले ही दुःखी होते हैं। जीवन्मुक्तका जीवन अविरोधी जीवन। ईश्वरने कहा, 'बस, देख चुप'! तो चुप! 'अच्छा, तेरी साँस बन्द करता हूँ'। बोले कि ठीक है महाराज! 'अब तेरे शरीरको लिटा देता हूँ'। 'ठीक है।' ईश्वरकी हाँ-में-हाँ मिलाओ तो खुश रहो और अपनी हाँमें ईश्वरकी हाँ मिलाना चाहो तो रोओ! तो,

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो,
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

(10.14.8)

जो पुरुष क्षण-क्षणपर बड़ी उत्सुकतासे आपकी कृपाका ही भलीभाँति अनुभव करता रहता है और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है, एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्‌गद वाणी और पुलकित शरीरसे अपनेको आपके चरणोंमें समर्पित करता रहता है-इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला पुरुष ठीक वैसे ही आपके परमपदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र!

क्या बढ़िया है! भागवतको मैंने कितनी बार पढ़ा है। गुरुमुखसे पढ़ा है। ऐसे बाँचकर नहीं पढ़ा। हम जो बोलते हैं उसको बोलनेका हमको शास्त्रीय रीतिसे अधिकार प्राप्त है। रास्तेमें नोटका बंडल पड़ा था, उठाकर धनी हो गये-ऐसे नहीं है। हमको जिनके पास था, उन्होंने सीधे दिया है।

'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः'-संस्कृतमें एक शब्द होता है 'प्रतीक्षमाण' और एक है 'समीक्षमाण'। आजकल जब हमलोग रेलवे स्टेशन पर जाते हैं तो जिनको पहले हम लोग 'वेटिंगरूम' बोलते थे उनपर अब 'प्रतीक्षालय' लिखा हुआ मिलता है। 'प्रतीक्षा' माने इन्तजार। किसीकी नजरकी ओर हम देख रहे हैं कि उसकी नजरसे हमारी नजर मिले। ईक्षा, ईक्षण और उसके साथ जुड़ा है 'प्रति'। प्रतीक्षा है, माने किसीकी आँखसे हम आँख मिलानेके लिये व्याकुल हैं। परन्तु, इस श्लोकमें यह बात कही जा रही है कि हे प्रभु, हम तुम्हारी अनुकम्पा, अनुग्रह, कृपाको भलीभाँति देखते रहें। 'प्रतीक्षमाणः' नहीं है-देखते रहें कि प्रभु कब कृपा करते हैं, कब कृपा करते हैं। अरे, प्रभु कोई कंजूस है कि इस समय कृपा नहीं करेंगे, दो दिन बाद करेंगे? उनकी कृपाका खजाना कोई खतम हो जायेगा? उनकी कृपाका समुद्र सूख गया? उनकी कृपाका आकाश कहीं हवामें उड़ गया? क्या उनकी कृपाका हिमालय कहीं चूर-चूर हो गया? उनका अनुग्रह, उनकी अनुकम्पा, उनकी कृपा तो क्षण-क्षण, कण-कणमें, एक-एक घटनाके

द्वारा बरस रही है। वे मारते हैं, उसमें भी कृपा है और वे जिलाते हैं, उसमें भी कृपा है। ऐसा आनन्दमय हाथ है! ऐसा प्यारा-प्यारा अनुग्रह है! तुम्हारा इतना काम है कि तुम उसको पहचानो! 'सु' माने सुष्ठुतया 'सं' सम्यक् ईक्षमाणः पश्यन्-प्रत्येक क्रियामें ईश्वरकी कृपाका अनुभव करो। सचमुच कृपा है! तुम देखते नहीं हो!

एक महात्मा बड़े फक्कड़ थे। एक दिन देखा कि एक मुट्ठी रुपया उन्होंने लिया और एक हाँडी दालमें घुसेड़ कर रख दिया। मेरे मनमें आया कि यह फक्कड़ महात्मा और एक मुट्ठी रुपया क्यों छिपाकर रख रहा है। हमको बादमें उसकी बात मालूम पड़ी। वह हमको बताना चाहता था कि रुपया छूनेसे जो परहेज है, वह जिन्दगी भर चलनेवाला नहीं है। और देखो, दूसरे दिन उसके पास कोई ब्राह्मणी आयी कि महाराज, हमको लड़कीकी शादी करनी है। हमारे पास कुछ नहीं है। उन महात्माजीने जाकर दालमें हाथ डाला और उसमें जो रुपया रखा हुआ था, वह निकालकर दे दिया।

हम एक-एक बात बता सकते हैं कि ईश्वर जो कुछ करता है, उसमें उसकी कृपा ही है।

दो मित्र कहीं यात्रामें जा रहे थे। एक सोये और एक जागे। जंगलमें-से जा रहे थे। एक दिन साँप आया। सोये हुएको काटने लगा तो जो मित्र जाग रहा था, उसने कहा कि ठहरो! साँप बोला कि नहीं हम इसको काटेंगे। क्यों काटोगे? इसने पहले एक बार हमको मारा है। हमारा खून बहाया है। हम बदला लेंगे। मित्र बोला कि तुम्हारा खून बहाया है तो तुम भी खून ले लो। डँसते क्यों हो? साँप मान गया कि अच्छा खून दे दो। उस मित्रने अपनी जेबमें-से चाकू निकाला और सोते हुए मित्रके गले पर लगाकर खून निकाला तथा पत्ते पर लिया और साँपके सामने रख दिया कि ले पी ले! जो सो रहा था, वह तो जग गया था। जब उठा तो उसके मित्रने पूछा कि जब मैंने तुम्हारे गले पर चाकू लगाया था तब तुम्हें कैसा लगा था? वह बोला कि मैंने सोचा कि यह

चाकू तो हमको मार नहीं सकता। मारेगा तो हमारे मित्रका हाथ हमको मारेगा! तो आखिर हमारा मित्र हमारे गले पर चाकू लगाता क्यों है? जब तुमने रक्त निकाल लिया और साँपको दे दिया और उससे जो तुम्हारी बातचीत हुई उससे समझमें आ गया कि हमें हमारी मौतसे बचानेके लिए इसने हमारे गले पर चाकू लगाया है। तो यह गले पर चाकू लगानेमें प्रेम था।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः।

यह जीव ईश्वरको भूल गया। अपनी मृत्युको भूल गया। मृत्यु आयेगी-यह तो पक्का है। क्या आप समझते हैं कि मृत्यु नहीं आयेगी? बड़े-बड़े लोगोंको विश्वास नहीं होता। जिनको संत बोलते हैं, महंत बोलते हैं, फकीर बोलते हैं, वे भी सोचते हैं कि हम अभी दस दिन और जीयेंगे, दस वर्ष और जीयेंगे। क्योंकि आत्माका स्वभाव अमृत है, अमर है-इसलिए अपनी मृत्यु पर जल्दी विश्वास नहीं होता। अच्छा तो भगवान्‌ने कृपा करके एक रोग भेज दिया। अरे भाई देखो; उसको अपने मरनेका ख्याल नहीं आ रहा है। जरा जाकर तुम याद दिला आओ कि मृत्यु भी तो आती है! अच्छा, मृत्युकी याद दिलानेके लिए यदि भगवान्‌ने रोग भेजा, तो यह भी कहा कि हमसे दोस्ती करो, हमसे हाथ मिलाओ। एक ओर मौत दिखा दी और दूसरी ओर कह दिया कि हमसे हाथ मिलाओ! तो, यह रोग भेजना क्या भगवान्‌की कृपा नहीं है? बाबा, आप गरीबीके लिए रोते हो। हम नहीं चाहते कि आप नया वर्ष मत मनाओ, दीपावली मत मनाओ। लेकिन मनका दोष है जो आदमी-अपनी गरीबीमें दुःखी होता है, वह धनका दोष नहीं है। हमने ऐसे-ऐसे फक्कड़ देखे हैं, जो सुखी हैं। हमारे पास कितने दिनों तक एक पैसा नहीं था, दोपहरके खानेके लिए कुछ नहीं था, पीनेके लिए हमारे पास दूध नहीं था। लेकिन उस समय क्या हम सुखी नहीं थे? अरे नारायण, आनन्द आता था। चाहे जहाँ धूपमें घासपर सो गये, पेड़के नीचे सो गये और आनन्द आता था। यह तो

मनुष्यके मनकी दीनता है। ईश्वर त्यागी बना दे, वैरागी बना दे, अपना प्रेमी बना दे, अपना भक्त बना ले, सत्संगी बना दे, तो इसमें क्या ईश्वरकी कृपा नहीं है? रोगी बनानेमें भी कृपा है। वियोगी बनानेमें भी कृपा है। योगी बनानेमें भी कृपा है और संसारमें भेजकर चार चपत लगवानेमें भी उसकी कृपा है। चोर बनाकर किसीके घरमें भेजनेमें भी कृपा है कि अरे अब तो, पहचान भई कि तू कितना पतित हो गया है। नरकमें भेजनेमें भी कृपा है। हर हालतमें जैसे एक माँ अपने बच्चेका कल्याण चाहती है-उसको गर्म पानीसे धोनेमें भी, उसका ऑपरेशन करवानेमें भी, उसको चपत लगानेमें और छातीसे लगानेमें, दुलारनेमें, खिलानेमें-पिलानेमें जैसे हर जगह माँकी कृपा बच्चे पर रहती हैं, वैसे जीवनकी एक खास बात यह है कि मनुष्य अपनेको हर हालतमें भगवान्‌की कृपाके समुद्रमें डूबता और उतराता हुआ देखे। यह परमानन्द है। सारा दुःख मिट जायेगा।

सुमिरत गोपाल लाल सब दुःख मिट जइहैं।
चिन्तत लोचन विशाल सब दुःख मिट जइहैं।।

●

आप अपने प्रेमको यदि संसारके किसी पदार्थसे जोड़कर रखोगे तो इसको कहीं ठौर-ठिकाना मिलनेवाला नहीं है। एकको छोड़ेगा और दूसरेके पास जायेगा, दूसरेको छोड़ेगा तो तीसरेके पास जायेगा। यह तो छोड़ते जाओ और पकड़ते जाओ। इस प्रेमको रास्ता दिखाकर भगवान्के पास पहुँचानेवाला कौन है? जैसे कोई महारानी चले और जंगलमें भटक जाये। तो प्रीति तो महारानी है। लेकिन उसको रास्ता बताकर भगवान्के पास पहुँचानेवाली चीज क्या है? वह भगवान्की कथा है। जब भागवत-कथा सुनोगे तो तुम्हारा प्रेम भगवान्के पास पहुँच जायेगा। भगवान्की कथा नहीं सुनोगे तो तुम्हारा प्रेम इस संसारके जंगलमें भटक जायेगा।

भक्त्यैव तथोपनीतया।

भगवान्की कथा मार्ग दिखती है, तब हमारी प्रीति भगवान्की ओर चलती है।

एक अंग्रेजी पढ़ी-लिखी स्त्रीने हमको बताया कि हम विलायतमें घूम आये और वहाँ प्रेम माने शारीरिक संयोग होता है। यहाँके लोग भी पहले प्रेम शब्दका अर्थ शारीरिक संयोग ही समझते हैं और उसके बाद करते हैं प्रेम! हमारी भारतीय संस्कृतिमें, विद्यामें, धर्ममें प्रेम माने शारीरिक संयोग तो है ही नहीं। प्रेम माने तो दिलका संयोग है, हृदय-संयोग है, आत्माका संयोग है। उसमें शारीरिक भूख-प्यास, माँसकी गिनती नहीं है। यह तो तुच्छ है, क्षुद्र है और प्रेम सत्य है, शुद्ध है।

यदि भगवान्की लीला-कथा नहीं सुनेंगे तो हमारी प्रीति दैहिक हो जायेगी, भौतिक हो जायेगी, लौकिक हो जायेगी। वह दुनियादारीकी

भूख और प्याससे युक्त हो जायेगी और भगवान्‌की कथा अगर चालू रहेगी तो हमारी भक्ति, हमारी प्रीति भगवान्‌की ओर चलेगी।

प्रश्न हुआ कि निर्गुणसे प्रेम करें कि सगुणसे करें? बावरे हो भाई! बिलकुल सीधी बात है। हम फक्कड़ी बात सुनाते हैं। हमारे पास हमारे हृदयमें बैठे हुए ऐसे-ऐसे महात्मा हैं जो तीन लोकको एक चुल्लूमें पी जायें। उनके लिए सृष्टिकी कोई गिनती नहीं है। कोई माँ आकर पूछे कि मैं नंगे रहनेवाले अपने छोटे बालकसे प्रेम करूँ कि कपड़ा पहननेवाले बड़े बालकसे प्रेम करूँ? अरे बाबा, दोनों तेरे बालक हैं। सगुणसे भी प्रेम कर और निर्गुणसे भी प्रेम कर। निर्गुण माने नंगा और सगुण माने कपड़ा पहने हुए। निर्गुण माने जिसकी कमरमें करधनी भी न हो। गुण माने करधनी, कांची। तो निर्गुणसे प्रेम करे कि सगुणसे? कपड़ेवालेसे कि बिना कपड़ेवालेसे? अच्छा हम अपने पतिसे कब प्रेम करें? जब वह खूब बढ़िया सुन्दर पोशाक पहने हुए हो-तब करें कि घरमें जब नंगे हो तब उनसे प्रेम करें? अरे तेरा पति नंगा हो तो तब भी प्रेम कर और पोशाक पहने हुए हो तब भी प्रेम कर! प्रेम तुमको पतिसे करना है। उसकी पोशाकसे क्या मतलब? तो यह सगुण और निर्गुण, यह तो पोशाक होना और न होना, उपाधि होना और न होना इसके साथ इनका सम्बन्ध है। प्रीतिका विषय भगवान्‌को बनाओ-चाहे वह निरावरण हो, चाहे सावरण हो, चाहे निरुपाधि हो, चाहे सोपाधि हो, चाहे सगुण हो, चाहे निर्गुण हो, चाहे सविशेष हो, चाहे निर्विशेष हो; लेकिन अपनी प्रीतिका विषय माने जिससे हम प्रेम करें, वह भगवान् हो।

अब एक प्रश्न हुआ कि भाई हम तो भगवान्‌से प्रेम करें, ठीक है। परन्तु भगवान् भी हमसे प्रेम करते हैं कि नहीं? यह छठा पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ और भगवान्‌से प्रेम करना पाँचवाँ पुरुषार्थ है। और, भगवान् हमारे प्रेममें डूबे रहते हैं-यह अनुभव होना छठा पुरुषार्थ है। उनको हमारे सिवाय और कुछ सूझता नहीं है। तो

आओ, इसकी एक दार्शनिक व्याख्या सुनावें और एक पौराणिक व्याख्या सुनावें!

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्।।

(10.14.8)

श्रीचैतन्य महाप्रभुको यह श्लोक बड़ा प्यारा लगता था। आपको मैं भागवतकी तीन बात एक साथ सुनाता हूँ। उनकी तुलना करो। आजकल तुलनात्मक विवेचनकी पद्धति है। तीनोंका विश्लेषण करके, तात्पर्यमें संश्लेषण कर लो। उपायमें अलग-अलग विचार करके और अन्तमें लक्ष्यमें एकता कर दो।

क्या एकता है? श्रीमद्भागवतमें एक जगह यह आया कि,

क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीश-
स्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः।।

(3.16.37)

वे प्रभु हमारा मंगल करेंगे, हमारा कल्याण करेंगे, हमारा क्षेम करेंगे। उसमें बहुत ऊहापोह, बहुत उधेड़बुन, बहुत विमर्श-परामर्श करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इससे किसी प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होती। 'तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः'-हम क्यों उधेड़बुनमें पड़ें? प्रभु हमारा कल्याण करेंगे। हम अपनी जगह पर बैठे हैं।

इसमें देखो हमारे विश्वासकी प्रधानता है। यह भक्तिका एक सिद्धान्त है। बोले-ठीक है, हम विश्वास लेकर तो बैठे हैं। परन्तु हमसे अपराध बहुत होते हैं। प्रभु क्षमा करेंगे कि नहीं करेंगे? यह दूसरी बात देखो-

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।

किमस्ति नास्ति व्यपदेशभूषितं
तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः।।
(10.14.12)

यदि माँके पेटमें बच्चा हो और पाँव पटकता हो-तो क्या माँ उसको अपराध मानती है? कई-कई बच्चे पेटमें भी बड़े ऊधमी होते हैं। एक जगह बैठते ही नहीं हैं। तो क्या माँ ऊपरसे उसको तमाचा जड़ती है? तमाचा जड़ना होगा तो पहले अपने पेट पर ही तमाचा जड़ना पड़ेगा। तो चाहे कोई आस्तिक हो, चाहे नास्तिक हो-भगवान्‌को माने कि न माने, उपद्रव करे, परन्तु है तो प्रभुके पेटमें ही न! तो जैसे माँ पेटके अपने अबोध बच्चेके उपद्रवको उपद्रव ही नहीं मानती, बल्कि खुश होती है कि हमारा बेटा जो होगा, वह बड़ा फुर्तीला होगा, बड़ा तेज होगा, बड़ा समझदार होगा।

तो; वे हमारा कल्याण करेंगे यह हुआ एक विश्वास और वे हमारे अपराधको अपराध ही नहीं मानेंगे, यह विश्वास अब यह तीसरी इनसे भी गहरी बात है कि,

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।

वे हमारे ऊपर निरन्तर कृपा कर रहे हैं। 'अनुलक्ष्य कम्पनम् अनुकम्पा' जीवकी ओर देखकर भगवान्‌के दिलका थर-थर काँपना, भगवान्‌का दिल धड़कने लगना, इसका नाम 'अनुकम्पा' है। 'अनु अनुलक्ष्य जीवं कम्पनं कम्पा'-जब भगवान् जीवकी ओर देखते हैं, इसके अपराधकी वृत्तियोंको देखते हैं तो उनका हृदय करुणाकी अधिकतासे काँपने लगता है। कँपकपी हो जाती हैं। माने दिल धड़कने लगता है कि कैसे इसके ऊपर कृपा करें? इसको बोलते हैं अनुकम्पा-कृपा करनेके लिए भगवान् व्याकुल हो जाते हैं।

है तुलसी परतीति एक, प्रभुमूरति कृपामयी है।

हमें अपने साधन पर भरोसा नहीं, भजन पर भरोसा नहीं। हम जो धर्म, कर्म करते हैं-उस पर भरोसा नहीं। जप, ध्यान करते हैं-उस पर

भरोसा नहीं। योग, वियोग होता है-उस पर भरोसा नहीं। केवल एक विश्वास है। क्या? *प्रभुमूरति कृपामयी है!*

'सा त्वरा क्व लयंगतः'-भगवान् कभी-कभी उतावले हो जाते हैं। गजेन्द्रकी रक्षाके लिए उतावले हो गये थे। द्रौपदीकी रक्षाके लिए उतावले हो गये थे। हमारी रक्षाके लिए वह उतावली क्या कहीं चली गयी है? तो यह तो त्वरा है-उसका नाम अनुकम्पा है।

हमको एक महात्माने सुनाया कि 'जब ते जीव हरि ते बिलगान्यो' यह जीव जबसे हरिसे बिछुड़ा और देह, गेहको अपना मान लिया, वासनाके भटकाये संसारमें भटकने लगा-उसी दिनसे भगवान् दोनों हाथ फैलाये और छाती खोलकर खड़े हैं कि मेरा प्यारा जीव जबतक नहीं आ जायेगा, हमारी छातीसे नहीं लग जायेगा जबतक हम हाथ कैसे समेटें? तबतक हम विश्राम कैसे करें? नींद छोड़कर, भूख छोड़कर, विश्राम छोड़कर दोनों हाथ फैलाये भगवान् तुम्हारे इन्तजारमें खड़ें हैं कि हमारा प्यारा जीव हमारे पास लौट आवे। प्रभुकी प्रीति देखो!

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः।

सन् 1938में, स्पेशल ट्रेन निकली थी। मैं उसमें सारे भारतवर्षकी यात्रा करनेके लिए गया था। सेठ जयदयालजी गोयन्दका थे। जहाँ पण्डितोंकी भीड़ हो जाती तो सेठ जी हमको सामने कर देते। यह उनका स्वभाव था। बैजवाड़ेमें जब रेल पहुँची तो वहाँके लोग हिन्दी तो जानते नहीं थे। सेठजी भी हिन्दी, मारवाड़ीको छोड़ दूसरी भाषामें बात नहीं करते थे। वहाँ व्याख्यान देनेके लिए हमको आगे कर दिया। मैंने यह बात उन लोगोंको सुनायी कि कृपाकी प्रतीक्षा नहीं करनी है, समीक्षा करनी है। प्रतीक्षण नहीं समीक्षण। उसका इन्तजार नहीं करना है, उसको पहचानना है। इन्तजारमें और पहचाननेमें फरक होता है। अभी न हो और आगे आनेवाली हो तब तो इन्तजार करें और अभी हो; परन्तु हम न

पहचानते हों तो हम पहचान लें। यहाँ **'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष-माणः'** का अर्थ है कि भगवान्‌की कृपा निरन्तर निर्हेतुक अधिकार-निरपेक्ष है। जैसे सूर्य वेदपाठीको भी अपनी रोशनी देता है कि वेद पढ़ो और कोई चोरी करना चाहे तो सूर्य उसको भी रोशनी देता है। वह यह नहीं देखता कि यह वेदपाठी है और वह चोर है। रोशनी देना उसका काम है। इसी प्रकार भगवान् यह देखे बिना कि हमारी कृपा किसके ऊपर गिर रही है-अधिकारीका विचार किये बिना जैसे अपनी सत्तासे सबको सत्तान्वित कर रहा है, जैसे अपने ज्ञानसे सबको ज्ञानान्वित कर रहा है, वैसे ही अपने आनन्दसे सबको आनन्दित, अपनी कृपासे सबको सराबोर कर रहा है।

कृपा भगवान्‌की किसपर है? जिसपर भगवान् हैं। भगवान्‌की कृपा कहाँ है? जहाँ भगवान् हैं। भगवान्‌की कृपा कब है? जब भगवान् हैं। भगवान्‌की कृपा क्या है? जो भगवान् हैं। इसका मतलब हुआ कि कृपा-ही-कृपा है।

अब, बैजवाड़ामें जो पण्डित लोग थे-वो पगड़ी बाँधे और चदरा कन्धे पर रखे हुए सभामें खड़े हो गये। बोले कि क्या भगवान् अधर्मी पर भी कृपा करते हैं? चोर पर भी कृपा करते हैं? वे लोग श्रीरामानुज संप्रदायका तिलक लगाये हुए थे। तो मैंने श्रीरामानुज सम्प्रदायमें भगवान्‌की कृपा कैसी मानी जाती है-वह उनको सुनाया। श्रीरामानुज सम्प्रदायमें ही इसके लिए दो मत है। एक मत यह है कि भगवान् सबपर कृपा करते ही हैं। शरण्यका जो गुण है वह पूरी तरहसे है कि आश्रयको सुगम बना दे, आश्रितका कार्य बना दे, साधनहीनके घर पहुँच जाये, दोषीको स्वीकार कर लें। ये सब गुण भगवान्‌में मौजूद हैं। पर अन्तमें एक बात आयी कि वेदान्त देशिकाचार्यके मतमें यह है कि भगवान् कृपा तो सबके ऊपर करते हैं, परन्तु जिसके हृदयमें कृपाकी माँग होती है उसके हृदयमें कृपा उतरती है और जिसके हृदयमें कृपाकी माँग नहीं होती है, कृपाकी प्यास नहीं होती-उसके ऊपर कृपा नहीं उतरती।

उनका कहना है कि 'रक्षापेक्षाम् अपेक्षते।' भगवान् अपेक्षा करते हैं। क्यों नहीं कृपा कर देते? बोले कि भगवान् इन्तजारकर रहे हैं। क्या इन्तजार कर रहे हैं? अरे जब हमसे माँगे कि रक्ष-रक्ष प्रभु, पाहि माम्, पाहि माम्, त्रायस्व-हमारी रक्षा करो, रक्षा करो-यह पुकारे तब हम इसकी रक्षा करें! तो वे लोग बड़े ही संवैधानिक हैं। कर्म-काण्डको भी मानते हैं। बोले कि जब भगवान् सब पर कृपा करें तब तो मच्छर पर भी कृपा करें, जुएँ पर भी कृपा करें, पापी पर भी कृपा करें। सबका उद्धार हो जाये। लेकिन भगवान्‌की बनायी हुई एक मर्यादा है कि जो उनसे कृपाकी याचना करे-उसके ऊपर कृपा करते हैं।

'रक्षापेक्षाम् अपेक्षते'-अब मैंने उनसे पूछा कि यह रक्षाकी जो अपेक्षा है जीवके हृदयमें भगवान्‌से रक्षा करनेकी प्रार्थनाका जो भाव उदय होता है-यह कौन देता है? माना कि पुकारने पर रक्षा करने आते हैं। पर, जीव भगवान्‌को पुकारने लग जाये-यह प्रेरणा कौन देता है? तो, आप जानते हैं कि वैदिक संस्कृतिमें, हिन्दू-धर्ममें खुदा और शैतान ऐसी कोई दो चीज नहीं हैं। एक ही परमेश्वर माना जाता है।

जाके बल लवलेस ते जितेउ चराचर झारि।

रावणके हृदयमें भी बैठकर उसको बल देनेवाला भगवान् है। तो देखो न! एक ही बिजली है जो बल्बको रोशनी देती है, पंखेको घुमाती है, हीटरमें आग जलाती है, रेफ्रिजरेटरको ठंडा करती है, लाउडस्पीकरमें आवाज भरती है। सो रक्षाकी अपेक्षा भी भगवान् ही जाग्रत् करता है।

स एव साधु कर्म कारयति यमुन्निनीषति।
स एवासाधु कर्म कारयति यमधोनिनीषते।।

भगवान् जिसको अपनी गोदमें उठाना चाहता है-उसके हृदयमें पुकार जगाता है। और, जब वह पुकारता है तो वह गोदमें उठानेके लिए तत्पर हो जाता है। माँ जिस बच्चेको गोदमें लेना चाहती है तो धीरेसे उसको चिकोटी काट दे और वह रोने लगे तो झट उसको उठा

ले, और बच्चे कहें कि हमको, हमको तो बोले कि अरे यह रो रहा है-पहले इसको लेने दो। ऐसे ही अपेक्षा भी एक ब्याज है भगवान्‌का। ब्याज है माने बहाना है। भगवान्‌को एक बहानेकी जरूरत रहती है कि वे कोई बहाना बनाकर कि अरे भाई, इसको तो गुरुने स्वीकार कर लिया, इसने तो हमारा नाम ले लिया, इसने तो हमारी पूजा कर ली, इसने तो तुलसी ले ली, गंगाजल ले लिया। इसमें जीवका पुरुषार्थ नहीं है। वह तो भगवान् कोई-न-कोई बहाना बना लेते हैं। यह भगवान्‌की बिलकुल बहानेबाजी है कि अजामिलने अपने बेटेका नाम लिया और वे बोलते हैं कि क्या हुआ जो उसके मनमें अपने बेटेका नाम है, लेकिन नाम तो वास्तवमें हमारा ही है। यह उसके उद्धारका बहाना है।

अच्छे-अच्छेका हम वर्णन करते हैं। क्यों? क्योंकि अच्छे-अच्छेमें भगवान्‌की कृपा है-यह तो सब समझते हैं। भगवान् पाँच रुपया दें तो उसको धन्यवाद देंगे कि आपने हमारे घरमें पाँच रुपया भेज दिया बड़ी कृपा है, बड़ी कृपा है। इसको तो सब समझते हैं। ईश्वरकी कृपासे हमारे बेटेका ब्याह हो रहा है। ईश्वरकी कृपासे हमारे पौत्र हुआ है। ईश्वरकी कृपासे हम रोग मुक्त हो गये। यह बात तो सब लोग अपने पत्रमें लिखते हैं। कोई-कोई पत्र आता है कि जिसमें लिखा रहता है कि ईश्वरकी कृपासे हमारे पिताकी मृत्यु हो गयी। ईश्वरकी कृपासे महाराजाधिराजका स्वर्गवास हो गया और बड़े हर्षका विषय है कि उनके पुत्र राजकुमार अमुककी राजगद्दी होनेवाली है। आप कृपा करके अपना आशीर्वाद भेजिये। तो कई बेटे अपने बापके मरने पर बहुत खुश होते हैं। हम हँसीकी बात नहीं बोलते हैं। हम सचमुच जानते हैं-सो बोलते हैं।

तो आओ भगवान्‌की अनुकम्पा देखो! आप ईशावास्योपनिषद्‌का वह मन्त्र देखें-

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदवन्तिके। (5)

सगुणरूपेण तद् ब्रह्म एजति-एजते, कम्पनार्थक 'एज' धातुसे लौकिक व्याकरणमें एजते बनता है और वैदिकमें एजति भी बनता है। 'तदेजति' ईश्वर काँप रहा है। वेदान्तदर्शनमें एक कम्पनाधिकरण है। जैसे कोई आदमी काँपता है तो आप ध्यानसे देखेंगे तो पता चलेगा कि अलग-अलग शक्ल बनती है। कम्पनसे तो आकृति बनेगी। तो यह मोहमें प्रपञ्च दिखायी पड़ रहा है, यह क्या है? जैसे देखो, समुद्र काँपता है तो लहर बनती है-कोई छोटी और कोई बड़ी होती है। और, पर्दे पर तस्वीर काँपती है कि नहीं? ली हुई फोटोमें-से जब प्रकाश गुजरता है तो वह गुजरता हुआ प्रकाश जो है वह तस्वीरकी छाया भी ले जाता है और उसको नचाता है तो तस्वीर नाचती हुई मालूम पड़ती है। यह सृष्टि क्या है? आपको इसका दर्शन बताते हैं।

तान्त्रिकोंने यह सिद्धान्त माना हुआ है कि यह भगवत्तत्त्वका स्पन्दन है। हिलता हुआ भगवत्तत्त्व ही सृष्टिके रूपमें भास रहा है। इसमें चोर-चमार, इसमें साधु और काफिर, इसमें बड़ा और छोटा, इसमें सेठ और नौकर, राजा और प्रजा ये क्या हैं? ईश्वरकी ही काँपती हुई मूर्तिमें ये लहरकी तरह हैं, सीकर-बिन्दुकी तरह हैं। ये जितने अलग-अलग मुण्ड दिखायी पड़ रहे हैं-ये अनन्त, अनादि, परिपूर्ण, अद्वितीय ईश्वरके भीतर कम्पनबिन्दु हैं। ये सच्चिदानन्द-बिन्दु ही कम्पायमान होकर सृष्टिके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं। एक भगवान्के सिवाय न कोई चींटी है, न कोई हाथी।

देखो, आगमें जब हवन करते हैं तो लपट उठती है। आप कभी गौर करके देखना कि उस लपटमें कभी मालूम पड़ेगा कि वह शिवलिंग हैं। कभी मालूम पड़ेगा कि शालग्राम है। कभी मालूम पड़ेगा कि इन्द्र है। कभी मालूम पड़ेगा कि चन्द्रमा है, कभी मालूम पड़ेगा कि सूर्य है। वह अग्नि-ज्वाला जो काँपती है उसमें भिन्न-भिन्न आकृतियाँ भासती हैं। यह जो वायुका कम्पन है, आप हिलते हुए पेड़को देखिये मजा आ जायेगा। अरे बहू-बेटीके ख्यालसे छुट्टी नहीं मिलती। तुम्हें

क्या मालूम पड़े? दिन-रात घर भरके फिक्रमें पड़े हो, तुमको फिर मालूम क्या पड़े? देखो, इसीलिए हम लोग कभी-कभी तिरस्कारकी भाषामें बोल देते हैं।

तो एक तत्त्वमें शकल तब ही बन सकती है, जब कम्पन हो। किसी भी तत्त्वमें आकृतियोंकी उत्पत्ति तब होगी; जब उसमें स्पन्दन हो।

कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत् स्पन्देन तद्व्यापकम्।
स्पन्दश्चापि यथा जगत्तु विदितः शब्दान्वैसर्वदा।।

तो, यह जो दुनियामें जितनी शकलें मालूम पड़ रही हैं, मच्छरकी, पशुकी, पक्षीकी, मनुष्यकी, देवताकी, दानवकी-ये क्या हैं? यह हिलता हुआ सगुण-ब्रह्म है। **'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः'** जैसे सिनेमाके पर्दे पर एक ही प्रकाश नाना प्रकारकी आकृतियोंमें प्रकट होता रहता है, वैसे ही यह नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-निर्विकार-निर्धर्मक निर्विशेष ब्रह्मरूप अधिष्ठानमें, पर्दे पर यह जीवकी दृष्टिसे दीखनेवाला सगुण-ब्रह्मका नृत्य हो रहा है। जो यह प्रपञ्च है। इसमें मुर्दा भी दिखता है और नवजात शिशु भी दिखता है। आता हुआ भी दिखता है और जाता हुआ भी दिखता है। सोता हुआ भी दिखता है, जागता हुआ भी दिखता है। अरे देख-रे भाई देख, खोल दे पलक देख ले खलक। खलक माने दुनिया और खलकमें खालिक माने ईश्वर। इस खलकमें खालिक भरा है। पलक खोलो और खलकमें खालिकको देखो! रोम-रोममें देखो! कण-कणमें देखो। क्षण-क्षणमें देखो सत्संगी भाई, तुम यह पहचानो कि तुम्हारे दिलमें राग-द्वेष बढ़ रहा है तो जल्दी दूर करो। घमंड बढ़ रहा है तो जल्दी दूर करो, दोष-गुणकी दृष्टि बढ़ रही है तो जल्दी दूर करो। भय बढ़ रहा है जल्दी दूर करो। जो दोष-गुणके भावाभावका अधिष्ठान है, उसको देखो।

बोले कि महाराज, आप तो बस ईश्वर, ईश्वर, ईश्वरकी बात करते हो। ईश्वरके चक्करमें पड़ जाये तो खाना-पीना भूल जाये। कहाँसे पैसे

आयेंगे? श्रीमतीजी कैसे खुश रहेंगी। बोले कि देखो, जो तुम्हारी चिन्ता करता है, वह सबकी चिन्ता करता है। तुम फिक्र मत करो।

अच्छा, तुम्हारे जीवनमें कोई ऐसी बात आती है कि नहीं जो तुम नहीं चाहते हो? तुम दुःख चाहते हो? बोले कि नहीं। उससे बचनेका परहेज़ करते हो? हाँ, करते हैं। कोशिश करते हैं, बुद्धि लगाते हैं कि दुःख न हो फिर भी दुःख क्यों आता है? है न तुमसे ज़्यादा बलवान् कोई-जो तुम्हारे बुद्धि लगाने पर भी, यत्न करने पर भी, बचनेकी चेष्टा करने पर भी तुमको दुःख देता है। जो तुम्हारे कर्मके अनुसार दुःख देनेमें इतना सजग है, इतना सावधान है-वह क्या तुमको सुख नहीं देगा? मैंने अपने जीवनके अनेक अवसरों पर देखा है-जब मैं चुप हो गया तब ईश्वरने मेरी ओरसे बोलना शुरू कर दिया। जिस कामको मैंने छोड़ दिया उसको ईश्वरने पूरा किया। जब हमने रोटी बनानी बन्द कर दी तब ईश्वरने बनी-बनायी रोटी दी। यह मैंने देखा है और एक बार नहीं हजार बार देखा है। आप क्या समझते हैं? अपने बुद्धिके अभिमानमें फँसे हैं। कहीं इसको झुकने दो, नम्र होने दो। थोड़ी बुद्धिमें भी विनय आने दो।

'भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्'-कर्मानुसार, धर्मानुसार फ़ल ईश्वर देता है। उसका भोग करो। भुञ्जान एव-उसका भोग करो, इन्कार मत करो। यदि कर्म करते समय इन्कार कर देते तो ठीक था। इन्कार करनेका समय कब होता है? जब बुरा कर्म करनेके लिए पाँव उठते हैं, हाथ उठते हैं, बुरी बात बोलनेके लिए जीभ उठती है उस समय अगर तुम इन्कार कर देते तो तुम्हारे जीवनमें दुःख आता ही क्यों? लेकिन उस समय तो तुमने इन्कार किया नहीं। हाथसे पराये मालको उठाया, पाँवसे बुरी जगह गये। जीभसे दूसरोंकी निन्दा की और जब अब उसका नतीजा आया, जुर्माना हुआ, सजा हुई, तब इन्कार करते हो। अब इन्कार करनेसे नहीं चलेगा। वह समय तो बीत गया।

हमारे सामनेकी यह बात है। एक आदमीने एक गलती की एक

सत्पुरुषके सामने। उनको वह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने बाँये हाथसे गलती करनेवालेका हाथ पकड़ा, दाहिने हाथसे दो चपत गाल पर मारे कि तुमने यह काम क्यों किया है? आप क्या समझते हैं? वह जो साधक था, वह बोला कि प्रभु, तुम हमको इतना अपना समझते हो! मैं तो इतने अपनेपनको समझता ही नहीं था।

तो नारायण, वह साधक तो खुश हो गया कि आप मेरी गलती दूर करनेके लिए, मेरे ऊपर क्रोध करके चपत लगावेंगे-यह आपके बारेमें हमारी कल्पना नहीं थी। आप हमको इतना अपना समझते हैं!!

मनुष्य अपनापन समझनेमें गलती करता है। वह समझता है कि हमारे साथ अन्याय हुआ। जो काम मेरा समझकर होता है उसको आदमी भूलसे अन्याय समझ बैठता है। एक पत्नीने अपने पतिसे कहा कि आज हमारा गुलाबजामुन खानेका मन है, बाजारसे ले आओ। पति गया और गुलाबजामुन खरीदकर ले आया। सामने पड़ोसीकी स्त्री खड़ी थी। उसने कहा कि ओ हो, आज तो तुम गुलाबजामुन लेकर आये। बड़ी अच्छी लगती है। उसने पूछा कि तुम्हें पसन्द है क्या? वह बोली कि हाँ। तो उसने वह पड़ोसिनको दे दिये। अब घरमें जो घुसा तो श्रीमतीजी डंडा लेकर खड़ी थीं। हमारे लिए गुलाबजामुन लाये और पड़ोसिनको खिला दिया। वह बोला भाई, तुम तो अपनी हो, एक दिन बिना गुलाबजामुनके भी रह सकती हो। एक दिन भूखी भी रह सकती हो। हम तुमको भूखे रखनेके अधिकारी हैं। लेकिन पड़ोसिनके माँगने पर भी अगर हम उसको न देते तो हमारी और तुम्हारी दोनोंकी प्रतिष्ठा धूलमें मिल जाती। क्या तुममें इतनी भी उदारता नहीं है कि हम पड़ोसिनके माँगने पर चार गुलाबजामुन उसको दे दें? लेकिन, श्रीमतीजीकी समझमें यह कब आवे? जब उसका अपनापन होगा।

भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।'

अरे बाबा, अपना प्यारा जो दे, उसका भोग करो। तुम चीज क्यों देखते हो? हाथ क्यों नहीं देखते? चीज दिखती है और हाथ नहीं दिखता है, तो बेवकूफ है। देनेवाला कौन है? दुश्मन आज अगर मिठाई भी दे तो कल जहर भी दे सकता है और दोस्त आज जहर भी दे तो वह दवा हो सकती है। तो, ईश्वर पर क्या इतना भी विश्वास नहीं है कि वह हमारा दोस्त है। वह हमें जन्म देता है, इसमें भी दया है। वह हमको रुलाता है, इसमें भी दया है। वह हमको वियोग देता है, इसमें भी दया है। वह हमको अपमानित करता है, गाली देता है, इसमें भी दया है। वह हमको भूखा रखता है, इसमें भी दया है। वह हमको जब मारता है, एक शरीर छुड़ाकर जब दूसरे शरीरमें ले जाता है-वह भी दया है।

अब प्रश्न यह आया कि, जीवनकी शैली क्या है? बोले,

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते।

हृदय, वाणी और शरीर इनको नम कर दो। ईश्वरके सामने झुका दो। सख्त मत करो। अपनेको मोम बनाकर भगवान्‌के सामने रख दो। ईश्वरके मनमें अगर खेलनेका आवे तो तुम अपनेको गीला आटा अथवा मोम बनाकर रख दो। वह चाहे जिस शक्लमें तुमको बनावे और बनाकर खुश हों। तुम्हें उस शक्लमें नंगा देखकर कि रोते देखकर कि हँसते देखकर अगर ईश्वर खुश होता है तो तुमहारा जीवन सफल हो गया। अपनेको नम्र बनाकर ईश्वरके सामने रख दो।

ते तुभ्यं नमः विदधत् कैः? हृद्वाग्वपुर्भिः-

हृदय भी नरम और शरीर भी नरम। शरीरको ज़हाँ भेजे वहाँ जाने दो।

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं।
तेहि तेहि नाथ देहु यह हमहीं।।
सेवक हम स्वामी सियनाहू।
होऊ नाथ एहि भाँति निबाहू।।

(रामचरितमानस)

नाथ योनिसहस्त्रेषु येषु-येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वचला भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि।।
दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो,
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ
चरणौ ते मरणेऽपि चिन्तयामि।।

ऐसे भगवान्‌के सामने बोल दो।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु माम्,
अदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।

मैं उसके चरणोंकी दासी, चरणोंकी रता, लता हूँ। वह मुझे उठाकर अपने हृदयसे लगावे और पीस दे, माने गाढ़ आलिंगन करे अथवा कभी दर्शन न करे, दर्शन न देवे और हमारे हृदयको पीड़ित करे, मर्माहत कर दे।

यथा तथा वा विदधातु लम्पटो।
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः।।

उसकी मर्जी हो, वैसा वह करे। हमारा प्राणनाथ तो वही है।

असुन्दरः सुन्दरशेखरो वा
गुणैर्विहीनो गुणिनां वरो वा।
द्वेषी मयि स्याद् करुणाम्बुधिर्वा
कृष्णः स एवाद्य गतिर्ममास्ति।।

वह चाहे सुन्दरोंका शिरोमणि हो और चाहे असुन्दर हो, वह गुणहीन हो अथवा गुणियोंमें श्रेष्ठ हो, मुझसे द्वेष करे या मेरे प्रति प्रीति करे, कुछ भी करे–मेरा तो स्वामी वही है।

स्वर्ग, नरक, अपवर्ग समाना।
जहँ-तहँ दीख धरे धनुबाना।।

(रामचरितमानस)

●

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्।।

ब्रह्माजीके सामने श्यामसुन्दर खड़े हैं। यह 'ते' पदका अर्थ है। क्योंकि 'तत् ते तव' जब तुम बोलते हैं तब कोई सामने होता है। मध्यमपुरुषके प्रेमकी यह शक्ति है कि जिससे बात कर रहे हैं वह सामने खड़ा है। यह जो 'युष्मद्'का षष्ठी एकवचन है 'तव', विलक्षण है। कहाँ 'युष्पद्' और कहाँ 'तव'! कोई एक अवयव भी तो 'युष्मद्'में-से 'तव'में नहीं आया हुआ है। अब यह युष्मद् शब्दका परिणाम है 'तव' कि विकार है 'तव' कि आरम्भ है 'तव'। नारायण! कुछ नहीं, बस युष्मद् और तवके रूपमें जितना अन्तर है, ब्रह्म और कृष्णके रूपमें उतना ही अन्तर है। जो 'स्व' है वह सम्मुख प्रत्यक्ष होकर खड़ा है।

भक्ति-सिद्धान्तमें ऐसा माना जाता है कि भगवान्‌के बारेमें हमको ऐसे सोचना चाहिए कि दर्शन-समानाकार वृत्ति हो, जैसे कोई बिलकुल अपने सामने खड़े भगवान्‌को देख रहा हो, ऐसे हमको देखना चाहिए। आपको कहानी, मनोरंजनकी बात नहीं सुनाते हैं। आप यह देखो कि भगवान् बिलकुल आपके सामने खड़े हैं। और बहुत दूरकी कौड़ी लेने जानेकी जरूरत नहीं। यह 'तत्' पदका अर्थ है। भगवान्‌के तत्त्वका, उनके गुणका, उनके प्रभावके तत्त्वका, उनके रहस्यका आलोचन करना बड़ा कठिन है। ब्रह्माजी, सनकादिके लिए भी अशक्यप्राय है। दुनियामें हमने यह सुना है कि एकने समुद्र पी लिया था, हमने यह सुना है कि एकने त्रिलोकी उत्पन्न कर दी थी। हमने सुना था कि एकने वायुको स्तब्ध कर दिया था। हमने यह सुना है कि एकने सूर्यकी गति रोक दी थी। परन्तु हमने अभी तक यह नहीं सुना है कि किसी संसारमें

भगवान् के गुणोंकी गणना कर ली हो। आपने सुना है कभी? यह तो अशक्य है न! हम लोगोंको एक-एक इन्द्रियसे कितने गुण दिखते हैं? हमको जैसे आँखसे रूप ही दीखता है और भगवान्‌को आँखसे गन्ध, रस, रूप, स्पर्श शब्द सब दिखते हैं। भगवान्‌के एकमें सब होता है और सबमें एक होता है। अब हमारे तो पाँच ही ज्ञानेन्द्रिय हैं। जरा भगवान्‌के देखो!

दर्शन समानाकारवृत्ति करो! छोड़ो गुणोंकी गणना, गुण-तत्त्वालोचन। जिसको देखा ही नहीं उसको 'नेति' कहनेका तो तुमको कोई अधिकार ही नहीं है। पहले देखो फिर कहो कि यह नहीं है। जैसे हम किसीको ढूँढ रहे होंऔर कोई आदमी उसको लाकर सामने खड़ा कर दे कि देखो यह है। बोले कि नहीं, यह नहीं है। जबतक सामने नहीं आवेगा, तबतक नेति कैसे बोलोगे? तो नारायण, **तत् तस्मात्** इसलिए **'ते तव अनुकम्पाम् सुसमीक्षमाणः'** देखो, भगवान्‌की अनुकम्पा देखो! नटन्तं नन्दनन्दनम्।

एक इसमें आपको मजेदार अन्तर बतावें। संस्कृतके पंडितका ध्यान भी इस ओर जल्दी नहीं जायेगा। यहाँ 'नटन्तं' पद जो है वह 'नृत्यन्तं'के अर्थमें नहीं है। नृत्यन्तं नन्दनन्दनम् ऐसे बोल सकते थे न! अच्छा, नटतिसे सत् प्रत्यय करके नटति इति नटं तं नटन्तम् ऐसा भी नहीं है। यहाँ 'नटन्तं'का अर्थ है नटवत् आचरन्तं नट इव आचरति इति नटति-नटकी तरह आचरण कर रहा है। जैसा है, वैसा नहीं दीख रहा है।

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।' इन्द्र अपनी मायाके द्वारा अनेक रूपमें दिखायी पड़ रहा है।

तो यह विश्वका जो दर्शन है, यह क्या है? यह भगवान्‌का नटवत् आचरण है। हमने कश्मीरी शैव दर्शन सिद्धान्तका आलोचन किया है। वे कहते हैं कि,

भोक्तैव भोग्यभावेन तदा सर्वत्र संस्थितः।
तेन शब्दार्थचिन्तासु न स शब्दो न यः शिवः।।

भोक्ता जो महेश्वर है, वही भोग्य रूपसे सर्वत्र अवस्थित है। इसलिए जब हम शब्दार्थका चिन्तन करते हैं आपको क्या बतावें? ऐसा कोई शब्द ही नहीं है जो भगवान्‌का नाम न हो और ऐसा कोई रूप नहीं है जो भगवान्‌का रूप न हो।

संस्कृत भाषामें ऐसा सामर्थ्य है कि आप कोई भी शब्द बोलो अन्ततः उसका भगवान्‌में पर्यवसान हो जायेगा। बोले–घटः। घट शब्दका अर्थ तो घड़ा है। नहीं–नहीं, घटयति घट चेष्टायाम् –घटयति चेष्टयति निखिलं जगत् इति घटः परमात्मा। जो सारे जगत्‌को नचाता है, उसका नाम घट है। 'पटः' पटवत् आप्नोति निखिलं जगत् इति पटः परमात्मा। भवति इति भवः प्रपंचः।

तो सर्व भगवद्रूप है। इसमें जितना रागद्वेष है, वह अज्ञानमूलक मनकी मलिनता है। जहाँ–जहाँ हम श्रेष्ठ समझकर फँसते हैं, वहाँ भी अज्ञानमूलक मलिनता है। और, जहाँ–जहाँ हीन समझकर द्वेष करते हैं, वहाँ भी अज्ञानमूलक मनकी मलिनता है। आओ, जरा प्यारकी नजरसे देखो तब मालूम पड़ेगा। प्यार वस्तुको सँवारता है। आपका बच्चा अगर कभी चोरी करे, झूठ बोले और कोई बात छिपावे और आपकी पड़ोसिन उलाहना देनेके लिए आवे तो देखो माँ कैसे संभालती है कि अभी भोला है, समझता नहीं है। अरे किसीके कुसंगसे यह बात इसमें आ गयी होगी। इसका दोष थोड़े ही है। क्यों भई आप अपने बच्चेके दोषको इतना सँवार–सँवारकर क्यों बोल रहे हो? क्योंकि, बच्चेसे प्यार है। तो यदि आपका भगवान्‌से प्यार है तो आपको भगवान्‌की प्रत्येक कृतिमें, भगवान्‌की प्रत्येक रचनामें, प्रत्येक रूपमें, प्रत्येक नाममें वह सौन्दर्य दिखेगा, जो माँको अपने शिशुमें, एक कविको प्रकृतिमें, प्रेयसीको अपने प्रियतममें दिखता है। तब आपके हृदयमें सौन्दर्य होगा, आपके हृदयमें औदार्य होगा। आपके हृदयमें सौशील्य होगा। देखना! यही 'तत्तेऽनुकम्पां' नाच करता हुआ ईश्वर है! एकने वर्णन किया है कि भगवान् आरामसे सोये हुए थे। न कोई सृष्टि थी और न कोई दृष्टि थी।

कहीं कोई गड़बड़ नहीं थी। तो उनकी साँस जरा जोरसे चलने लगी। भगवान्‌की नींदमें जो साँसकी घर्घराहट है, उनका नाम लोगोंने वेद रख दिया। वेद ही कहता है-**अस्य एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यदुर्वेदः सामवेदोऽङ्गिरस इतिहास पुराणम्।** (बृ. 3.2.4.10) कि मैं ईश्वरके नाककी घर्घराहट हूँ। वाचस्पति मिश्रने कहा, 'निःश्वसितमस्य वेदाः'। तो अपने नाककी घर्घराहटसे जरा नींद खुलती है। भगवान्‌ने आँख खोलकर देखा कि यह आवाज कहाँसे आ रही है। तो-

वीक्षितमेतस्य पंचभूतानि-जब भगवान्‌ने प्यारभरी नजरसे देखा तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धके आश्रय भूत द्रव्य निकल आये। अपनी आँखोंकी रचना देखकर भगवान् मुस्करा पड़े। अपने ईक्षणका, अपने वीक्षणका कौशल देखकर भगवान् मुस्कराये। तो **स्मितमेतस्य चराचरं**-जब मुस्कराये तब यह स्थावर जंगम सारी सृष्टि सामने आ गयी। स्त्री-पुरुष, माँ-बेटे, पति-पत्नी, पशु-मनुष्य सब सामने आये। बोले कि ओ-हो, हमारी चितवनमें हमारी यह शक्ति! परन्तु देखने और मुस्करानेमें श्रम हो गया, थक गये। इतने कोमल हैं कि एक बार आँख खोलकर देखनेमें भी थक जाते हैं। एक बार प्रेमभरी मुस्कानमें भी थक जाते हैं। उनकी कोमलता, उनकी मृदुलता तो देखो। 'तो' **अस्य च सुप्तं महाप्रलयः**' फिर आँख बन्द करके सो गये। सो गये तो महा-प्रलय हो गया। अब देखो **तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः**। सचमुच भगवान् प्यारमें भरकर सबके विषय बन गये। लोग भगवान्‌को देखते हैं, भगवान्‌को सूँघते हैं, भगवान्‌को छूते हैं, भगवान्‌का स्वाद लेते हैं, भगवान्‌को सुनते हैं। तो भगवान्‌ने सोचा कि हमको पहचानेंगे तो शायद संकोच करेंगे। इसलिए अपनी पहचान ही छिपा दी। यदि पहचान जायेंगे तो हमको बड़ा समझकर सोचेंगे कि इनको चूमें कैसे? इनको छूयें कैसे? संकोच हो जायेगा। भगवान्‌ने अपने बड़प्पनको छिपा दिया और सबके भोग्य बनकर सारी सृष्टिके रूपमें प्रकट हो गये।

ये उसी बहुरूपियाके रूप हैं। यह नृत्य करते हुए नृत्यगोपालकी थिरकनका नाम संसार है। यह हृदयेश्वर भगवान्‌के संकल्प हैं। यह विराटका अवयव है।

एक बात आपने सुनी होगी कि मार्कण्डेय ऋषि प्रलयके समय वटवृक्षके पत्तेपर सोये हुए बाल-मुकुन्दके पेटमें घुस गये और वहाँ उन्होंने ब्रह्माण्ड देखा। अच्छा, श्रीराम भगवान्‌के पेटमें काकभुसुण्डिजी घुस गये थे तो उसमें ब्रह्माण्ड देखा। यशोदा मैय्याने श्यामसुन्दरसे कहा कि मुख खोलो, तो उसमें दीख गया ब्रह्माण्ड। उसमें व्रज भी दिखा और मैया भी दिखी-आपका ध्यान खींचते हैं। अर्जुनने विराटके शरीरमें भीष्म व द्रोण, जयद्रथ सबको देखा। एक तो विराट्‌के अवयवमें समूची सृष्टिको देखना और एक हिरण्यगर्भके संकल्पमें समूची सृष्टिको देखना और एक राम, कृष्णके पेटमें सारे ब्रह्माण्डका होना-बालमुकुन्दके पेटमें सारा ब्रह्माण्ड होना। अच्छा आप जरा बताइये कि भगवान्‌के पेटके भीतर जो ब्रह्माण्ड होते हैं उन ब्रह्माण्डोंमें यह पृथिवी है और उसीमें यह मुम्बई और उसीमें यह हाल है और उसीमें बैठकर हम लोग यह कथावार्ता कह सुन रहे हैं कि नहीं? अब बताओ।

'उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः' कितनी बढ़िया जगह हमलोग बैठे हुए हैं। कहाँ? बोले कि भगवान्‌के एक रोमकूपमें। देखो यह विराट् हुआ। जरा अपनेको ढूँढो तब मालूम पड़ेगा।

'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः' ईश्वरका मायामूलक जरा-सा हिलना-यह सृष्टि है। हिरण्यगर्भका संकल्प यह सृष्टि है। विराट्‌के अवयवमें ये पञ्चभूत-यह सृष्टि है। आखिर हम कहाँ हैं? ईश्वर हमसे क्या अलग हो गया है? ईश्वर हमारे सामने भी है, हमारी मुट्ठीमें भी है, हमारे दिलमें भी है, हमारी आत्मामें भी है, केवल ईश्वरकी पहचान ही नहीं है भला। इसीको बोलते हैं कि नित्य-प्राप्त होनेपर भी अज्ञानके कारण ईश्वर अप्राप्त हो रहा है। नित्य-निवृत्त होनेपर भी यह प्रपंच प्राप्त-सा हो रहा है। देखो भगवान्‌की कृपा! प्यारसे सँवार लो।

देखो, ज्ञानमें सँवारनेका सामर्थ्य नहीं है। प्यारमें सँवारनेका सामर्थ्य है। यह दोनोंमें विशेषता है। ज्ञान जो चीज जैसे होती है उसको वैसा दिखाता है। और कुरूप-को सुरूप बना ले, असुन्दरको सुन्दर बना ले, दूरको निकट बना ले, परायेको अपना बना ले, निराकारको साकार बना ले, देरको वर्तमान बना ले-उसका नाम प्यार है। प्रेम सामर्थ्य है और ज्ञान प्रकाश है।

देखो, हर जगह भगवान्की कृपा देखो! भगवान्का प्रेम देखो! जब तुम्हें मालूम पड़ेगा कि इस क्रियामें हमारे प्यारेका हाथ है तो दुःख नहीं होगा। अच्छा, आपके घरके दरवाजेपर एक लाश पड़ी हुई मिले। नाराज नहीं होना भला! आपके मनमें आवेगा कि तुरन्त पुलिसको खबर कर दें, हल्ला करें, पड़ोसियोंको बतावें। थोड़ी देरके बाद मालूम हो कि यह हमारे पतिने या भाईने बेटेने या पिताने मारकर डाला है तो तुरन्त आपके मनमें छिपानेकी बात आजायेगी। आजतक दुनियामें अपनी माँका पेट किसने बताया है? अपनी माँका पेट कौन नहीं छिपाया है, यह प्यार है। '**गुण प्रगटे अवगुणहि दुरावा।**' इसलिए भक्त लोग कहते हैं कि '**प्रयच्छ मैत्रीदृशम् आर्त्तबन्धो**'-हे आर्तबन्धु! हे प्रभु! हमें मैत्री-दृष्टि प्रदान करो।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

(यजुर्वेद, वाजसनेयीसंहिता, 36.18)

यह मित्र-दृष्टि है। देखो जब अपने प्यारेका हाथ देखोगे तो जो बुरा लगता है वह अच्छा हो जायेगा। जो कड़वा लगता है वह मीठा हो जायेगा। प्रेमकी चर्चा मुँहपर मत लाओ। इसको हृदयमें अनुभव करो।

भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्

भोग करो। किसका? जो भगवान् देता है, उसे आनन्दसे लो-संयोग दे तो वियोग दे तो। ये संसारी लोग भूलमें पड़ गये हैं। हमारे महाकवियोंने नौ रस माना हुआ है। नाट्यमें भी आठ रस तो मानते ही हैं। वह तो जिसके पीछे तुम लोग बहुत पड़ते हो-उसीको रस नहीं

मानते हैं। नाट्यकार शान्तको रस ही नहीं मानते। वह तो बड़ी कृपाकर भरतमुनिने नाट्यशास्त्रमें यह लिख दिया कि 'शान्तोऽपि नवमो रसः'। रंगमंच बने और उसपर आकर कोई सिद्धासन लगाकर बैठ जाये तो वहाँ शान्त-रस आयेगा कि रसाभास हो जायेगा। अभिनय होनेसे वह सच्चा नहीं हुआ न! इसलिए, नाट्यमें शान्त-रसको रस मानते ही नहीं हैं। पर, एक बात भूल गयी है-उसकी तरफ आपका ध्यान दिलाते हैं कि नाट्यमें भयानक भी रस है, रौद्र भी रस है, वीभत्स भी रस है। शृंगार रस है, करुण रस है, हास्य रस है, वीर रस है, ठीक है। परन्तु, आपने यह नहीं देखा कि उसमें रौद्र भी रस है, भयानक रस है। ऐसा करुण रस है कि ऐसा वियोग होना कि फिर कभी संयोग हो ही नहीं। हे भगवान्, आप क्या रसास्वाद करोगे? जब रसको आप पहचानते ही नहीं कि रस क्या होता है? नृसिंह भगवान्के गलेमें हिरण्यकशिपुकी अँतड़ी पड़ी है और खूनसे लथपथ है और देख-देखकर मजा आ रहा है। कुवलयापीड़ हाथीको कृष्णने मारा और खूनकी बूँदे शरीरपर पड़ी हुई हैं और रक्तसे लथपथ हाथीका दाँत कन्धेपर रखे हुए हैं और रंगमंचपर प्रवेश करते हैं। यह वीभत्स-दृश्य रस हो जाता है। क्या आपको मालूम नहीं है कि जब दशरथजी मर जाते हैं, सारे अयोध्यामें कुहराम मच जाता है, सीता-राम-लक्ष्मण पैदल वनके लिए निकलते हैं-ऐसे दृश्यको देखकर आप रोने लगते हैं। अच्छा, आधा घण्टाके बाद क्या होता है? बोलते हैं कि आ-हा, बड़ा मजा आया। हम जब पहले बचपनमें लंकाकांड पढ़ते थे कि वो बाण मारा, वो सिर कटा, तो पढ़कर बहुत मजा आता था उस भयानकमें, उस रौद्रमें, इस पुराणमें। जीवनका रहस्य यही तो है। आप काव्यमें यदि ऐसी घटना आनेपर रस ले सकते हो तो आपके जीवनमें बिलकुल काव्यकी तरह ही वैसी घटनायें घटित होती हैं, नाट्यकी तरह ही वैसी घटनायं घटित होती हैं तो क्यों नहीं रस लेते? उसका रस लेना चाहिए न!

हमने मैसूरकी चित्रशाला देखी; क्या बढ़िया-बढ़िया चित्र लगे

हुए हैं। शृंगारका चित्र देखो तो मनमें गुदगुदी होने लगती है। करुणाका चित्र देखो तो आँखमें आँसू आने लगते हैं। वीररसका चित्र देखो तो मनमें उत्साह आता है। रौद्रका चित्र देखो तो गुस्सा आने लगता है। वैसा-वैसा मन हुआ। और जब चित्रशालासे निकले तो बोले कि बड़ी सुन्दर चित्रशाला है। अहा, क्या मजा आया!

तुम ईश्वरकी चित्रशाला देख रहे हो। ईश्वरके हाथकी करामात, उसकी कलमकी करामात, उसका नाट्य, उसका संकल्प, उसकी कृति। अरे, उसमें सबका भोग ही करना, सबका मजा ही लेना। किसी चित्रको देखकर तन्मय हो जाना, उसके लिए रो देना, हँस देना, मजा ले लेना और बाहर निकले तो सबकी प्रशंसा की कि वाह, वाह कैसी रचना है। यही जीवनका रहस्य है। यह केवल काव्यमें लिखा रहनेके लिए नहीं है।

अच्छा बताओ कि भोजनमें षट्-रसका स्वाद लेते हो कि नहीं? कोई कहे कि नहीं, हम तो खीर-ही-खीर खायेंगे। तो भोजनका मजा आयेगा? तो जैसे भोजनमें षट्रस मजेदार है वैसे जीवनमें भी सब चाहिए। कभी मुँहका जायका ही बिगड़ गया, कभी मुँह कड़वा हो गया, कभी मीठा हो गया, कभी नमकीन हो गया। इस जीवनका मजा लेते चलना चाहिए। यह रसास्वाद है। क्योंकि, यह हमारे प्यारेकी रचना है। उसने अपने हाथसे चटनी पीसी है। मिर्च, उसने अपने हाथसे तलकर दिया है। करेला उसने गढ़ा है। तो ये षट्रस, ये नवरस क्या है? यह उसकी अनुकम्पा है। यह प्यारेके हाथकी रचना है, उसका भोग करो!

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते।

'हृत्' माने हृदय। असलमें हरि भी यही है और हर भी यही है। संस्कृत भाषाकी दृष्टिमें अर्थमें कोई बहुत अन्तर नहीं है। हरति इति हरिः, हरति इति हरः, हरति इति हृत्। तो 'हृत्' माने क्या होता है? जैसे हम दुनियामें सब देखते हुए चलते हैं, सब सुनते चलते हैं, सब चखते

चलते हैं, सब करते चलते हैं, तो हमारे दिलमें एक चोर बैठा हुआ है। हम तो ऐसा समझते हैं कि हम वह सब सड़क छोड़कर चलते गये; लेकिन वह मनमें बैठा चोर इस सड़कमें-से कुछ चोरी करके रख लेता है। तो वह चोर-हरति संस्कारान्। विषयेभ्यः संस्कारान् हरति इति हृत्। जैसे, एक माता अपने बच्चेको लेकर दुकानमें गयी। तो वह समझती थी कि हम तो दुकान देखकर चले आये। पर, घरमें आकर बच्चेने जेबमें-से चीजें निकालनी शुरू की। अरे बेटा, यह कैसे? वह बोला कि मैं चुराकर लाया हूँ। तो यह हमारा मन उस बच्चेकी तरह चोर है। हमारी इन्द्रियाँ जो देखती हैं, सुनती हैं, सूँघती हैं, खाती हैं-उनमें-से यह एक संस्कार चुरा लेता है और वही समय पर स्मृतिके रूपमें प्रकट होता है। तो, अब एक बात यहाँ बताते हैं।

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते।

हृदयको नम कर दो। कोई चीज चुराने न पावे। ईश्वरके सामने उसको नम कर दो। यह नमक शब्द संस्कृतका ही है। ऐसा नहीं समझना कि कहीं बाहरसे आया है।

'**नम प्रह्वीभावे, नमयति पदार्थः**' जो चीजोंको गीला कर दे, उसका नाम नमक है। किसी चीजमें नमक पड़ जाये तो वह बिलकुल गल जाये। कृदन्तमें दो प्रत्यय होते हैं 'यु' और 'वु'। तो नमन और नमक-दोनों शब्द बनते हैं। नमनम् नमकः। एक तो है नमन-नमन माने नम होना, झुक जाना और एक है नमक, माने झुक जाना। तो, हमारा हृदय झुक जाये, नमन करें। हर जगह परमात्माको देखे। क्या सुन्दर! क्या सुन्दर!!

एक महात्मा कहीं जा रहे थे। एक शिष्य भी उनके पीछे-पीछे जा रहा था। शिष्यने कहा कि महाराज, इस रास्तेसे मत जाइये। गुरुजीने पूछा कि क्यों, क्या बात है? उसने कहा कि उस ओर कुत्ता मरा पड़ा है। उसकी लाशमें-से दुर्गन्ध आ रही है। तो, गुरुजीने कहा कि देख, कितना पुण्यात्मा होगा वह! क्या चमकते हुए दाँत उसके मुखमें दिख रहे हैं!

इतने सुन्दर दाँत क्या ईश्वरकी कृपा हुए बिना मिल सकते हैं? अरे, वह तो ईश्वरका कृपापात्र था। देखो न, मरे हुए कुत्तेके मुँहमें जो सफेद दाँत दिख रहे हैं उनमें भी ईश्वरकी कारीगरी देख लेना-क्या छोटी बात है? अरे भाई, अपने हृदयको झुकाये रखो, कठोर मत करो।

यहाँ झुकना तीन तरहका है।

'हृद्वाग्वपुर्भिः'-शरीरसे भी झुकना, वाणीसे भी झुकना और हृदयसे भी झुकना। हृदयमें अभिमान न होना झुकना है। और, वाणीमें विनय होना झुकना है और शरीरका उद्दण्ड न होना, उद्दण्डता-पूर्ण कृत्य शरीरसे न करना शरीरका झुकना है। संस्कृतमें साहस शब्दका प्रयोग मर्यादाके उल्लंघनके अर्थमें होता है। दूसरेका धन ले लेना-यह भी साहस है। दण्डविभागमें आता है कि 'साहसे दंडः' कोई साहस करे तो उसको दंड देना चाहिए। आजकल अच्छे काममें भी हिन्दीमें साहस शब्दका प्रयोग होता है। उसका हम विरोध नहीं करते हैं। हम तो जरा पुरानी भाषाका नमूना बताते हैं। नहीं ये लोग उत्साहके अर्थमें भी साहस शब्दका प्रयोग करते हैं। परन्तु, उत्साह दूसरी चीज है और साहस दूसरी चीज है। 'सहसा' से भी साहस बनता है। वासनाविष्ट होकर एकाएक कोई काम कर बैठे-उसको भी साहस बोलते हैं।

तो नारायण, हृदयमें अभिमानका होना ईश्वरके अदर्शनकी पहचान है। जो ईश्वरको पहचानेगा, वह अभिमान नहीं करेगा। क्योंकि उसके अन्दर कोई विशेषता नहीं है। अपने अन्दर विशेषता तभी मालूम पड़ती है, जब तक ईश्वरको नहीं देखते हैं। जबतक अपनेमें बड़प्पन भासे तबतक समझना कि ईश्वर नहीं दिखा। हम आपको सच बताते हैं कि यह जो सचके भीतर आत्मा है, यह निर्विशेष ही है। तब अभिमान किस बातका? बोले कि जो विशेषता हमारे अन्दर है, वह मच्छरमें नहीं है। अरे भाई, जो मच्छरमें विशेषता है वह भी तो तुममें नहीं है। तुम मच्छरकी तरह आसमानमें उड़ो। उड़ना आता है तुमको? मच्छरोंमें जैसा संगठन होता है, एकता होती है-वैसी करके बता दो।

तो विद्या और अविद्या दोनों जिसका स्पर्श नहीं कर सकतीं-उस परब्रह्म परमात्माको जिसने देख लिया तब फिर अभिमान काहे का? यह हृदय चोर है। यह लोगोंकी यादें चुरा-चुराकर अपने अन्दर रखता है, अरे, कोई मिला और चला गया, कोई आया, कोई गया, कोई पैदा हुआ और कोई मर गया। अरे, होने दो जो होता है। तुम यह याद चुरा-चुराकर क्यों रखते हो। इस हृदयको तुम परमात्मासे जोड़ो। इस हृदको ह्रद बना दो। संस्कृत भाषामें एक दहर शब्द है। हृद, ह्रद, दहर। कालियानागको हृदयमें-से निकाल दो। केवल श्रीकृष्णका लीला-विलास होने दो। यह जो इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका अनुभव किया गया, उसका जो हृदयमें सम्पर्क है-यही जलका विषैलापन है।

वाक्‌में विनय क्या है? **सत्यं च सूनृता वाणी।** एक हमारे मित्र हैं। वे सत्य बोलनेमें ऐसा करते हैं कि इनका सत्य उनको बताया और उनका सत्य इनको बताया और दोनोंमें लड़ाई करवा दी। राग-द्वेष पैदा कर दिया। तो इसका नाम सत्य नहीं है। जिस वचनसे लोगोंके हृदयमें राग-द्वेषकी उत्पत्ति होती हो, वह सत्य वचन नहीं है, वह तो मिथ्या वचन है। **'सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।।'** (मुण्डकोप. 3.1.5) इस श्रुतिकी व्याख्यामें भगवान् शंकराचार्यने लिखा है कि मिथ्या मत बोलो-यह तो ठीक है। लेकिन जो सत्य, सत्य है-वह बोलते जाओ, यह तो बेवकूफी है। आखिर, बोलना-ही-बोलना तो धर्म नहीं है, न बोलना भी तो धर्म है। मौन भी तो धर्म है।

तो, मधुर और प्रिय वाणी बोलो। मनुजीने क्या निर्णय किया है,

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

(मनुस्मृति, 4.138)

यह सनातन धर्म है कि सत्य बोलो, किन्तु प्रिय बोलो। अप्रिय-सत्य मत बोलो। लेकिन, प्रिय बनाकर झूठ मत बोलो। झूठ बोलना सर्वदा वर्जित है।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज एक श्लोक बोला करते थे-

न तत्त्ववचनं सत्यं, नातत्त्ववचनं मृषा।
यद्भूतहितमत्यन्तं एतत् सत्यं मतं मम।।

ज्यों-का-त्यों किसी बातको कह देना-इसका नाम सत्य नहीं है और जो बात जैसी नहीं है उसको वैसा कहना-इसका नाम मिथ्या नहीं है। जिसमें प्राणियोंका परम कल्याण हो, जिससे उनका भय मिटे-सो बताओ।

यह जो डाक्टर किसीको खाँसी आयी और कह देता है कि टी. वी. होनेका डर है-यह भयका उत्पादन धर्म नहीं है। चिकित्सा करना धर्म है। सावधान करना धर्म है। परन्तु, भय उत्पादन धर्म नहीं हैं। किसीकी बुराई बोल दी। बोले कि मैं सच बोलता हूँ झूठ नहीं बोलता हूँ। द्वेष हो गया। तो, किसीके हृदयमें द्वेष पैदा करना धर्म नहीं है। यहतो किसीके घरमें आग लगाना है। किसीके हृदयमें राग उत्पन्न करना धर्म नहीं है। क्योंकि, वह तो फँसाना है। किसीके हृदयमें अभिमान उत्पन्न करना धर्म नहीं है। और, किसीको बेवकूफ बना देना, अज्ञानमें फँसा देना-यह धर्म नहीं है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेशको बढ़ानेवाला जो काम है-वह अधर्म है। और, इनको क्षीण करनेवाला जो काम है-उसको धर्म बोलते हैं।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्।।

जब देखो तब, जहाँ देखो तहाँ, जो देखो उसके ऊपर-भगवान्‌की कृपा बरस रही है। कृपा-ही-कृपा है। बस, पहचानने भरकी देर है। यह जो भगवान्‌की कृपा नहीं मालूम पड़ती-इसमें पहचानकी कमी है, कृपाकी कमी नहीं है।

एक आदमी यात्रा कर रहा था। तो देखा कि बड़े-बड़े खरबूजे, तरबूजे लगे हुए थे। आगे गया तो देखा कि काशीफल भी लगा हुआ था। बोला कि देखो न, ईश्वरकी क्या भूल है? जरा-जरा सी तो नाल और डाँठी और उसमें इतने बड़े-बड़े फल लगा दिये। आगे गया तो आमका पेड़ मिला। उसमें छोटे-छोटे आम लगे थे। बोला कि यह दूसरी भूल है। इतना बड़ा पेड़ और उसमें छोटे-छोटे आम। अरे, चाहिए था कि खरबूजेमें, तरबूजमें, काशीफलमें आम जैसा फल होता और बड़े-बड़े पेड़ों पर बड़े फल होते। छाया बड़ी थी। सोचा कि थोड़ी देर विश्राम कर लें। जो आमके पेड़के नीचे सोया तो पटसे एक पका आम छाती पर गिर पड़ा। बोल पड़ा कि अरे, नहीं-नहीं, ईश्वरकी भूल नहीं, भूल तो हमारी थी। अगर इसमें तरबूज, खरबूज़ा या काशीफल फला होता और वह हमारे ऊपर गिरता, तब तो हम मर ही जाते! यह तो भगवान्‌ने आमका फल लगाया तो हम बच गये, नहीं तो मर ही जाते।

एक राजा नयी तलवार देख रहा था तो उसका अँगूठा कट गया। मंत्री बोला कि भगवान् जो करते हैं, अच्छा करते हैं। राजाने कहा कि हमारा तो अंगूठा कट गया और तुम कहते हो कि भगवान् जो करते हैं सो अच्छा। उसको जेलमें डाल दिया। मंत्रीने फिर कहा कि भगवान् जो

करें, सो अच्छा। थोड़े दिनोंके बाद राजाका हाथ अच्छा हो गया। एक दिन शिकार खेलने गया तो जंगलमें डाकुओंने पकड़ लिया। ले जाकर बलिदानकी तैयारी की। पुरोहितने बताया कि इसका तो अँगूठा कटा हुआ है, सो इसकी बलि नहीं चढ़ायी जा सकती। इस प्रकार राजा छूट गया। अब राजाने कहा कि अरे, ईश्वर जो करता है, सो अच्छा। मेरा अंगूठा कटा तो अच्छा। सिर बच गया। वापस आकर मंत्रीको जेलमें-से छुड़वाया। बोला कि मंत्रीजी, मेरा अंगूठा कट गया सो तो अच्छा। पर बताओ, तुम जो इतने दिन जेलमें पड़े रहे-इसमें भगवान्‌की क्या कृपा है? वह बोला कि महाराज, आप तो अंगूठा कट जानेसे छूट गये और हमें पकड़ कर तो वह जरूर बलि दे देते। अतः अंगूठा काटकर आपको बचाया और जेल भेजकर हमको बचाया।

स देवो यदेव कुरुते, तदेव मंगलाय।

संस्कृतमें इसको 'आभाणक' बोलते हैं। आभाणक माने कहावत।

कई बार ऐसा होता है कि ट्रेन पर बैठनेके लिए जाते हैं। परन्तु, गाड़ी नहीं मिलती। हवाई जहाज नहीं मिलता है। बादमें पता चलता है कि उसीका एक्सीडेंट हुआ, जिसमें हमको जगह नहीं मिली थी। ऐसी हमको बहुत सारी घटनाएँ मालूम हैं। हमारे वृन्दावनके साईं अपने डेढ़ सौ सत्संगियोंके साथ लाहौरसे कराँची जा रहे थे। रास्तेमें एक बहुत छोटेसे स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई। साईंने कहा कि ईश्वरका हुकुम है-सब लोग यहाँ उतर जाओ। गाड़ी वहाँ तीन मिनट ठहरती थी। सत्संगी लोग झटसे अपना सब सामान लेकर उतरे। वहाँ कोई गाँव पासमें नहीं था। सबको खानेकी चिन्ता हुई। साईं बोले कि आज खाना-पीना कुछ नहीं। पेड़के नीचे बैठो, कुएँका पानी खींचकर पिओ और सत्संग करो। थोड़ी देर बाद खबर आयी कि अगले स्टेशन जाते-जाते वह गाड़ी पुल टूटनेसे नदीमें गिर गयी।

तो नारायण, पहचानो! भगवान्‌की कृपाको पहचानो। तुम्हें

बोलनेके लिए मुँह दिया है, स्वाद लेनेके लिए जीभ दी है, देखनेके लिए आँख दी है। यह क्या अनुकम्पा नहीं है? सूँघनेके लिए नाक, प्यार करनेके लिए दिल, विचार करनेके लिए बुद्धि, चलनेके लिए पाँव, काम करनेके लिए हाथ दिया है। एक-एक अंग तो उसकी अनुकम्पाके रंगमें रँगा हुआ है। जरा अपनेको उसमें डुबाओ, तब मालूम पड़ेगा।

एक दिन एक आदमीको रास्तेमें चलते-चलते काँटा गड़ गया। वह ईश्वरको गाली देने लगा। एक महात्माके पास गया। महात्माने बताया कि बाबा, आज तेरे गले पर तलवार पड़नेवाली थी। ईश्वरने कृपा की। काँटेसे ही तुझे मुक्त कर दिया।

तो, भूचाल नहीं आता है, यह भी कृपा है। तूफान नहीं आता है- यह भी कृपा है। मनुष्य अपनी आयुपर्यन्त जीता है-यह भी कृपा है। वेदान्त-दर्शनकी रीतिसे भी यह सगुण-ब्रह्मका अनुग्रह ही है। पूर्व-मीमांसा और उत्तर-मीमांसा दोनोंका मत अलग-अलग है। पूर्व-मीमांसाकी दृष्टिसे यह कर्मका फल है। पाप और पुण्य करनेसे जो अपूर्व उत्पन्न हुआ है वह समय पर फलके रूपमें उत्पन्न होता है। वह ईश्वरका अनुग्रह नहीं मानते। क्योंकि, कर्म पैदा हुआ, बना और नष्ट हो गया और फल मिला बरसों बाद। तो जो कर्म हुआ और नष्ट हो गया और फल बरसों बाद होगा तो कर्मके साथ फलका सम्बन्ध कैसे जुड़ेगा? तो इसके लिए पूर्वमीमांसामें एक अपूर्व नामकी वस्तु स्वीकार की हुई है। वही कर्म और फलके बीचमें कड़ीका काम करती है। उत्तरमीमांसामें इस अपूर्व नामके पदार्थको मानते ही नहीं। **'फलमतः उपपत्तेः'** मनुष्य जो कर्म करता है, उसको ईश्वर जानता है और ईश्वर, उसके पाप-पुण्यके अनुसार फल देता है। जब ईश्वरके फल-दातृत्वसे ही सुख-दुःखकी उपपत्ति हो जाती है, तो उसमें अपूर्व नामक एक जड़ पदार्थको माननेकी जरूरत ही नहीं रहती। यह पूर्व-मीमांसा और उत्तरमीमांसाका भेद बता दिया। माने, ईश्वर ही कर्मका फल देता है।

देखो, वेदान्त दर्शनमें मतभेद बहुत हैं। लेकिन, एक तो वेदको

सब स्वतः प्रमाण मानते हैं, अपौरुषेय मानते हैं। और दूसरे, देहातिरिक्त आत्मा है-इस बातको सब मानते हैं। तीसरे, सगुण-ब्रह्मको भी सब मानते हैं। अद्वैत-वेदान्तियोंमें इतनी विशेषता है कि वह आत्मा और ब्रह्मकी एकताके ज्ञानके पहले तो सगुणको व्यावहारिक सत्य मानते हैं। आत्मा और ब्रह्मकी एकताका बोध हो जानेपर वे प्रपंचको मिथ्या मानते हैं। इसलिए, उनके यहाँ प्रपंचके कर्त्ता अथवा प्रपंचके अभिन्न निमित्तोपादानकारणमें भी यथार्थता नहीं रहती-वह मिथ्या हो जाती है।

तो नारायण! 'तत्तेऽनुकम्पां'-भगवान्‌की कृपा देखो। भोगमें भी योग है। रोगमें अनुग्रह है। मृत्युमें भी नवीन वस्त्र-परिग्रह है। दुःखमें सुखका बीज है और सुखमें दुःखका बीज है, दुःखमें सुखका बीज है। प्रत्येक स्थानपर भगवान्‌के अनुग्रहको देखो।

भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।

अपने प्यारेका बनाया हुआ भोजन है। 'विपाक' माने कर्मफलका रस। तो यह जो कर्मफलका मधु पिलानेवाला है-वह साकी हमारा ईश्वर है। फिर तो क्या पूछना! वैसे, व्यवहारका सार यह है कि मनुष्यके जीवनमें दूसरोंकी सुविधा देखनेकी दृष्टि प्राप्त हो जाये। अच्छा, कथा हो रही है। सुननेवालेका मन एकाग्र और बोलनेवालेका मन भी एकाग्र है और उसमें कोई चंदन-फूल लेकर पहुँच गया। तो हम समझ जाते हैं कि इसको जरा भी व्यवहार नहीं आता। यह अपने घरमें बिलकुल फूहड़ है। क्यों? उसको अपने पुण्यके लिए फूल और चंदन अर्पण करनेमें वक्ता और श्रोताके रसमें व्यवधान डालना-यह शिष्टाचार भी नहीं है और यह उत्तम व्यवहार भी नहीं है, इसका ज्ञान नहीं है। व्यवहारका सार क्या है? केवल अपने मनकी सनकमें नहीं डूब जाना, बैठनेमें, उठनेमें, बोलनेमें, खानेमें, पीनेमें औरोंकी सुविधाका भी ध्यान रखना। नहीं तो तुम व्यवहारमें बिलकुल अयोग्य हो। और, सफलता भी नहीं मिलेगी। घरमें रोज चार बात सुननी पड़ेगी। क्योंकि, जो नजर चाहिए सो तुम्हारे अन्दर है नहीं। तो एक शिष्टाचार भी होता है।

एक बार श्रीहरिबाबाजी महाराजको किसीने आमन्त्रित किया कि हमारे यहाँ भोजन करिये। वे उसके घर चले गये। किसी कारणसे उसकी स्त्री घरमें नहीं थी। तो वह अपने हाथसे भोजन बना रहा था, पर, बेचारेको मालूम नहीं था कि घी कहाँ है और नमक कहाँ! उसे घीकी जगहकी पहचान भी नहीं थी। अरंडीके तेलका प्रयोग कर दिया। अब बाबाने देखा कि इतने प्रेमसे इसने बुलाया और बनाया। यह नहीं देखते हैं कि इसमें अरंडीका तेल है। वह तो देखते हैं कि देखो, कितना प्रेम है! पत्नीके न होनेपर भोजन इसने अपने हाथसे बनाया। पर, जब इसको मालूम पड़ेगा कि मैंने घीकी जगह अरंडीका तेल डाला है तो इसको कितना दुःख होगा! बाबा उससे बोले कि भाई, साग तो तुमने बहुत बढ़िया बनाया। वह बोला, अच्छा महाराज, आपको पसंद आया? बोले कि हाँ, बहुत पसंद आया। कितना बनाया है? महाराज बहुत है। अरे, लाओ-लाओ। देखें तो! सब मँगवा लिया। रोटी तो खायी कम और साग समूचा खा गये। उसको पता नहीं चला कि हमने अरंडीका तेल डाला है। वह तो बड़ा ही खुश हुआ कि बाबाको हमारा बनाया हुआ साग इतना पसंद आया। बाबा जब आश्रमपर गये तो दस्त लगने लगे। बार-बार शौचालयमें जायें। सेवकोंने पूछा कि महाराज, क्या हुआ? बोले कि चुप-चुप। किसीको बताना नहीं। वह साग अरंडीके तेलमें बना हुआ था। कोई बात नहीं, कभी-कभी जुलाब लेते ही हैं।

तो, यह है प्रेम! प्रेमसे बनायी वस्तुमें नमक कम है कि ज्यादा-यह नहीं देखा जाता; मिर्च कम है कि ज्यादा यह नहीं देखा जाता। अपने प्रेमीके प्रेमका तिरस्कार नहीं किया जाता। सो, ईश्वर जो कुछ तुम्हें देता है उसका तिरस्कार मत करो। वह तुम्हारा प्रेमी है। उसके प्रत्येक दानमें, उसकी प्रत्येक क्रियामें प्रेम है। वह तुम्हें पाँवसे ठोकर देता है तो भी, हाथसे ऐंठ देता है तो भी, वह दाँतसे काट लेता है तो भी, वह पटक देता है तो भी उसका उसमें प्यार है।

अच्छा, ईश्वरकी बात छोड़ दें। यह सब ईश्वरका किया हुआ नहीं है, अपना ही किया हुआ है। 'आत्मा' माने परमात्मा भी होता है और आत्मा माने स्वयम् भी होता है। 'आत्मैव हरिरुच्यते' आत्माका ही नाम हरि है और हरिका ही नाम आत्मा है।

अपने हाथसे रसोई बनावें और नमक ज्यादा हो जाये तो गाली किसको देवेंगे? अपनी बनायी हुई रोटी कितनी प्यारी लगती है। ईश्वरकी कृपासे आप लोगोंके जीवनमें ऐसा प्रसंग आया होगा! हम पहले-पहल भात बनाने लगे तो गीला हो जाता। उसमें-से माँड़ निकालना नहीं आवे। मनमें आवे पक तो गया है-बहुत बढ़िया! कितनी बार ऐसा हुआ। रोटी बनाने लगे, आटेमें पानी ज्यादा पड़ गया। अब उलाहना किसको दें? जब अपने ही कर्मका फल है तब उलाहना किसको? अपनी भूल तो खुशीसे अपने सिरपर धारण करनी चाहिए।

अब तीसरी बात देखो। यह आपका जीवन बिलकुल निर्विरोध रहेगा। जीवनमें जहाँ चिन्ता है, वहाँ दुःख है। जहाँ भूत लगा है वहाँ दुःख है। जहाँ भविष्यका भय लगा है, वहाँ दुःख है। जहाँ आप यह चाहते हैं कि हमारे ही मनका सबकुछ हो, वहीं दुःख है। क्या ईश्वरने ठेका लेकर रखा है कि तुम्हारे ही मनका करेगा, तुम्हारे दुश्मनके मनका कुछ होगा ही नहीं। माने तुम जिससे दुश्मनी करते हो, ईश्वर भी उससे दुश्मनी करें? ऐसा तुम्हारा ख्याल है। तुम ईश्वरको क्या समझते हो? अपना नौकर! कि हम जिसको डंडा मारें, उसको हमारा नौकर भी डंडा मारे। ऐसा भी तो हो सकता है न कि जिसको तुम डंडा मारना चाहते हो, ईश्वर उससे भी प्यार करता हो! कैसे उसको डंडा मारेगा? तो दुःखी वही होता है, जो अपने मनको प्रधानता देता है। जो ईश्वरको प्रधानता देता है, उसके जीवनमें दुःख नहीं है।

आपको पहले सुनाया कि सारे वेदान्त यह मानते हैं कि आत्मा, देहसे, मनसे, इन्द्रियोंसे, बुद्धिसे परे है। इसमें किसीका मतभेद नहीं है। जो वेदान्त-दर्शनका अनुयायी है-श्रीरामानुजाचार्य, श्रीभास्कराचार्य,

श्रीशंकराचार्य, श्रीगोविन्दाचार्य, श्रीबलदेव विद्याभूषण, श्रीस्वामी-नारायण-जितने भाष्य, उपभाष्य, टीका, वृत्ति, योजना, टिप्पणी वेदान्त दर्शन पर प्राप्त होते हैं-सबकी ओरसे यह मैं निर्द्वन्द्व बात कहता हूँ कि सबके मतमें देहादिसे परे है आत्मा, यह इसलिए कहता हूँ कि आप जरा अपना जीवन देखो।

हृद्वाग्‌वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते

भगवान्‌को नमस्ते करो। आर्यसमाजी लोग तो परस्पर बोलते हैं कि प्रताप भाई, नमस्ते! फिर क्या बोलते हैं? कि जरा मोहन भाईसे हमारा नमस्ते कह देना जी। अब कहनेकी चीज तो उसमें 'नमः' है। 'ते' तो कहनेकी चीज तो नहीं है न! 'नमस्ते'में दो पद है-एक नमः और दूसरा ते। 'नमस्ते'का अर्थ होता है-तुमको नमस्कार, तुम्हारे लिए नमस्कार। 'ते' माने तुभ्यम् तुमको। तो ईश्वरको जरा नमस्ते भेजो। कैसे भेजो? '**हृद्वाग्वपुर्भि**'-हृदयसे भेजो।

यह जो तुम्हारा ख्याल है कि हमारा मन बिलकुल हमारे वशमें है या हम वशमें रख लेंगे-यह गलत है कि यह जो दिलड़ी है-यह इतनी शोख लड़की है कि यह माँ-बापके कहे अनुसार नहीं चलती। आप अपने बेटोंको क्या दोष लगाते हो? अपनी बेटीको क्या दोष लगाते हो? क्या तुम्हारा दिल तुम्हारे कहे अनुसार चलता है? नहीं चलता। इससे, '**हृद् हृदा ते तुभ्यं नमः विदधत्**'। अपना जीवन कैसे व्यतीत करना? हृदयसे ईश्वरको नमस्कार करते हुए। हृदयको भगवान्‌के सामने झुका दो कि हे प्रभु, हमने तो बहुत दिन तक यह चाहा कि इसमें अधर्मके भाव उदय न हों। इसमें काम न आवे, क्रोध न आवे, लोभ न आवे, मोह न आवे। बहुत अभ्यास किया यम-नियमका। परन्तु, यह हृदय तो हमारे सधाये सधता नहीं। प्रभु, हमने बहुत कोशिश की कि यह कृष्णाकार रहे, रामाकार रहे, शिवाकार रहे। अपने इष्टदेवके चिन्तनमें लगे। परन्तु, मैं कहता हूँ कि विनायकका ध्यान कर और यह वानरका ध्यान करने लगता है। अरे, हमने कहा कि कृष्णका ध्यान

करो और यह कुब्जाके घर गया और उसके घरमें-से एक वेश्याका स्मरण करके उसके घर चला गया। हमने कहा कि कृष्णका ध्यान कर, तो यह काले भूतका ध्यान करने लगा। प्रभु, हमने धर्मकी भावना भरकर देख ली। हमने इसको इष्टाकार बनाते-बनाते हार मान ली। इस चंचलको अचल करनेके लिए आसन किया, प्राणायाम किया, प्रत्याहार किया परन्तु, यह वशमें न हुआ। अब 'हृदा ते तुभ्यं नमः विदधत्' यह हृदय हम तुम्हारे चरणोंमें न्योछावर करते हैं। भले इसके जन्म-जन्मके संस्कार रहें और आवें इसमें जो कुछ आता है सो। घोड़ा बेच दिया! '**नमः विदधत् न मे इति विदधत्**'-यह दिल मेरा नहीं है, तेरा है। वैष्णवोंका जो पांचरात्र आगम है-उसमें एक अहिर्बुहन्य-संहिता है। उसमें नमः पदका अर्थ लिखा है-**न मे इति नमः न मम नमः इत्युच्यते**। जैसे इदं इन्द्राय स्वाहा, न मम। यह हृदय तुम्हारा है प्रभु, मेरा नहीं है। क्यों? मेरे कहे न तो यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, छोड़े। न तो मेरे कहे निर्वासन होये। न तो मेरे कहे चंचलता त्यागे। न तो मेरे कहे धर्म करे, न उपासना करे, न समाधि लगावे। यह तो मेरा कहा मानता ही नहीं। तब हृदयसे नमस्कार करो, माने यह हृदय मेरा नहीं, तेरा है।

यह हृदय भवन प्रभु तोरा।

अर्पण कर दो। इस प्रकार, अपने हृदयसे अपना ममत्व हटाकर, उसपर भगवान्‌का ममत्व स्थापित कर दो। यह 'नमः विदधत्'का तात्पर्य है।

एक तो होता है त्याग और एक होता है दान। '**स्वस्वत्व-संकोचः त्यागः**'-अपने स्वत्वका संकोचकर देना-इसका नाम त्याग है। यह मेरा नहीं है-इसका नाम त्याग हुआ। और 'स्वस्वत्व-निवृत्तिपूर्वक-परस्वत्वापादनं दानम्'-अपना स्वत्व हटाकर, उसपर दूसरेका स्वत्व बनाना इसका नाम 'दान' है। जैसे, वृषोत्सर्ग करते हैं। बैल छोड़ते हैं तो उसको छोड़ देते हैं, किसीको देते नहीं है-जाओ

स्वतन्त्र विचरण करो। लेकिन, गोदान करते हैं तो यह गाय अब हमारी नहीं रही-अब अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यं इमां गां सरत्नां सुवर्णश्रृंगीं, रजतखुराम्..., चाँदीका खुर, सोनेकी सींग और वह सुनहला वस्त्र ओढ़ाकर यह गाय मैं अमुक गोत्र अमुक शर्मा ब्राह्मणको दान करता हूँ। माने आजतक यह मेरी थी, अब इस ब्राह्मणकी हो गयी। इसका नाम 'दान' हुआ। कन्याका भी दान करते हैं।

तो, हृदयके बारेमें सांख्य लोग कहते हैं कि हृदयका त्याग करो। यह तो प्रकृतिका है। प्रकृतिका विकार है। तुम्हारा है ही नहीं। तुमने तो झूठ-मूठ अपना माना। यह है दूसरेकी चीज पर तुमने अपना स्वत्व कायम किया। विवेकपूर्वक इसको छोड़ दो। यह प्रकृतिमें जाये। भक्तलोग कहते हैं कि नहीं, छोड़नेका नहीं है, यह तो ईश्वरको देनेका है।

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा,
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसोऽपि दैन्यं
दत्ते मया निजमनस्तदिदं गृहाण।।

'हे प्रभु! मैं तुमको क्या दूँ। रत्नाकरमें तो रहते हो और लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी हैं और जगत्के आप स्वामी हैं। किं देयमस्ति भवते? आपको क्या दें? बोले, ठीक है एक बात है कि राधारानीने आपका मन चुरा लिया है, 'मनसोऽपि दैन्यं' आप मनके गरीब हैं। लो, हम अपना दिल देते हैं-अपने दिलकी जगह पर इसको जोड़ लो। अब यह मेरा नहीं रहे, तेरा रहे। स्वीकार करो, मैं अपना मन देता हूँ। यह है 'दानं विदधत्' जैसे घोड़ा बेच दिया। ऐसे ही तुमको दिल दे दिया।

बोले, 'हृदयमें भावना करो, भावना करो!' अरे, भावना करते-करते थक गये। जब कथा ही सुनते-सुनते कई लोग नमाज पढ़ने लग जाते हैं। आप जानते हैं कि नहीं? कथा सुनते-सुनते कथाका ख्याल नहीं रहता-वे तो मस्जिदमें पहुँच जाते हैं। उनपर भी खुदा खुश होता है भला! तो नारायण, हम अपना रखकर कबतक भावना करेंगे? अब

तुम इसको ले लो! अब चाहे इससे भावना करवाओ और चाहे निर्भावना कर दो! तुम्हारे हाथमें दे दिया!

अब देखो, वाणीसे भगवान्‌को नमस्कार करो। आप जानते हैं कि इस जीभको हिलानेवाला कौन है? अरे, वह हृदयमें बैठा है। 'वाक'को भगवान्‌ने पसन्द किया है। 'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणाम्' पर हमेशा बोलती हुई 'वाक्' भगवान्‌को पसन्द नहीं है। कभी मौन पसन्द है और कभी बोलती हुई पसंद है। किसी-किसीकी श्रीमतीजी मशीनकी तरह फराफर बोलती रहती हैं तो घरके पुरुष कह देते हैं कि जरा अपना व्याख्यान बन्द करो। हमारा भी तो कुछ सुनो! तो, 'वाचाः नमः विदधत्' वाणीको नमित कर दो।

भगवान्‌के सामने अपनेको झुकाना सबसे ऊपर उठाना है। वाणीसे भगवान्‌का नाम जपो। स्तोत्रका पाठ करो। बोले कि बाबा, कुछ भी करो-यह वाणी तो भटक जाती है।

कीन्हे प्राकृतजन गुण गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछताना।। (मानस)

संसारी लोगोंके गुणोंका गान करने पर सरस्वती अपना सिर पीटकर पछताने लगती है कि मैं इसके शरीरमें क्यों आयी? तो, भोगोंका कीर्तन करनेके लिए यह वाणी नहीं मिली है। यह वाणी तुम्हारी नहीं है, भगवान्‌की है।

'वपुर्भिः नमः विदधत्'-शरीरसे जितने कर्म करो, भगवान्‌के लिए करो। यह शरीर मुझे सुख पहुँचानेके लिए नहीं है। सोचो कि यह शरीर मेरे लिए नहीं है। यह शरीर ईश्वरकी सेवाके लिए मिला हुआ है। **'वं अमृतं पुश्णाति'**। वैसे, वपु शब्दका वपनसे सम्बन्ध है। एक तो वपन क्षौरको बोलते हैं, एक वपन बोलते हैं-बीजवपनको। खेतमें जो बीज बोते हैं-उसको 'वपन' बोलते हैं। तो यह 'वपु' है-**वपनं कर्मबीजं अस्मिन् इति वपुः**-जिसमें कर्मका बीज बोया जाये, उसका नाम 'वपु' है। तो, इसमें कर्मका बीज मत बोओ। इसको

शिवका क्रीडांगन बना दो। जब कभी पार्वतीजीके साथ उनको गेंद खेलना हो, कभी हाकी खेलनी हो-उनके लिए इस शरीरको खुला साफ मैदान बना दो!

तो नारायण इस तरह जो जीवन व्यतीत करता है, **'जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्'**।

देखो, जीवनमें तीन बात आयी। प्रत्येक वस्तुमें, क्रियामें, भावमें भगवान्‌की अनुकम्पाका दर्शन करो। जो सुख-दुःख आवे, उसमें प्यारेका हाथ समझकर या अपना बनाया समझकर उसका भोग कर लो, लड़ो मत और हृदय, वाणी तथा शरीरको भगवान्‌के सामने नम्र कर दो, सख्त मत करो। इस तरह जो जीवन व्यतीत करता है-वह, 'मुक्तिपदे दायभाग् भवति'-वह मुक्तिपदका दायभागी होता है। इसपर महापुरुषोंने अलग-अलग बहुत कुछ कहा-सुना है।

'दायभाग्' शब्दके अर्थके सम्बन्धमें श्रीधर स्वामीने कहा कि जैसे पिताकी संपत्तिपर पुत्रका स्वाभाविक हक होता है-चाहे पिता विल अर्थात् वसीयत बनावे, चाहे न बनावे, पिताकी वस्तु तो पुत्रको मिल ही जाती है। पिताकी संपत्ति प्राप्त करनेके लिए पुत्रको नौकरी नहीं करनी पड़ती, परिश्रम नहीं करना पड़ता। पुत्रको पिताकी सम्पत्ति प्राप्त होनेसे केवल पुत्र ही होने भरकी जरूरत है और कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। तो 'मुक्तिपदे स दायभाग् भवति'-अधिकारी है, उत्तराधिकारी नहीं। उत्तराधिकारी तो मनुष्यके होते हैं। ईश्वरका कोई उत्तराधिकारी नहीं होता-यह आपको मालूम है कि नहीं। यह गद्दी-वद्दी जो होती है, कोई आचार्य होते हैं तो इनके गद्दीके उत्तराधिकारी होते हैं। गद्दीधारी तो सब मर जाते हैं। अब ईश्वरका उत्तराधिकारी माने क्या होगा! तब तो फिर जीव बस इन्तजार ही करता रहे। क्योंकि, ईश्वरका उत्तराधिकार तो कभी मिलनेवाला नहीं है। ईश्वर कभी मरेगा ही नहीं तो उसका उत्तराधिकार जीवको कैसे मिलेगा? तो, वहाँ उत्तराधिकारी नहीं होता है, वहाँ तो 'दायभाग्' होता है। जो हक ईश्वरको प्राप्त है-समान

ऐश्वर्य होता है, समान धर्म होता है, समान रूप होता है, समान भोग होता है। अरे, न-न! सायुज्य हो जाता है। अरे, ईश्वरसे एक हो जाता है। एकत्व हो जाता है। कुछ करनेकी जरूरत नहीं। केवल ऐसा जीवन व्यतीत करो। जीवनमात्र ही अपेक्षित है। अगर, पुत्र जीवित है तो पिताकी सम्पत्ति उसकी सम्पत्ति है।

मैंने ऐसा सुना है कि बाइबिलमें भी यह बात कही हुई है कि मैं और मेरे पिता एक है। गोवर्धन-पीठके शंकराचार्य स्वामी भारतीकृष्ण तीर्थजी महाराज, वे जब व्याख्यान देते थे, तो वे बाइबिलके उद्धरण बहुत देते थे। क्योंकि उनको विलायतमें जाना पड़ता तो वहाँ यह भी बताना पड़ता कि जैसे हम वेदके विद्वान् हैं वैसे-ही बाइबिलके भी विद्वान् हैं। तो, बाइबिलमें यह बात कही हुई है और मैं मेरे पिता एक हैं। यह दायभाग् है।

मुक्तिका जो पद है, उसका वह दायभाग् है। 'मुक्त्या पद्यते'-मुक्त होनेपर जो वस्तु मिलती है। माने, बन्धन-निवर्तक विद्याका उदय हो जानेपर जिस ब्रह्म-वस्तुका साक्षात्कार होता है, उस वस्तुका उसको साक्षात्कार हो जाता है। पर, प्रेमियोंको तो यह पसन्द नहीं है। वे कहते हैं-'**अमुक्तिः यथा स्यात् तथा पदे दायभाग्**'-उनको मुक्ति नहीं चाहिए। मुक्ति माने तो तलाक होता है। भक्तिकी भाषामें कैवल्यमुक्ति जैसे है, किसीने कहा कि अब हम बिलकुल अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपमें रहेंगे। तो इसका मतलब हुआ कि अब वह भगवान्के साथ नहीं रहना चाहता। तो, प्रेममें अपने साथीको छोड़नेका भाव कहाँसे आवेगा? माने प्रेममें साथीको छोड़ना नहीं है। और, ज्ञानमें साथीको पकड़ना नहीं है। अब एक ऐसी बात बतावेंगे-जहाँ साथी छूटे भी नहीं और ज्ञान मिले।

●

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

ब्रह्माजी, हाथमें भक्त-ग्रास लिये, फेंटेमें बांसुरी लगाये, बेंत और सींग काँखके नीचे दबाये, मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर नन्दनन्दनको सामने देखकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। कहते हैं कि आपकी अनुकम्पा दीखनी चाहिए।

वैसे भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीका अभिमान तोड़ दिया। उनको बड़ा भारी अभिमान था कि मैं सृष्टि बनानेवाला! मैं अपने काममें बड़ा निपुण हूँ। जीवोंको उनके कर्मानुसार फल देनेमें, पापीको दुःख देनेमें और पुण्यात्माको सुख देनेमें कर्मानुकूल शरीर बनानेमें बड़ा निपुण हूँ। तो भगवान्ने उनके अभिमानको चूर-चूर कर दिया। तुम तो यह सब तब देते हो जब पहलेसे जीव होये, पहलेसे पञ्चभूत होये, पहलेसे अन्तःकरण होये, पहलेसे कर्म होये। हम तो देखो-बिना जीवके, बिना प्रकृतिके, बिना पंचभूत और बिना अन्तःकरणके, बिना कर्मके सबकुछ बना सकते हैं!! जहाँ ब्रह्मा स्वप्नवत् सृष्टि बना सकता है, वहाँ परमात्मा अपनेमें स्फुरणात्मक सृष्टि निर्वासन स्वरूपभूत प्रकाशात्मक सृष्टि बना सकता है। तो ब्रह्माका अभिमान टूट गया। अभिमान टूट जानेपर जो वे स्तुति कर रहे हैं-उसमें वे अपनी अपेक्षा भगवान्के उत्कर्षका ख्यापन कर रहे हैं। अन्तःकरणका नाम आत्मा नहीं है। ब्रह्माका नाम परमात्मा नहीं है। अन्तःकरणसे विलक्षण है आत्मा और ब्रह्मासे विलक्षण है परमात्मा। हमारे शरीरमें आध्यात्मिक रूपसे जो अन्तःकरण है, सृष्टिमें आधिदैविक रूपसे वही ब्रह्मा है और यहाँ अन्तःकरणसे विलक्षण आत्मा है और वहाँ ब्रह्मासे विलक्षण परमात्मा

है। उसी परमात्माका यह वर्णन हो रहा है। आत्मा-परमात्मा एक है।

अच्छा, अब हम आपको भक्ति-सिद्धान्तकी एक दो बात सुनाते हैं। भक्ति-सिद्धान्तकी यह बात है कि हर हालतमें नजर भगवान्‌पर रहे। यही भक्तकी पहचान है। वह रणमें, वनमें, जीवनमें सर्वत्र सर्वात्माको देख सके-ऐसी पैनी नजर उसको चाहिए। जिसकी नजर चातककी तरह, चकोरकी तरह है। जैसे चातककी नजर स्वाति बूँदपर और चकोरकी नजर चन्द्रमापर लगी रहती है, वैसे ही भक्तकी नजर भगवान् पर लगी रहे। अपनी ओर देखे ही नहीं। यह न देखे कि मैं स्त्री हूँ कि पुरुष? यह न देखे कि मैं पापी हूँ कि पुण्यात्मा! यह न देखे कि मैं नरकमें हूँ कि स्वर्गमें। यह न देखे कि मैं गरीब हूँ कि धनी! यह न देखे कि मैं सुखी हूँ कि दुःखी! यह देखे कि यह रहा परमात्मा! भक्तके लिए एक नम्बरकी बात यही है। '**तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः**', '**प्रभु मूरति कृपामयी है।**' जहाँ देखो वहाँ भगवान्‌की कृपा! भगवान्‌की कृपा!! भगवान्‌की कृपा!!!

ईश्वर हिलता है और सृष्टि उसमें दिखती है। प्रकाश हिलता है और पर्देपर सिनेमा दिखता है। यह ईश्वरका स्पन्द है, स्पन्दन है यह विश्व-सृष्टि। अच्छा जो, अब यह बात देखो कि अब तुम्हें कर्मका फल भोगना पड़ेगा कि नहीं भोगना पड़ेगा? बोले कि जब अपने ऊपर नजर ही नहीं है तो कर्मफलका पता कहाँ-से चलेगा। भक्तोंने कहा कि, '**अभुञ्जान एवात्मकृतं विपाकं**' देखो, व्याकरणकी रीतिसे उसमें अकारका प्रश्लेष हो सकता है। '**तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणोऽभुञ्जान एवात्मकृतं विपाकं**'-अब तुम्हें अपने द्वारा बनाये हुए विपाकका भोग नहीं करना पड़ेगा। अब जो तुमने खट्टा, मीठा, नमकीन अपने लिए बनाया है, उसको भोगनेकी भी सुध नहीं है। क्योंकि, नजर भगवान् पर लग गयी।

तो एक तो यह देखो कि नजर भगवान्‌पर है कि नहीं! नहीं है, तो कहाँ है? दूसरे पर चली गयी? नहीं, अपने पर आयी? अच्छा,

अपने पर आयी तो अपने गुणपर आयी कि दोष पर आयी? अपने गुणपर आयेगी तो अभिमान हो जायेगा और तब भगवान्‌का दीखना बन्द हो जायेगा। यदि दोष पर आयेगी तो दोषके क्षमापनके लिए फिरसे नजर भगवान् पर चली जायेगी। तो भगवान् पर दृष्टि बने रहना, कहीं और न जाना! और, अपने गुण पर दृष्टि आनेसे अभिमान बढ़ जाता है तथा अपने दोष पर दृष्टि जानेसे भगवान्‌के सामने हाथ जोड़नेकी जरूरत पड़ जाती है।

भक्तिका सिद्धान्त बड़ा ही विलक्षण है। भगवान् कहते हैं कि तुम अपने शुभ और अशुभ दोनों हमको अर्पित करो। वे कहते हैं कि लेन-देन दोनों मेरे हवाले कर दो तो तुम्हारी मुक्ति! हम तुम्हारा कर्ज चुका देंगे। और, जो तुम्हें आमदनी करनी है, वह हम वसूल कर लेंगे। तुम बहीखाते हमारे हवाले कर दो। मुक्त हो जाओ-बिलकुल खाली हो जाओ। लेकिन, मनुष्य कहता है कि नहीं, अभी हम और कमायेंगे। वह भगवान् पर अपनेको छोड़नेके लिए राजी नहीं है।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।।
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(गीता 9.28.27)

नारायण! हमलोग तो जानते हैं इस बातको भला!! बनिया लोग तो डर जाते हैं। बनियासे मतलब हमारा बनिक-वृत्तिसे है। भगवान् कहते हैं कि तुम जो करते हो सो सब। आप देखो, प्राचीन आचार्योंकी टीका और नये लोगोंकी टीकामें फरक मिलेगा। '**यत्करोषि तत्सर्वं शुभं वा अशुभं वा, यदश्नासि शुभं वा अशुभं वा यद् ददासि शुभं वा अशुभं वा, यज्जुहोषि शुभं वा अशुभं वा**'-होममें भी शुभ-अशुभ होता है। जो आभिचारिक होम होते हैं, वे अशुभ होते हैं। श्येनयाग शत्रुको मारेगा, लेकिन पाप तो लगेगा ही। अन्यायपूर्वक,

तिरस्कारपूर्वक जो दान है-**यत्तपस्यसि क्रूरं वा मृदु वा तत्कुरुष्व मदर्पणम्**-भगवान्ने कहा है सब मुझे दो।

भगवान्के इस वचनको सुन कर्मकाण्डी भी डरे और उपासक भी डरे। कर्मकाण्डी इसलिए डरे कि बुरे कर्म हम ईश्वरको अर्पण करेंगे तो जो ईश्वरको अर्पण होगा वह तो और बढ़ जायेगा। एक-एकका सौ-सौ हो जायेगा। भोगनेसे कभी छुट्टी नहीं मिलेगी। उपासक लोग इसलिए डरे कि अपने प्यारेको अच्छी-चीज अर्पित करनी चाहिए, बुरी चीज कैसे अर्पित करें! वैष्णव लोग डर गये। तो इसका समाधान निकाला कि जो अच्छी-अच्छी चीज होये सो तो भगवान्को अर्पित कर दो। लेकिन जो गन्दी-गन्दी चीज हो वह अर्पित मत करो, उसका निवेदन करो। निवेदन क्या है? माने भगवान्से कहो कि हमसे यह-यह गलती हुई है। ऐसे मत कहो कि हे भगवान्! हमने चोरी की है अब उसकी सजा तुम भोगो! पर, भगवान्को बता दो कि हमने चोरी की है-चाहे सजा दो, चाहे माफ करो! अपने प्यारेको बुरी चीज कैसे अर्पित करोगे? सो निवेदन करो। यह तो कर्त्ताकी दृष्टि हुई। आगे अब भगवान्की दृष्टि देखो! उनकी दयालुता देखो। यह बात भक्त नहीं कह रहा है कि हम अपना शुभ-अशुभ तुमको अर्पित करते हैं। यह बात तो भगवान् कह रहे हैं कि तुम अपने कर्म, दान, तप आदि हमको अर्पित करो। तो, जबतक भगवान्की नजरसे नहीं देखोगे तबतक श्लोकका अर्थ कैसे समझमें आयेगा। 'शुभाशुभफलैः' कैसे बोलेंगे? यदि शुभ-अशुभ दोनोंका अर्पण नहीं होगा। तो शुभाशुभके फलसे तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी-यह भगवान् कैसे बोलेंगे? यह भगवान् ऐसे बोल रहे हैं कि देख, तू काला है कि गोरा-इससे हमारा मतलब नहीं। तेरे कपड़े गन्दे हैं कि सुन्दर-इससे हमारा मतलब नहीं। आ जा हमारे पास, हम तुम्हें अपनी गोदमें लेते हैं। सत्पुरुषोंके लिए यह अगर्हित है, सत्पुरुषोंकी इसमें कोई निन्दा नहीं है कि उनकी शरणमें कोई आया हो-वह दोषीसे दोषी क्यों न हो-

कोटि ब्रह्मबध लागहि जाहू।
आए शरण तजहू नहिं ताहू।।

वह उसको छोड़ता नहीं।

तो नारायण, अब भक्ति-सिद्धान्त देखो-पहली बात तो यह है कि भगवान् ही दिखें। भगवान्‌के गुण ही दिखें। उनकी परम भास्वती कृपाका दर्शन हो। यह भी कृपा है, यह भी कृपा है। चमचम सब जगह चमक रही है। झिलमिल झिलमिल, जगमग जगमग भगवान्‌की कृपा जगमगा रही है। देखो, सब जगह ईश्वर! सब जगह ईश्वर! अपनी ओर देखनेका मौका ही नहीं, तब फिर दूसरेकी ओर देखनेकी बात ही कहाँ है!

चिंता करे बलाय हमारी, जगती के जंजाल की,
बलिहारी-बलिहारी बोलो, गिरधारी नंदलाल की।

अपनी चिंतासे फुरसत ही नहीं है, पड़ोसीकी चिन्ता क्या करें? तो अपने मनको भगवान्‌में लगाओ।

अब यह हुआ कि भगवान् परसे तो नजर हटती है। तो यदि भगवान् परसे नजर न हटे तो क्या होगा-आपको बतावें?

अभुंजान एवात्मकृतं विपाकं

अपने कर्मका फल नहीं भोगना पड़ेगा। जब भगवान् परसे दृष्टि हटती है, तब कर्मका फल भोगना पड़ता है। अरे बाबा, साधारण लोक-सभामें जब सदस्य बैठा होता है तो वहाँ गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। राष्ट्रपतिके सन्निधानमें बैठा हुआ संसद सदस्य गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। जब वह बाहर निकलेगा तब गिरफ्तार किया जा सकता है। तो, अपने कर्मफलके फन्देसे छूटनेका यही उपाय है कि भगवान्‌की कृपा पर अपनी दृष्टि जमा दो। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव बैठे हुए हैं और वह उनका बाल-बाँका नहीं कर सकता। क्यों नहीं कर सकता? क्योंकि वह पर्वत भगवदानुग्रहका प्रागभाववान् है। माने, आगे चलकर उस पर्वत पर भगवान् पधारने वाले है। सुग्रीव पर आगे

भगवान्‌की कृपा होनेवाली है। जिसके ऊपर आगे भगवान्‌की कृपा होनेवाली होती है, उसके ऊपर भी बालि आक्रमण नहीं कर सकता।

आपने श्रीमद्भागवतमें सुना होगा कि कालिय दहके पास कोई वृक्ष नहीं था। वहाँकी घास भी विषसम्पृक्त हो गयी थी, विषैली हो गयी थी। पर एक कदम वहाँ था। महात्माओंने यह प्रश्न उठाया है कि यमुनातट पर वह कदम्ब क्यों बचा? जैसे अणुका प्रागभाव परमाणुमें रहता है वैसे ही भगवदनुग्रहका प्रागभाव उस वृक्षमें था। 'प्रागभाव' माने पहले न होना। तो, जिसके ऊपर आगे भी भगवद्-कृपा आनेवाली होती है-उसके ऊपर यह विषय-विष प्रभाव नहीं डालता। जो भगवान्‌के साथ लगा हुआ है, मन भगवान्‌में डूबा हुआ है, उसको कब मच्छर आकर बैठा, कब काट गया-इसका पता नहीं चला? क्योंकि भगवान्‌के ध्यानमें डूबे हुए हैं।

तो, भगवत्कृपाकी सर्वत्र अनुभूति हो तो कर्मफलकी ओर दृष्टि ही नहीं जाती! और, फिर एक दूसरी बात बोलते हैं कि सुख आता है कि दुःख, जन्म आता है कि मृत्यु, रोग आता है कि योग, वियोग आता है कि संयोग-इससे क्या मतलब है? हम अपने प्यारेके साथ हैं। हम तो उसकी गोदमें हैं। हमें क्या फिकर है? एक बड़ा डरावना समय उपस्थित हुआ। माँने बच्चेसे पूछा कि बेटा, तुमको डर नहीं लगता? वह बोला कि मैं तो तुम्हारी गोदमें हूँ। क्या करेगा कोई?

अब तीसरी बात यह कही गयी कि, '**हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्न-मस्ते**'।आधुनिकसे आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक प्रणाली यह है कि अगर चिन्ताके कारणको तुम दूर नहीं कर सकते तो उसको सहनेके लिए तैयार हो जाओ। ठीक है, अगर किसीकी मृत्युको तुम नहीं हटा सकते तो मौतका दुःख सहनेके लिए तैयार हो जाओ। अब उसको हटा तो सकते नहीं और झूठमूठ हाथ-पाँव पटकते हैं, चिल्लाते हैं। क्या फायदा है? तो, अपनेको ढीला छोड़ दो। '**हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्न-मस्ते**'का अर्थ है-अपनेको ढीला छोड़ दो। खूब थके-माँदे हैं, शवासन

लगा लो माने जैसे मुर्दा लेटा होता है-ऐसे पाँव फैलाकर, हाथ भी फैलाकर, सिर ढीला छोड़कर बिना तकियाके धरती पर लेट जायें और कहींसे भी शरीरको कड़ा न करें, बिलकुल शिथिल कर दें तो आपकी दिन-भरकी थकान दस मिनटमें दूर हो जायेगी। यह शिथिली-करणकी प्रक्रिया है। तो, आप अपनेको छोड़ दो।

एहसान नाखुदा का, उठाए मेरी बला।
किश्ती खुदा पे छोड़ दे, लंगर को तोड़ दे।।

नाव गंगाजीमें बह रही है, बहने दो। लंगर काट दो। कहीं खड़ी करनेका जरूरत नहीं है। बहने दो! ईश्वरातिरिक्तका एहसान मेरी बला ले। अल्लाहका भरोसा मेरी बला करे।

जहाँ ऊँच नीच का भेद न हो,
जहाँ जात या पात की बात नहीं।
न हो मन्दिर मस्जिद चर्च जहाँ,
न हो पूजा नमाज का भेद कहीं।।
जहाँ सत्य-ही सार हो जीवन का,
रिझवार श्रृंगार हो त्याग यहीं।
जहाँ प्रेम-ही-प्रेम की सृष्टि मिले
चलो नाव लेकर खेके वहीं।।

जहाँ प्रेम-ही-प्रेमकी सृष्टि मिले-ऐसा कौन है? ऐसा ईश्वर है। जहाँ राग-द्वेषका जरा भी प्रसंग बाकी रह गया, वहाँ ईश्वर नहीं है। हम मौलवीकी बात नहीं करते हैं। हम पादरीकी बात नहीं करते हैं। हम पुरोहितकी बात नहीं करते हैं। तुम्हारे मजहबी धर्मके पालनके लिए पुरोहित मौलवी पादरीकी जरूरत है; परन्तु यह जो ईश्वर है-इसको मौलवी, पादरी, पुरोहित नहीं जानते। तो, '**जीवन्मुक्त ब्रह्म ब्रह्म**' ब्रह्म-कोटिके जो महात्मा हैं, फकीर हैं-वे इसको जानते हैं। जहाँ किंचित् भी राग-द्वेषकी गुंजाइश रह जाये-वहाँ प्रेमका वह शुद्ध स्वरूप देखनेको नहीं मिलेगा। आपको एक गुर बताता हूँ-यदि आपसे छोटा है

तब भी आप अभिमानी हैं। यदि एक चींटी एक जुआँ, एक कीड़ा, एक मकौड़ा आपसे कनिष्ठ है, आपसे निम्न श्रेणीका है तो आप अभिमानी हैं। जातिसे कनिष्ठ हो, कर्मसे कनिष्ठ हो, स्वभावसे कनिष्ठ हो, कैसे भी यदि आपसे कोई कनिष्ठ है तो आप अभिमानी हैं, और यदि आपसे बड़ा कोई है तो? तो भी अभिमानी हैं। और, यदि आपके बराबर कोई है, तो भी अभिमानी हैं। ऊँचा होने पर भी आप मध्यमें अभिमानी बने बैठे हैं, नीचा होने पर भी आप ऊँचे पर अभिमानी बने बैठे हैं, बराबर होने पर भी आप अभिमानी बने बैठे हैं। अद्वय सत्यका अनुबोध हुए बिना-न हमसे कोई छोटा है, न बड़ा है।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते। (श्वेता उप. 6.8)

उसका कोई बेटा नहीं है, उसका कोई औजार नहीं है। कोई मंत्री-

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। (श्वेता. उप. 6.8)

उससे कोई बड़ा नहीं है, उससे कोई छोटा नहीं है।

न तस्य कश्चिद् जनिता न चाधिपः।

उसका कोई बाप नहीं है और कोई स्वामी नहीं है।

इस अद्वय-सत्यका अनुबोध हुए बिना राग-द्वेषकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती और जहाँ राग-द्वेषकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती-वह सत्य नहीं है। सत्यके दर्शनका फल ही यह है कि राग-द्वेषकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाये।

हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते।

तो नारायण, दिलको शिथिल कर दो। इसको वासनाके अनुसार नहीं, भगवद्-दृष्टिसे संचालित होने दो। इसमें गुण-दोषका वर्णन करके राग-द्वेष मत भरो। वपुके द्वारा इष्ट-अनिष्ट चक्करमें मत पड़ो। ईश्वरके सामने सिर झुकाओ।

जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्।

जो इस प्रकार जीवन व्यतीत करता है वह मुक्तिपदका हकदार

है। माने; बिना कोई साधन किये ही उसको मुक्ति मिल जायेगी। जैसे पुत्रको पिताकी सम्पत्ति मिलती है। अरे, कई लोग तो कहते हैं कि '**मुक्तिपदे स दायभाक् खण्डने द्यति अवदानं दायः**'-काटनेका नाम 'दाय' है। वह मुक्तिपदको काट देता है। हमको मुक्ति नहीं चाहिए!! क्या मुक्ति और बन्धनमें कोई भेद है? मुक्ति और बन्धनका भेद ही काट देता है।

स्वर्ग, नरक, अपवरग समाना।
जहँ तहँ दीख धरे धनुबाना।।

जहाँ देखता हूँ, वहाँ तू ही तू है। भगवान्‌ने अपने भक्तसे पूछा क्यों भगतजी! तुमको नरकमें जानेसे डर नहीं लगता है? वह बोला कि महाराज, नहीं, हमको तो डर नहीं लगता है। 'क्यों नहीं लगता है?' 'बात यह है कि हमारा यह ख्याल है कि मैं नरकमें जाऊँगा तो मेरे साथ-साथ आप भी जरूर चलेंगे। क्या आप मुझको छोड़कर अकेले रह जायेंगे? मेरे बिना आपसे रहा जायेगा? आपके दिलकी कमजोरी है कि नहीं कि मैं नरकमें जाऊँगा तो आप बिना जाये रह सकेंगे? और, जहाँ आप होंगे और हम होंगे वहाँ तो आनन्दके फव्वारे छूटेंगे। वहाँ नरक क्या होगा?'

असलमें प्रेममें मुक्तिकी प्रयोजनीयता नहीं है। जो लोग प्रेम भी करते हैं और मुक्ति भी चाहते हैं-वे सच्चे प्रेमी नहीं। हम एक राजाको जानते हैं। जब वे बच्चे थे तब उनके पिताने एक नौकर रखा था। उस समय बिजली नहीं थी। वह नौकर बाहर बैठकर उनके पिताके कमरेका हाथसे बना पंखा खींचता था। बाप मर गये। बिजली आजानेसे बिजलीका पंखा लग गया। अब इन्होंने उससे कहा कि अब तो पंखा खींचनेका काम नहीं रहा, पिताजी भी मर गये। सो अब तुम्हें हम सौ रुपया महीना पेंशन दे देते हैं-अब अपने घर जाओ और रहो। उसने कहा कि ना बबुआ, अब हम कहाँ जायेंगे? उन्होंने स्वयं बताया कि फिर हमने अपने बैठनेके कमरेमें बिजलीका पंखा लगवाया ही नहीं। वही हाथका पंखा वह खींचता था। अन्धा हो गया, लेकिन वहाँसे

कहीं गया नहीं। देखो, यह एक नौकरकी प्रीति है। वह कहता है कि हमको पेंशन नहीं चाहिए। हम अपने मालिकको छोड़कर और कहीं नही जाना चाहते हैं। वह यदि यह कहता कि बाबू, हमको पेंशन दे दो। हम अपने घरमें रहेंगे। यह अन्याय तो नहीं था न! पर, प्रेमी न्याय कहाँ चाहता है? प्रेमको न्याय नहीं चाहिए। प्रेमीको फल नहीं चाहिए। प्रेमीको तो अपना प्रियतम चाहिए। पत्नी कहे कि हमने जिन्दगी भर तुम्हारी सेवा की-अब हमको पेंशन दे दो-अब हम अलग रहेंगे। यह पत्नीत्व हुआ? नहीं।

वृन्दावनमें एक महात्मा थे। वे रातको भजन करते थे। वृन्दावनमें मुक्तिका आदर नहीं किया जाता है। जो लोग वहाँ रहते हैं-वे जानते हैं। वहाँके लोग बोलते हैं 'मुक्ति भरे जहाँ पानी।' 'घर छावें ब्रह्म-ज्ञानी' मुक्ति तो वहाँ महात्माओंके घरमें आकर पानी भर जाती है। तो रातके समय वे महात्माजी बैठे हुए थे, किसीने दरवाजा खटखटाया। वे तो जप कर रहे थे, सो बोले नहीं। जब माला पूरी हुई तो खड़ाऊँ पर चढ़कर निकले। पूछा कि कौन है भाई? देखा कि सामने मुक्ति खड़ी है। कौन है? मुक्ति।' 'हाँ, महाराज!' 'काहेके लिए आयी है?' 'आपकी सेवा करनेके लिए!' बोले कि देख जरा मेरी तरफ!

रोमाञ्चेन चमत्कृता तनुरियं भक्त्या मनोनन्दितम्
प्रेमाश्रूणि च भूषयन्ति वदनं कण्ठं गिरो गद्गदाः।
नास्माकं क्षणमात्रमप्यवसरः कृष्णार्चनं कुर्वताम्
मुक्तिर्द्वारि चतुर्विधाऽपि किमियं दास्याय लोलायते।।

भक्ति हमारे हृदयको आनन्द दे रही है। आँखोंसे प्रेमके आँसू गिर रहे हैं, कंठ गद्गद वाणीसे युक्त है, हमको अवकाश कहाँ है कि हम तुमसे बातचीत करें। यह चारों प्रकारकी मुक्तियाँ हमारी सेवा करनेके लिए क्यों व्याकुल हो रही हैं? यह प्रेम है। 'प्रेम' माने आनन्दका विकास; आनन्दका प्रकाश। 'प्रेम' उसको कहते हैं, जहाँ रोनेमें भी आनन्द आवे। जहाँ मारपीट करनेमें भी थोड़ा मजा आवे-प्रेम उसको

बोलते हैं। प्रेम माने कभी खिलाया, कभी भूखे भी रख दिया। कभी बुलाकर अपने पलंग पर बिठाया और कभी किवाड़ी बन्द कर दी कि मत आओ। अनिर्वचनीय है। प्रेम नग्नतामें भी शृंगार है, भोगमें भी योग है। यह कोई दुनियादारीकी चीज नहीं है। देखो, भगवान्‌का प्रेम तुम्हारे ऊपर बरस रहा है। कभी नाखून गड़ाकर प्रेम करता है, कभी ठोकर मारकर प्रेम करता है, कभी मीठा बोलकर प्रेम करता है, कभी कड़वा बोलकर प्रेम करता है, कभी छातीसे लगाकर प्रेम करता है और कभी तुम्हारे ऊपर चढ़ बैठता है। प्रेमको क्रियामें सीमित मत करो। यह चीज देवे तो प्रेम! तुम हमसे प्रेम करते हो और ऐसी साड़ी हमारे लिए नहीं लाते? प्रेममें मान नहीं है। तुमसे नहीं लेंगे तो और किससे लेंगे? तुम्हारा ही लेनेमें तो मजा आता है। प्रेमकी रीति बहुत निराली है!

अपनी ओर नजर जाये तो भगवान्‌को कह दो कि मैं जरा अपनी ओर देखता हूँ तुम हमारी ओर देखो तो। अच्छा जी, अपनी अच्छाई दिखाते हो कि बुराई? हम जानते हैं कि अगर हमारे अन्दर कोई अच्छाई होगी तो पहले ही तुमने देख लिया होगा! हम तुम्हारी नजरका स्वभाव जानते हैं। हमारे अन्दर अगर कोई अच्छाई होगी तो तुम्हारी दृष्टि उसपर जरूर पड़ गयी होगी। अब तुम्हारे देखे हुएको क्या दिखाना। हमारे अन्दर जो बुराई है और जिसको तुमने खुद अबतक नहीं देखा है आओ, अब मैं दिखाता हूँ। हमको अपनी बुराई दिखाते हो? हमारी तुम्हारे ऊपर घृणा हो जाये तो? हम अपनी माँको अपना फोड़ा दिखावें कि शरीरमें हमको यह फ़ोड़ा हुआ है तो वह हमसे घृणा करेगी कि दवा करेगी?

तो बाबा, सारा रोग तो यही है कि तुम भगवान्‌को अपना नहीं समझते। वह हमारा भाई है कि बेटी है कि भाई है कि बहिन है कि हमारी माँ है। अच्छा, ईश्वर अगर किसीको अपने घरसे निकालना चाहे भी तो कहाँ निकालेगा? कहीं अलग ऐसा स्थान नहीं जहाँ वह किसीको निकालकर भेज सके! तो, भक्तका यह विश्वास है कि भगवान् हमको छोड़ नहीं सकता।

मैं जानहूँ निज नाथ सुभाऊ।
अपराधिहूँ पर कोप न काऊ।

अगर हमारे अन्दर ऐसा कोई दोष हो जिस पर भगवान्‌की नजर पड़ जाये तो उनकी नज़र पड़ते ही दोष गुण हो जायेगा। भगवान्‌का यह स्वभाव है कि अपने आश्रितके दोषको अपना भोग्य बना लेते हैं। श्रीरामानुज सम्प्रदायमें इस बातको लेकर मतभेद है। आपको जानना चाहिए कि तत्त्व-ज्ञानके सम्बन्धमें हमको शांकर-सम्प्रदाय जितना प्रिय है, भक्तिके सम्बन्धमें श्रीरामानुजाचार्यका, श्री चैतन्य महाप्रभुका, श्रीवल्लभाचार्यका सम्प्रदाय उतना ही प्यारा है। मिट्टी क्या है? यह पहचानना हो तो उपनिषद् कसौटी हैं। पर, घड़ा कैसा बने, कैसा होये, उसमें कैसी डिजाइन होये? तो यही कहेंगे कि अपने सोनेके घड़े पर तुम श्रीचैतन्य महाप्रभुसे राधा-कृष्णकी लीला खुदवाओ।

नारायण, इस प्रकार ब्रह्माजीने रहनीका सार बताया कि प्रत्येक क्रियामें भगवान्‌की कृपाका अनुभव हो। माने, आत्मग्लानि न हो। भगवत्-प्रसादकी अनुभूति हो। ऐसा गहरा दर्शन हो, ऐसा गहरा अनुभव हो, इतनी पैनी नजर हो कि भगवान्‌में डूब जायँ और कहाँ सुख आरहा है, कहाँ दुःख आ रहा है-इसका पता ही न चले। श्रीमद्भागवतमें ही आगे इसी प्रसंगमें यह बात आयी है 'न विंदत् भववेदना' कृष्णकी चर्चामें, उनकी लीलामें ऐसे डूब गये कि उन्हें भववेदनाका पता ही नहीं चला। अरे, यह भी पता नहीं चले कि आज घरमें लड़ाई हुई कि नहीं! आज रोटी बनी कि नहीं बनी-इसका भी पता नहीं चले। शरीरमें फोड़ा हो गया कि फुंसी हो गयी, दर्द हो गया-यह सब ख्याल हो जानेसे होता है। ख्याल अगर नहीं जाये तो कोई तकलीफ न हो। यह हमारी सूरतका ही खेल है। अगर हमारी सूरत न जाये तो कहीं कुछ पता ही न चले! तो उधर ध्यान मत दो। जो होता है सो होने दो। तुम्हारे बारेमें कोई कुछ कहता है तो कहने दो!

मैंने कलकत्तेमें एक सेठको देखा। फोन आया-तुम्हारे बेटेकी

मोटरका एक्सीडेन्ट हो गया है। तो उसने पूछा कि यह बताओ कि मर गया कि जिन्दा है। पुलिसवाले यह बतानेमें डरते थे कि मर गया है। उसने कहा कि बाबा, बताओ तो सही। अगर जिन्दा होये तो हास्पिटलकी तैयारी करके आवें और मर गया हो तो लोगोंको खबर दें और श्मशानकी तैयारी करें। हमको साफ-साफ बता दो। यह देखो उसके मनमें कहीं कुछ ख्याल नहीं। असलमें, दुनियामें तुम जितना ख्याल दोगे, उतना ही दुःख तुमको मिलेगा। यह नोट कर लो। जितना देखोगे, माया दिखेगी, जितना देखोगे छल-कपट ही दिखेगा, जड़ता दिखेगी। अपनेको दुःखी करनेका शौक हो तब दुनियाकी गहराईमें जाओ। नहीं तो भगवत्प्रसादमें मग्न रहो बाबा! यह भी कृपा! यह भी कृपा!!

यह देखो श्याम! यह देखो श्याम!!

आत्मग्लानि न हो और आत्मतुष्टि बनी रहे, भगवान्‌की कृपाका अनुभव होता रहे। अपनेको कसो मत, ढीला छोड़ दो, मुक्ति तो तुम्हारे पास स्वयं आयेगी। मुक्ति-युक्तिके लिए कोई साधन करनेकी भी जरूरत नहीं है। छोड़ दो भगवान् पर!!

अनन्योपायसाध्यत्वे महाविश्वासपूर्वकम्।

अपने भीतर महाविश्वास हो। ज्ञान, वैराग्य तो भक्तिके बेटे हैं। लेकिन, भक्ति किसकी बेटी है-आपको मालूम है? भक्ति, ब्याही गयी है भगवान्‌से और विश्वासकी बेटी है। जितना तुम्हारे जीवनमें ईश्वर पर विश्वास रहेगा, उतनी भक्ति बढ़ेगी और जितनी भक्ति बढ़ेगी उतना ही ज्ञान, वैराग्य तुम्हारे जीवनमें रहेगा और जितना ज्ञान, वैराग्य तुम्हारे जीवनमें रहेगा-दुःख तुमको छूयेगा नहीं!! इसका मतलब हुआ कि हमारी नजर भगवान् पर रहे।

●

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये
परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं
ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ।।

(10.14.9)

'प्रभो! मेरी कुटिलता तो देखिये। आप अनन्त आदि-पुरुष परमात्मा हैं और मेरे जैसे बड़े-बड़े मायावी भी आपकी मायाके चक्रमें हैं। फिर भी मैंने आप पर अपनी माया फैलाकर अपना ऐश्वर्य देखना चाहा। प्रभो! मैं आपके सामने हूँ ही क्या? क्या आगके सामने चिनगारीकी भी कुछ गिनती है।'

हम भगवान्‌को देखें-इसका अर्थ हुआ कि हमारी नजर भगवान् पर रहे। परन्तु, भगवान्‌की नजर हमारे ऊपर रहे '**पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये**'-बड़ी-बड़ी आँखोंसे देख रहा है। सूर्य उसका नेत्र है, चन्द्रमा भी उसका नेत्र है। बुद्धि जिसका नेत्र है, मन जिसका नेत्र है। सूर्य और चन्द्रमा आधिदैविक नेत्र हैं और बुद्धि और मन आध्यात्मिक नेत्र हैं। वह हमारे हृदयमें बैठकर हमारी ही बुद्धिकी आँखसे और हमारे ही मनकी आँखसे देखता है। अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्यका नाम 'जीव' है और अन्तःकरणाभावावच्छिन्न चैतन्यका नाम 'ईश्वर' है। अन्तःकरण सहित चेतन जीव है और वही चेतन अन्तःकरण रहित ईश्वर है और साहित्य-राहित्य दोनोंकी उपाधिसे विनिर्मुक्त वही चेतन ब्रह्म है। चेतन एक ही है। उपाधिके साहित्यसे जीव है, उपाधिके राहित्यमें ईश्वर है और साहित्य-राहित्य उपाधिके बिना ब्रह्म है। साहित्य जैसे उपाधि है, वैसे राहित्य भी उपाधि है। साहित्यावच्छिन्न प्रदेशमें ही राहित्यावच्छिन्न प्रदेश होता है और तद् व्यतिरिक्त जो है, उसमें न साहित्य है, न राहित्य है। तो साहित्य-राहित्य जहाँ बाधित हुआ, वहाँ

ब्रह्म-ही-ब्रह्म है। हमारे महात्मा लोग तो विलक्षण ढंगसे वर्णन करते हैं। ईश्वरसे कह दिया, 'आओ, हमारी ओर देखो! हमने तुमको देखा, तुम बड़ी कृपा कर रहे हो। अब तुम जरा हमारी ओर देखो कि हम कितनी गलती कर रहे हैं।

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये

कहाँ तुम अनन्त! कहाँ आदि-पुरुष तुम! कहाँ परमात्मा तुम! कहाँ मायापति तुम! और, कहाँ मैं!! जैसे कोई चिनगारी आगको जलाना चाहे, वैसे मैं तुम्हें अपनी माया, अपना छल-कपट दिखाता हूँ। तो जरा मेरी ओर देखो।

दिखानेमें एक चतुराई है। बहुत चतुराई है, आप इसे कम नहीं समझना। हमने यह सुना है कि भँवरेकी जो आँख है, वह फूलके परागको-छोटे-छोटे पीले कणको हाथीके बराबर देखता है। भँवरेकी पुतलीमें ऐसा सामर्थ्य है कि जैसे खुर्दबीन लगाने पर हम छोटी चीजको बड़ी देखते हैं, वैसे वह छोटी चीजको बड़ी देखता है। तो दुष्टके नेत्रका सामर्थ्य है कि वह छिपे हुए दोषको भी देख ले और ईश्वरके नेत्रका सामर्थ्य है कि वह छिपे हुए अपने आत्माको देख ले। तो ईश्वरको दोष-गुणकी उपाधिसे रहित अपना-आपा ही सब जगह दिखता है। ईश्वरकी दृष्टि कैसी? अन्तःकरण रहित माने पूर्वाग्रहसे विनिर्मुक्त। यह दोष है, यह गुण है, यह धर्म है, यह अधर्म है, यह पाप है, यह पुण्य है-ऐसे करके ईश्वर नहीं देखता। ईश्वर देखता है कि यह हमारा वैभव है। मैं ही इस रूपमें दिख रहा हूँ।

देखो, श्रीरामचन्द्र भगवान्से ब्राह्मणोंने कहा कि हे रामचन्द्र, यह विभीषण पापी है। क्यों? इसने ब्रह्म-हत्या की हैं। रामचन्द्रने कहा कि विभीषणने की है? आश्चर्यकी बात कर रहे हो! विभीषणके हृदयमें तो मैं बैठा हुआ हूँ! ब्रह्म-हत्या विभीषणने नहीं की, मैंने की। इसलिए, विभीषणको जो दंड देना है, वह हमको दो! पद्मपुराणमें यह कथा है। पढ लो हमारे कानूनकी धारा! संविधानकी पुस्तक हमारा कानून यह

है कि सेवकसे अपराध हो जायें तो स्वामीको दण्ड देना। सबका स्वामी मैं हूँ, इसलिए जितना दण्ड देना हो हमको दे लो! इसीसे बोलते हैं,

उमा राम सुभाऊ जेहि जाना,
ताहि भजन तजि भाव ना आना।

कितना सुशील! कितना सुशील!!

रावणने विभीषण पर शक्ति मारी। भगवान्‌ने कहा कि यह शक्ति खाकर अगर मैं मर जाऊँगा तो विभीषणके राजा होनेकी सम्भावना बनी रहेगी। लेकिन यह शक्ति लगनेसे अगर विभीषण मर जायेगा तो राजा बननेकी सम्भावना मिट जायेगी। पर हमने इसको राजा बननेका वचन दे दिया है। हम मर जायें तो मर जायें, हमारी प्रतिज्ञा झूठी नहीं होनी चाहिए।

रामचन्द्रके राज्याभिषेकके दिन स्वर्गसे सब देवताओंके साथ दशरथजी आये। तो रामचन्द्रने उठकर नमस्कार किया और बोले कि पिताजी, एक बातके लिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ–आपने जो अपने मनसे कैकेयीका जो परित्याग कर दिया और कैकेयीके पुत्रोंका परित्याग कर दिया, अपना वह निश्चय आप बदल दीजिये। मैं उनकी ओरसे आपसे क्षमा माँगता हूँ। आप भरत और उसकी माताको स्वीकार कीजिये। पति–पत्नीको छोड़ दे तो उसका अमंगल हो जाता है।

तुलसीदासजी महाराज कहते हैं–'**नेक मेरी ओर हेरिये**' जानते हैं कि श्रीरामचन्द्र महाराजकी आँखकी पुतलीमें वह रोशनी ही नहीं है जिससे दोष दिखते हैं। बोले कि मेरी ओर देखेंगे तो क्या हो जायेगा? मैं हो जाऊँगा प्रमेय और भगवान् हो जायेंगे प्रमाता। तो प्रमेयका साक्षात्कार कैसे होता है? बड़ी अद्भुत लीला है। प्रमातृ–चैतन्य माने अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य प्रमाण–वृत्ति पर माने अवतार धारण करके जब प्रमेयावच्छिन्न चैतन्यसे एक होता है, तब प्रमेयका ज्ञान होता है।

माने जब अन्तःकरणावच्छिन्न-चैतन्य और घटावच्छिन्न-चैतन्य एक हो जाते हैं माने जब घट कल्पना-मात्र रह जाता है तब कल्प्य और कल्पनावच्छिन्न एक हो जाते हैं, तब ज्ञान होता है। इसका अर्थ क्या हुआ? राम यदि किसीको देखें तो वह रामसे अभिन्न हो जायेगा। राम जिसको देखेंगे उसको अपनेसे अभिन्न करके देखेंगे। राम अपना स्वरूप देखेंगे कि दूसरेका स्वरूप देखेंगे? अरे मेरे भाई, अपनी नजर काहेको बिगाड़ते हो!

ब्रह्माजी कहते हैं कि पहली बात तो यह है कि आपकी कृपा-ही-कृपा है, इसमें अपराध-अपराधी नहीं है। दूसरे बात यह है कि आप यदि हमारी ओर देख लो तो अपराध नहीं है और तीसरी बात है कि यदि अपराध भी होवे तो क्षमा करो महाराज! क्योंकि हमारे अन्दर तो गलती-ही-गलती है। सिन्धुसे बिन्दु अलग हुआ-यह भी तो गलती है।

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो
ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः।
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष
एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति।।

(10.14.10)

'भगवन्! मैं रजोगुणसे उत्पन्न हुआ हूँ। आपके स्वरूपको मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। इसीसे अपनेको आपसे अलग संसारका स्वामी माने बैठा था। मैं अजन्मा जगत्कर्ता हूँ-इस मायाकृत मोहके घने अन्धकारसे मैं अंधा हो रहा था। इसलिये आप यह समझकर कि 'यह मेरे ही अधीन है-मेरा भृत्य है, इसपर कृपा करनी चाहिए', मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

कितनी बार यह श्लोक पढ़कर मैं रोया हूँ भला! **'एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति'**-'एष ब्राह्मणः अनुकम्प्यः कथं मयि नाथवानिति'। बच्चे थे तो यह बात मनमें आती थी कि ब्राह्मण पर भगवान्‌की कृपा ज्यादा होती है। वह बचपनका ख्याल था, हम

आपको केवल संस्मरण सुनाते है। मैं 16-17 वर्षका, पैदल चलनेका खूब अभ्यास था। चलते-चलते श्लोक बोलता जाता-

क्वाहं दरिद्रः पापीयान्, क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः।।

'कहाँ मैं अत्यन्त पापी दरिद्र और कहाँ श्रीनिवास श्रीकृष्ण! लेकिन मैं ब्राह्मण कुलमें पैदा हुआ हूँ-यह समझकर भगवान्ने दोनों हाथसे मुझे पकड़ा और अपने हृदयसे लगा लिया। यह श्लोक जब मैं बोलता तो चलते-चलते रोमाञ्च हो जाता, आँखोंमें आँसू आने लगते। यह श्रीमद्भागवतमें सुदामाका वचन है।

'**अतः क्षमस्व**'-अच्युत! तुम्हारा तो कुछ बनने-बिगड़नेवाला है नहीं। हमारे जैसा पापी आपके चरणोंकी धूलमें कहीं अटक जाये तो तुम्हारे ऊपर क्या बोझ होता है? 'रजोभुवः'-अच्छा, हमारे अन्दर अपराध क्यों न हो? सवाल तो यह है! आओ भगवान्से लड़ लें पहले। अच्छा, अपराध हमारे अन्दर क्यों है? पालनके लिए तो भगवान् विष्णु बने और सृष्टि बढ़ानेके लिए ब्रह्मा बने और सृष्टिका संहार करनेके लिए रुद्र बने। तो जब विष्णुके कामसे ही ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है 'रजोभुवः'- माने प्रश्न यह है कि रजस् कहाँसे आया? क्षीरसागर, उसमें शेष, शय्या और उसपर विष्णु, लक्ष्मी पाँव दबा रहीं, कौस्तुभ-मणि कण्ठमें! अब यह वहाँ यह रजस् आया कहाँसे? ब्रह्मा तो वहीं पैदा हुए। कहीं और तो पैदा हुए नहीं! नाभि-कमलसे ही पैदा हुए। तो रजस् कहाँसे आया? तो यह नहीं कहते हैं कि हे प्रभु, मैं तुम्हारा बेटा हूँ। यह कहते हैं कि तुम और तुम्हारा पेट, तुम्हारी नाभि, नाभिमें कमल, कमलकी कर्णिका और कर्णिका पर एक रजःकण-उससे मैं पैदा हुआ 'रजोभुवः'। तुम्हारे ही नाभि कमलके रजःकणसे हैं। पैदा हुआ। क्यों हुए? भगवान्के मनमें काम हुआ। डरना मत 'काम' शब्द सुनकर! अशास्त्रीय लोग 'काम' शब्द पर जाते हैं।

कामस्तदग्रेसमवर्तताधि।

जब भगवान्‌ने देखा कि अनादि-कालसे जीव जो हैं संसारके प्रवाहमें बहते-बहते, भटकते-भटकते इस समय प्रलयकी निद्रामें सो रहे हैं-न उनको धर्मका ज्ञान, न अर्थका ज्ञान, न कामका ज्ञान, न मोक्षका ज्ञान, न ईश्वरका ज्ञान, न जीवका ज्ञान। अज्ञानकी निद्रामें सो रहे हैं। तो करुणासे प्रेरित होकर भगवान्‌ने यह संकल्प किया कि वे इस अज्ञान-निद्रासे जाग्रत् होवें। इनको मनुष्यादि शरीरकी प्राप्ति होवे- इसके लिए भगवान्‌ने करुणार्द्र, होकर कामनाकी और उस कामनासे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई।

तो 'रजोभुवः' मैं रजस्‌से तो पैदा हुआ। तब मैं अपराध नहीं करूँगा तो और क्या करूँगा। मुझसे अच्छाईकी क्या आशा है? दूसरी बात बतायी-'अजानतः'। पहचानता नहीं हूँ मैं। एक तो रजोगुणी-प्रकृतिके रजोगुणसे, जो विक्षेपात्मक है, जिसमें पूर्णज्ञान नहीं, पूर्णप्रकाश नहीं और मैं हूँ अज्ञानी और 'अजावलेपान्धतमोन्धचक्षुषः' ऊपरसे तुमने फैला दी माया। मायाका अंजन लग गया, विक्षेप-शक्तिका बाहुल्य हो गया और मैंने तुमसे अलग अपनेको ईश्वर मान लिया।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।

(गीता 16.15)

'ईश्वरोऽहमहं भोगी'-मैं तुमसे अलग एक और ईश्वर हूँ। इसका फल क्या हुआ? मैं अपनेको मालिक समझने लगा। नारायण, मालिक समझना तो ठीक है, परन्तु असली मालिकको भूल गया। पहचाना नहीं। चोरीकी। यह स्वामी और दासके बीचमें कपटका जो आना है-यह अपराध है-ब्रह्माजी यह बताते हैं। मैंने तुम्हारे ग्वाल-बाल चुरा लिये, बछड़े-चुरा लिये और उनको ले जाकर गुफामें, अज्ञान-निद्रामें ले जाकर शयन करा दिया। तो स्वामीके साथ सेवकका यह काम गलत है। मैं मानता हूँ कि मुझसे अपराध हुआ। पर, अपराध होना

स्वाभाविक! एक और मैं अज्ञानी और दूसरी ओर रजोगुण, तीसरी ओर पृथगीशमानि, चौथी ओर तुम्हारी माया और मैंने सेवक होकर अपने स्वामीसे कपट किया। तब तुम क्षमा किस मुँहसे माँगते हो? जान बूझकर तुमने चोरीकी, कपट किया, अभिमान किया। फिर, क्षमा किस मुँहसे माँगते हो?

तो ब्रह्माजी कहते हैं कि आपको क्षमा करनेकी एक मैं युक्ति बताता हूँ, सुझाव देता हूँ! माने जैसे जज अपराधीसे पूछे कि अपराध तो तुम खुद कबूल करते हो कि मैंने अपराध किया और अब चाहते हो सजासे छूटना। तो हमारे पास तो तुमको छोड़नेके लिए कोई कानून नहीं है। बोले कि कानूनकी एक ऐसी धारा है, जिसके अनुसार आप मुझे क्षमा कर सकते हो। अपराधी ही जजको कानूनकी वह धारा बता रहा है कि इसके अनुसार आप हमको छोड़ सकते हो। कोई वकील नहीं है। आमने-सामने ईश्वरसे बात चल रही है। अच्छा, बताओ क्या कानून है? कानून यह है कि,

अन्यत्र प्रभुत्वेन वर्तमानोऽपि मयि नाथे सति नाथवान्मद्भृत्य एवात एषोऽनुकम्प्य, मयि नाथवान् इति अनुकम्प्यः।

यह दूसरोंके सामने मालिक बनता है सो तो ठीक है, पर 'निज प्रभु के बल बनत हमारे'। मुनीमसे किसीने पूछा कि यह दूकान किसकी? बोला कि मेरी। तो जब मुनीमने कहा कि मेरी, तो उसके मनमें मालिकके साथ एकता हो गयी। लेकिन ले-देनेकी अपनी बोलता हो, तब तो बेईमानी है और हिफाजत करनेके लिए, रक्षा करनेके लिए यदि 'मेरी' बोलता हो, तो ठीक है।

एक गरीबका बालक था। उसका ब्याह था। उसके बाप ऐसे मूक प्राणी थे कि कुछ बोल नहीं सकते थे। ब्याहके पहले दिन लड़की का बाप आया और बहुत कुहराम मचाया कि हमारे कल ब्याह नहीं होगा, बारात नहीं आवेगी। इस लड़केका मालिक कौन है? कौन

आभूषण लेकर आवेगा? कौन समधी है? नारायण, मेरे ही सामने सारी बात हो रही थी। हमको आया गुस्सा। हमने कहा कि देखो, इस लड़केका बाप मैं हूँ और कल बारात पूरी तरहसे तुम्हारे गाँवमें आवेगी और तुम होश-हवाशसे ब्याह नहीं करोगे तो तुमको दूसरी जगह भिजवा देंगे और लड़कीको ब्याहकर ले आवेंगे। वह बोला कि अच्छा, आप बाप हैं न! मैंने कहा कि हाँ! आकर उसने पाँव छूये और बोला कि बारात ले आओ और ब्याह करो। हमको तो लड़केका बाप चाहिए था। सो बाप मिल गया। नारायण, सब आनन्दसे ब्याह हो गया। हम भी बारातमें गये। हमने जिम्मेवारी क्यों ली? जानते हो कि उस लड़केका बाप हमारी बातको टाल नहीं सकता है, माँ हमारी बात टाल नहीं सकती है। लड़का बिलकुल हमारी आज्ञामें है।

तो नारायण, यह जो ईश्वरके सेवक होते हैं, भृत्य होते हैं, वे कभी-कभी ईश्वरकी ओरसे काम करते हैं। तो ब्रह्माजी बोले कि महाराज, यह हमारी गलती नही है। हम दूसरोंके तो मालिक हैं, लेकिन आपके तो सेवक ही हैं न! देखो, अब कानूनकी धारा मैं बताता हूँ कि आप यह कहो कि इसने जो अपराध किया है, वह मुझे अपना मालिक मानकर, मेरी प्रेरणासे, मेरे मनोरंजनके लिए, मुझे खुश करनेके लिए इसने यह खेल किया है। आप ऐसे कह दो न! बस, अपराध कट गया। दुनिया कहेगी कि ब्रह्मा चोर है! आप कहोगे कि नहीं, ब्रह्मा चोर नहीं है। हमने ही ब्रह्माके कानमें कहा कि तुम चुरा लो। कृष्णने कहा कि ठीक है, ठीक है मैंने ही कहा था। क्यों कहा था? क्योंकि हमारा मन ब्रजकी सब गोपियोंसे ब्याह करनेका था। इसलिए सब ग्वालोंको चुरवा दिया ग्वालोंके रूपमें मुझसे ही उसी दौरान सब गोपियोंका ब्याह कर दिया गया।

अच्छा महाराज, बछड़े भी चुराये थे।' बड़ा अपराध हुआ। भगवान् बोले कि न-न मैंने ही तुम्हें प्रेरणा दी कि तुम बछड़ेको चुराकर ले जाओ और सब गायोंका अपने मुँहसे मैं दूध पीऊँ! इसीके लिए तो

यह काम तुमसे करवाया था। ब्रह्माजी कहते हैं कि आप ही ऐसी घोषणा कर दो न! दुनियामें मेरे अपराधका कहीं कुछ पता ही नहीं चलेगा। सुझाव तो अच्छा है। अपने सेवकके अपराधको अपने ऊपर ले लेना-यह आपके शील-स्वभावके विपरीत नहीं है। तो-**मयि नाथवान्** इति-आप यह कहो कि यह तो मेरे अधीन है, मेरी कठपुतली है।

उमा दारुजोषित की नाईं।
सबै नचावत राम गुसाईं।।
नट मरकट इन सबहिं नचावत।
राम खगेश वेद अस गावत।।

आप कबूल कर लो कि हमने ही यह सब इससे करवाया! बाबा दूसरोंके सामने तो यह ज्ञान बघारता है और मेरे सामने तो यह बिल्ली बन जाता है। तो आप अपना सेवक समझ करके हमको माफ कर दो।

नारायण, कालिय-नागका प्रसंग तो और भी विचित्र है। क्योंकि, उसको तो व्रजकी हवा लग गयी थी। नागपत्नियोंने कहा कि यह दंड नहीं है, न्याय है। फिर बोलीं कि न्याय नहीं है, अनुग्रह है। इसके सिरपर पाँव रख दिया, बड़ा भारी अनुग्रह। यह तो ब्रह्माको भी नहीं है, लक्ष्मीको भी नहीं है। किसके सिरपर आपने पाँव रखा? ब्रह्माके सिर पर कभी पाँव रखा? लक्ष्मीके सिरपर कभी पाँव रखा? अरे, ये चरण कालियनागके सिरपर रखे गये। कालियनाग आपका अनुग्रह-भाजन है। लो, कोई पाँवसे किसीको मारे और वह माने् अनुग्रह! अब क्या करेंगे? कालियनागने कहा कि देखो भगवान्! हम तो एक बात पूछते हैं कि तुमने सारी सृष्टि बनायी है कि नहीं? 'हाँ भाई, बनायी है।' 'सारी प्रकृतिके प्रेरक तुम्हीं हो?' 'हाँ'। 'दुनियामें देवता, चंद्र, सूर्य तुमने बनाये?' 'हाँ, बनाये'। 'पशु, पक्षी, मनुष्य तुमने बनाये?' 'हाँ, बनाये।' अच्छा, महाराज, ये साँप तुमने बनाये? 'हाँ, मैंने बनाये'। 'इनको सरकनेवाला तुमने बनाया?' 'हाँ'। 'इनमें जहर तुमने भरा'? 'हाँ'। 'इनके

काटनेसे आदमी मर जाय-यह तुमने बनाया?' भगवान् बोले कि हाँ। वह बोला कि जब तुमने सब बनाया तो अब हमारे विषकी वजहसे कोई मर जाये तो उसका दण्ड हमको मिलना चाहिए कि तुमको मिलना चाहिए-यह बताओ! श्रीमद्भागवतके मूलमें ही कालियनागकी स्तुतिमें ही यह बात कही गयी है। सब कुछ तो बना दिया तुमने और अब दण्ड देते हो हमको?

एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति।

क्वाहं तमोमहदहं खचराग्निवार्भू-
संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या-
वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्।।

(10.14.11)

'मेरे स्वामी! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी रूप आवरणोंसे गिरा हुआ यह ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है। और, आपके एक-एक रोमके छिद्रमें ऐसे-ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उड़ते-पड़ते रहते हैं, जैसे झरोखेकी जालीमें-से आनेवाली सूर्यकी किरणोंमें रजके छोटे-छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखायी पड़ते हैं। कहाँ अपने परिमाणसे साढ़े तीन हाथके शरीर वाला अत्यन्त क्षुद्र मैं, और कहाँ आपकी अनन्त महिमा!!

जरा भगवान्से बात करो तो मजा आवे! सारे पाप कट जाते हैं। आप भगवान्के आमने-सामने खड़ा होकर एक बात तुम कहो और एक बात उनकी सुनो। जैसे पति-पत्नी घरमें बैठकर आपसमें बातचीत करते है, बहस करते हैं, वैसे ही मन-ही-मन भगवान्के सामने बैठ जाओ, फिर कुछ तुम कहो और कुछ उनकी सुनो! तो देखो, वासना मिट जायेगी, पाप मिट जायेगा, तुम्हारा चित्त प्रसन्न हो जायेगा, निर्मल हो जायेगा।

ब्रह्माजी बोले कि देखो महाराज, एक तो पहले हुई प्रकृति, प्रकृतिमें महत्तत्त्व, उसके बाद अहंकारतत्त्व, उसके बाद हुईं,

पञ्चतन्मात्रा, उससे हुए पञ्चभूत और फिर पञ्चभूतोंमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड बने। उसमें-से एक ब्रह्माण्ड मेरा शरीर और अपने हाथसे साढ़े-तीन हाथका मैं भी हूँ और ऐसे-ऐसे अगनित ब्रह्माण्ड आपके एक-एक रोम-कूपमें गिरते-पड़ते, उड़ते, टूटते रहते हैं। इतने बड़े तुम और इतना छोटा मैं! कहाँ तुम मकानके मालिक और कहाँ मैं सूर्योदयके समय खिड़कीमें उड़नेवाला छोटा-सा धूलि-कण। कहाँ तुम मकान और कहाँ मैं एक धूलि-कण! तो मकान क्या धूलिकणको कहीं अपराधी समझता है?

एक बैलके सींगपर मच्छर बैठा। दस-पन्द्रह मिनट बैठा रहा। फिर जब उड़ा तो गुनगुनाता हुआ उसकी आँखके सामने आया। बैलने पूछा कि क्या बात है रे? वह बोला कि माफ करना, मैं तुम्हारे सींगपर पन्द्रह मिनटसे बैठा हुआ था। बैल बोला कि हमको तो पता ही नहीं चला भलेमानुस! कब आये, कब बैठे और कब उड़े।

तो नारायण, ईश्वरकी अनन्ततामें जो एक ब्रह्माण्ड है, जैसे सारी धरतीमें एक बालुका कण होए-ऐसा तो ब्रह्माण्ड और उस ब्रह्माण्डमें 'मैं' करके बैठा हुआ ब्रह्मा! ब्रह्माजी बोले कि मैं अपराधी!

देखो, अब एक दूसरा कानून बताते हैं! वह कानून क्या है? आप लोग दूध पीते हैं कि नहीं? पीते हैं। अच्छा तो वह दूध जब शरीरमें जाता है तो वह केवल आरोग्यके कीटाणुको ही मिलता है कि रोगके कीटाणुको भी मिलता है? आप दूध ऐसे पीओ कि आरोग्यके कीटाणुको मिले और रोगके कीटाणुको न मिले! है आपके अन्दर ऐसा सामर्थ्य। माँके पेटमें बच्चा-

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं
तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः।।

(10.14.12)

'वृत्तियोंके पकड़में न आनेवाले परमात्मन् ! जब बच्चा माताके पेटमें रहता है, तब अज्ञानवश अपने हाथ-पैर पीटता है, परन्तु क्या माता उसे अपराध समझती है या उसके लिए वह कोई अपराध होता है? 'है' और 'नहीं है'-इन शब्दोंसे कही जानेवाली कोई भी वस्तु ऐसी है क्या, जो आपकी कोखके भीतर न हो?

अपने चित्तको सम करो भाई! चित्तको भगवद्-दर्शी बनाओ!

एक गोबरका ढेर लगा है और उसपर मिश्रीकी एक डली रखी है। और, एक मिश्रीका ढेर लगा है और उसपर गोबरकी एक डली रखी है। आप जानते हैं, क्या नतीजा निकला इसका? चींटी सारा गोबर पार करके मिश्रीकी डलीके पास पहुँच गयी और उसे खाने लगी और गुबरौला जी आये, तो सारी मिश्री पार करके ऊपर जो गोबरकी डली रखी थी, उसको खाने लगे। तो यह हमारा मन भी दो तरहका होता है-एक गोबर-भोगी होता है और एक शर्करा-भोगी होता है। आपका मन दोषको पार करके गुणको देखे तो शर्करा-भोगी है और गुणको पार करके दोषको देखे तो वह गोबर-भोगी है। देखो सारी साधना अपने अन्तःकरणके निर्माणके लिए है। दोष देखते-देखते जन्म बीत गये, युग बीत गये। इससे तुमको क्या सुख मिला, क्या सौभाग्य मिला?

ब्रह्माजी कहते हैं कि माँके पेटमें बालक है और वह पाँव पटक रहा है। कभी पाँव जोरसे भी लग जाता है। हे अधोक्षज, किं मातुः आगसे कल्पते? हे अधोक्षज, गर्भगतस्य शिशोः पादयोरुत्क्षेपणं किं मातु आगसे कल्पते? क्या माँके लिए वह अपराध होता है?

देखो, पहले तो कृपाकी प्रधानतासे क्षमापन किया-एक बात। फिर भगवद्-दृष्टिकी प्रधानतासे क्षमापन किया-दो बात! फिर स्वामी-सेवकके सम्बन्धसे क्षमापन किया-यह तीसरी बात। और फिर, महान् और अल्पकी दृष्टिसे क्षमापन किया-चौथी बात। अब अन्तमें माता और बालककी दृष्टिमें अपराध कहाँ? भगवान्‌की अनन्ततामें अपराध

कहाँ? भगवान् जैसे उदार प्रभुके स्वामित्वमें अपराध कहाँ? और, प्रभुके मातृत्वमें अपराध कहाँ?

एक दिन एक बाप छड़ी लेकर दौड़ा अपने बच्चेको मारनेके लिए। बच्चा दौड़ा, वहाँ उसकी माँ खड़ी थी, दौड़कर वह उसकी साड़ीमें लिपट कर उसकी जाँघके बीचमें आ गया। माँ खड़ी हो गयी डटकर कि क्यों छड़ी लेकर आ रहे हो बच्चेकी ओर। पिता बोला कि इसकी आदत बिगड़ रही है, इसने चवन्नीकी चोरी कर ली! बोली कि नहीं-नहीं, मैंने इससे कहा था कि तुम्हारे बापने वहाँ चवन्नी रखी है, वह लेकर आओ, बाजारसे सौदा लाना है। हमारे कहनेसे गया है। झूठ ही बोल दिया। अच्छा, बापसे बचानेके लिए मातायें झूठ बोलती हैं कि नहीं? बापकी मारसे बच्चेको बचानेके लिए मातायें झूठ बोलती है। तो कहो कि उनको झूठ बोलनेसे पाप लगता होगा? नहीं, वह पुत्रके वात्सल्यका जो आनन्द है, उसमें वह बह जाता है, पवित्र हो जाता है। जैसे करेलेको कभी-कभी चासनीमें पका लेते हैं तो कड़वा करेला भी मीठा हो जाता है, ऐसे झूठ बोलना है तो बुरा, है तो पाप; लेकिन वह वात्सल्यकी चासनीमें जब मुरब्बा बनकर आता है तो पवित्र हो जाता है। जब दुनियाकी मातायें ऐसा करती हैं तो एक मातासे नहीं, संसारमें अबतक जितनी मातायें हुई हैं और हैं और आगे होंगी, उनके हृदयमें जितना वात्सल्य, स्नेह है-वह सब जिस एक प्रभुके हृदयमें है, वह प्रभु क्या जीवका अपराध देखेगा?

एक आदमीने कहा कि ईश्वर है और एकने कहा कि नहीं है। आजकलके भक्तराज तो बड़े ही विचित्र होते हैं। उनके सामने कोई कहेगा कि ईश्वर नहीं है तो डंडा ही मारेंगे। अच्छा, अगर दुनियामें कोई यह कहे कि ईश्वर है ही नहीं, तो ईश्वरको कैसा लगता है-जरा यह बताओ! इसपर आपने कभी विचार किया है। क्या ईश्वरको भी अपमान मालूम पड़ता होगा? भलेमानुस, यह सब कुछ नहीं।

अच्छा, हम अपने एक मित्रके घर गये। हमारे मित्रका बालक

चार-पाँच वर्षका। उसको खूब तो खिलाया, खूब प्यार किया, खूब मीठी-मीठी बात सुनायी। चुटकुले सुनाये, कहानी सुनायी। ऐसा खुश हुआ कि वह हमारे पास रहे, हमारे मित्रके पास न जाये। वे कहें कि आओ बेटा मेरे पास! वह बोले कि नहीं, हम तो इन्हींके पास रहेंगे। मित्र बोला कि मैं तुम्हारा बाप हूँ, मेरी बात तो मानो! वह बालक बोला कि तुम हमारे बाप नहीं हो-हमारे बाप तो ये हैं! तो हमारे मित्र अपने बेटे पर नाराज नहीं हुए। बोले कि ओ-हो, आपसे इतना मिल गया है, आपको इतना मानता है। कितना भोला है। नन्हा-सा बच्चा यदि अपने पिताको भी अस्वीकार कर दे तो उससे पिता नाराज नहीं होता है।

आपको एक रहस्यकी बात सुनाता हूँ। भक्तलोग इस बातपर ध्यान दें! किसीसे राग-द्वेष नहीं करें। ये भगत लोग जो हैं, ये ईश्वरको परेशान कर देते हैं। जाड़ेमें चन्दन लगा दें, माला पहना दें, दिन-रात स्तुति करते रहें, कीर्तन करते रहें! भगवान्‌को सोने न दें। बोले कि हम तो अखण्ड ही करेंगे। ईश्वर मना नहीं करता। कहता है कि कर लो भाई। अब इतना-इतना खिला दें महाराज कि अपच हो जाये। गर्म खिला दे, ठण्डा खिला दें। बिना नमकका खिला दें, कच्चा खिला दें। तो ईश्वर सोचने लगता है कि थोड़ा-सा समय ऐसा निकालो कि इन लोगोंसे पिण्ड छूटे! तो वह बुद्धसे कहता है कि जरा धरती पर जाओ! जाकर लोगोंसे बताओ कि ईश्वर नहीं है। इससे क्या होगा? अरे, इनकी चंदन, मालासे जी बचेगा!

तो नारायण, अकलसे काम लेना चाहिए। सेवा तो सेवाकी तरह होती है। सोनेके समय शयन होना चाहिए, जलपानके समय जलपान होना चाहिए। मधुर-मधुर संगीत भगवान्‌को सुनाना चाहिए। यह सब लोग 'अल्ला-हो-अकबर की नकल ही करें-यह कोई जरुरी नहीं होता है। तो ईश्वर कभी-कभी अपने बहुत प्यारेको भेजता है। बुद्ध और ईश्वरमें कोई फर्क नहीं है। कभी-कभी ईश्वर ही बुद्ध बनकर आता है

और कहता है कि मत करो पूजा, मत मानो ईश्वर! नास्तिक बनकर आता है। यह क्यों? यह भी उसकी एक लीला है।

एकदिन दादूदयाल एक टीले पर बैठे हुए थे। देखा कि दो काशीके पंडित आ रहे हैं। तो टीले परसे उतरे और पूछा कि कहाँ जा रहे हो? वे बोले कि एक महात्मा हैं दादूदयाल, उनका सत्संग करने जा रहे हैं। दादू बोले कि वह संत नहीं है दुष्ट है! क्यों जाते हो? उनके दर्शनमें क्या रखा है? ढोंगी है, मायावी है। अब स्वयं दादूदयाल ही ऐसे बोले। एक राजा आया। महात्मा देखकर बोले कि यह तो अपना लवाजमा लेकर आया है, अब क्या करें। तो आपसमें लड़ने लगे। राजाने कहा कि क्यों लड़ते हो? बोले कि हम इसलिए लड़ते हैं कि वह कहता है कि हम तीन रोटी खायेंगे, तुम दो खाओगे और हम कहते हैं कि नहीं, हम तीन खायेंगे, तुम दो खाओगे। राजाको तो सुनकर महात्मा पर अश्रद्धा हो गयी, लौट गया। जब लौट गया तो दोनों हँस-हँसकर खाने लगे।

तो आस्तिक और नास्तिक, 'हाँ' करने वाला और 'ना' करने-वाला भौतिकवादी, अध्यात्मवादी, अधिदैववादी-ये सब-के-सब ईश्वरके लीला-विलास हैं।

एक सेठका नियम था कि रोज एक साधुको भोजन कराकर, तब खुद भोजन करना। एक दिन देर हो गयी, कोई नहीं मिला। नौकर कहींसे एक महात्माको लेकर आया-गौरवर्ण, बड़े स्वस्थ, सुन्दर विद्वान् आकर बैठ गये। थाली आयी और उन्होंने तुरन्त खानेके लिए हाथ बढ़ाया। सेठने पूछा कि महाराज, आपने भगवान्‌को भोग नहीं लगाया! आप आश्चर्य करोगे, हमने ऐसे महात्मा देखें हैं जो खाते भी जाते हैं और भगवान्‌को भोग भी लगाते जाते हैं। हमने पूछा कि यह क्या करते हो? भगवान्‌को झूठा खिलाते हो? तो बोले कि हमारा-भगवान्‌का ऐसा चलता है। भगवान् हमारे साथ खाते हैं, हम भगवान् के साथ खाते हैं। एक थालीमें खानेका है हमारा! तुम शंका मत करो! अरे, कोई बाहर भोग लगाता है, कोई भीतर भोग लगाता है। किसी

जीभ पर भगवान् नन्हा-सा हाथ कर देते हैं और लेकर ग्रास खा जाते हैं। दुनिया क्या जाने! तो सेठने कहा कि भोग नहीं लगाया ठाकुरजीको। महात्मा बोले कि बाबा, हम तुम्हारे ठाकुरजीको मानते ही नहीं। सेठ बोला कि अरे राम-राम-राम, तुम्हारे जैसे नास्तिकको खानेके लिए बैठाया। महात्मा उठकर चले गये। अब रातको भगवान्ने सेठजीको डाँटा-'ए रे सेठ, उस साधुकी उम्र कितनी थी? 'सत्तर वर्ष महाराज'। 'खाता-पीता था कि भूखा था?' 'खाता-पीता स्वस्थ था'। तो जिस साधुको मैंने सत्तर वर्ष रोटी दी, उसको तुम मेरा भगत होकर एक दिन नहीं खिला सका? शर्म है तेरी भक्तिको! मालिकने सत्तर वर्ष खिलाया और सेवकने एक दिन भी नहीं।

तो नारायण, ईश्वरकी दृष्टि बड़ी विलक्षण है। 'अस्ति' बोलो, तब भी ईश्वर खुश और 'नास्ति' बोलो, तब भी ईश्वर खुश। उसीके पेटमें रहकर उसीके बारेमें हम बोलते हैं और वह अपने नन्हें बच्चोंकी तोतली बोली सुन-सुनकर खुश होता है। माफ करो बाबा-यह कहनेकी कोई जरूरत है? तो ईश्वरसे माफी माँगनेकी भी कोई जरूरत नहीं। अपने आप ही माफ कर देते हैं।

●

: 9 :

ब्रह्माजी भगवान् श्रीकृष्णसे अपने अपराधका क्षमायाचन कर रहे हैं। सामने खड़े हैं भगवान्!

इस प्रसंगमें उन्होंने कहा कि ध्यान-ज्ञान तो बड़ा कठिन है। बस सब जगह आपका और आपकी कृपाका दर्शन हो और जीवनमें शरणागति हो और हमें आप आत्मीय-दृष्टिसे देखें। छोटे कुछ उत्पात भी करें तो बड़ोंको उसपर दृष्टि नहीं डालनी चाहिए। आखिर मेरा सामर्थ्य ही क्या है? मैं अज्ञानी हूँ, रजोगुणी हूँ, मायाके चक्करमें फँसा हुआ हूँ। आप स्वामी, मैं सेवक! केवल आपको स्वामी मान कर ही कृतार्थ हूँ। आप इतने महान् और मैं इतना छोटा! और, मैं तो ऐसा हूँ कि जैसे कोई सपना देख रहा हो और सपनेमें एक अपराधी हो! क्षण भरमें सपनेमें चोर देखे। परन्तु सपना देखनेवालेका जीवन कितना है? अनादि और अनन्त द्रष्टा, उसके जीवनमें एक क्षणिक स्वप्न और उस स्वप्नमें एक भासमान अपराधी। जाग्रत् होते ही वह मिथ्या हो जाता है। तो मैं तो आपका स्वप्न-पुरुष हूँ। मेरा अपराध स्वप्न-द्रष्टाकी दृष्टिमें कैसे?

एक दूसरी बात सुनाते हैं। हम लोग बैठे हैं। तो कहाँ बैठे हैं? आप ख्याल करो कि भगवान् रामचन्द्र नन्हें-से बालक हैं। रोटी खा रहे हैं!

काग के भाग कहा कहिए,
हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।

अब कागको चिढ़ानेके लिए भगवान्ने कागको जब अपने पेटके भीतर कर लिया, तो काग देखता है कि भगवान् रामचन्द्रके पेटमें, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड! आप ध्यान करो कि भगवान् जरा कौएको चिढ़ानेके लिए अपने पेटमें कौएको ले लिया और मुँह बन्द कर लिया और उनके पेटमें जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं, उसमें-से एक यह है और उस ब्रह्माण्डमें यह पृथिवी है और पृथिवीमें भारतवर्ष है और भारतवर्षमें मुम्बई है, और मुम्बईमें यह हॉल है और हॉलमें हम बैठे हुए

हैं। कहाँ हैं? भगवान्‌के पेटके अन्दर वाले ब्रह्माण्डमें हैं। आप यह ख्याल करो कि स्थिति कहाँ है? हम या तो ईश्वरमें लीन हैं, या तो हिरण्यगर्भके संकल्पमें हैं या तो विराट्‌के अवयवमें जो ब्रह्माण्ड है, उसमें हैं। हम ईश्वरके संकल्प-मात्र, मनोराज्यमात्र-यह हमारी स्थिति है। शरीररूपसे हमारी जो स्थिति है, वह ऐसी है। तो विराट्‌के अवयवमें, हिरण्यगर्भके संकल्पमें अथवा ईश्वरमें लीन रूपसे यह जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं उनमें एक संकल्प-कणके रूपमें मनुष्यकी स्थिति है। इसको भगवान् देखते हैं तो कैसे देखते हैं?

जाके रोम-रोम ब्रह्माण्डा।

एक पुराणमें कथा आती है कि पृथिवीके जीव कंस आदि असुरोंके उपद्रवसे बहुत व्याकुल थे। ब्रह्मादि देवताओंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि प्रभु, आपके गये बिना अब कि पृथिवीका भार दूर नहीं होगा। तो जब भगवान्‌ने संकल्प लिया कि हम अवतार लेकर चलेंगे और पृथिवीका भार उतारेंगे। भगवान्‌ने कहा कि हमारी बड़ी बदनामी हो गयी कि हर समय औरतोंके बीचमें रहते हैं-गोलोकमें, वृन्दावनमें, नित्य-निकुंजमें! वहाँ पुरुषोंका प्रवेश ही नहीं। तो जरा धरती पर चलेंगे, बहादुरी दिखावेंगे, दुष्टोंको मारेंगे तो लोग कम-से-कम समझेंगे कि स्त्रैण नहीं हैं, बहादुर हैं। तो भगवान्‌ने निश्चय कर लिया कि हम चलेंगे। परन्तु, राधारानीने पीताम्बर पकड़ लिया और बोलीं कि हम नहीं जाने देंगे! तो यहाँके समयमें और वहाँके समयमें बड़ा अन्तर पड़ता है! भगवान्‌ने कहा कि अच्छा, प्रेयसी! हम तुमको छोड़कर भला धरती पर जायेंगे! हम तुमको छोड़कर नहीं जायेंगे। उनको संतोष हुआ। थोड़े देरमें भगवान् बोले कि चलो! यमुना किनारे घूमने। देखो, क्या बढ़िया साँवरा-साँवरा जल है! क्या बालुका है! क्या वृक्ष हैं! क्या मोर हैं, चकोर हैं, हंस हैं। देखो कैसी चाँदनी छिटकी हुई है। फिर कहा कि देखो-देखो, आज चन्द्रमा कितना सुन्दर है। तो श्रीराधारानीने जो चन्द्रमाकी सुन्दरता देखनेके

लिए अपनी आँख उठायी, प्रियतम परसे आँख उठकर चन्द्रमा पर गयी, उतनी देरमें भगवान्‌ने देवकीके गर्भसे अवतार ले लिया, वृन्दावनकी सारी लीला कर ली, द्वारकामें सब ब्याह कर लिए, ढाई लाख बच्चे पैदा कर लिए। और ज्यों राधारानीकी नजर चन्द्रमा परसे हटी तो देखती हैं कि बगलमें खड़े हैं। तो श्यामसुन्दर मुस्कराएँ। श्रीराधारानीने पूछा कि क्या बात है प्रियतम, क्यों मुस्करा रहे हो? बोले कि प्रियाजी, मैंने तुमसे कपट किया। शुद्ध प्रेममें कपट नहीं चाहिए। जितनी देरमें तुमने यह चन्द्रमाकी शोभा देखी, उतनी देरमें धरतीका सब काम मैं पूरा करके लौट आया। नारायण कहो!

आप जानते हैं कि स्वप्नमें पचास वर्ष बीत जाये और मर्त्यलोकका पाँच मिनट भी नहीं बीते। स्वप्नमें हजार मीलकी यात्रा कर लें और जाग्रत्‌के पाँच मिनट भी न बीतें। तो यह जो ईश्वरके संकल्पमें सृष्टि है, वह कालकी दृष्टिसे भी इतनी छोटी है, स्थानकी दृष्टिसे भी इतनी छोटी है, संकल्प-कणकी दृष्टिसे भी इतनी छोटी है कि ईश्वरके ध्यान देने योग्य यह सृष्टि बिलकुल नहीं है। तो इस महत्त्वको दृष्टिमें रखकर ब्रह्माजीने कहा कि-

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः
किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं
तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः।।

प्रभु, माँके पेटमें जो गर्भ-शिशु है, वह कभी अपने पाँवको पटके तो माता क्या अपराध मानती है? तो दुनियामें किसीके मनमें यह वृत्ति उदय होये कि ईश्वर नहीं है और किसीके मनमें यह वृत्ति होये कि ईश्वर है-अब दोनों सपनेके तो हैं बेचारे! स्वप्नके तो पुरुष हैं। न जीव है, न अन्तःकरण है, न पञ्चभूत हैं-एक कल्पना ही तो मनुष्यके रूपमें फुरफुरा रही है। वह ईश्वरको 'है' कहे तो ईश्वरका क्या बिगड़ता है और ईश्वरको 'ना' कहे तो ईश्वरका क्या बिगड़ता है?

क्योंकि, ईश्वर तो ऐसा अनन्त है कि उसके 'हाँ' 'ना' करनेका कोई महत्त्व ही नहीं होता है।

तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः।

क्या दुनियामें ऐसी भी कोई चीज है जो तुम्हारी कोखसे बाहर हो? प्रभुकी कोखसे बाहर दुनियामें कुछ है ही नहीं, तो यह बात निश्चितहो गयी कि हम बेटे और तुम बाप! हम पुत्र, तुम माता। बाप तो कभी-कभी शिक्षाके लिए डाँटता भी है। परन्तु माँ तो केवल वात्सल्यकी, स्नेहकी वर्षा ही करती है। इसीसे यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है-

कुपुत्रो जायेत क्वचिद पि कुमाता न भवति।

कुपुत्र सृष्टिमें हो जाय तो हो जाय, पर कहीं कुमाता नहीं होती। माता तो अपने पुत्र पर वात्सल्य ही करती है।

अब यह जो सम्बन्ध भक्ति है, उसको ब्रह्माजी दृढ़ करना चाहते हैं। असलमें ब्रह्माजीकी अकल धीरे-धीरे खुलने लगी। पहले तो वे घबरा गये थे। तो वर्णन करने लगे कि वो देखो बाँसुरी, वो देखो पीताम्बर और वो देखो मुस्कान, वो देखो चितवन! वो देखो मुकुट! पहले तो ऐसे वर्णन करने लगे। फिर बोले कि ध्यान-ज्ञान हमारे कामका नहीं है, हम तो तुम्हारी लीला-चर्चामें ही मग्न रहें। लेकिन धीरे-धीरे बुद्धि, खुलने लगी। तो जैसे श्रीकृष्णसे सम्वाद होने लगा। ब्रह्माजीने कहा कि तुम पिता हो और मैं पुत्र हूँ। कोई भी होता है तो भगवान्का पुत्र ही है। सबके प्रति उनका वात्सल्य है।

श्रीउड़ियाबाबाजी बताते थे कि कहीं गंगा किनारे जा रहे थे। तो गंगा किनारे एक कोई फक्कड़ महात्मा थे, जाड़ेमें जब बड़ी ठंड पड़ती तो लोग उनके पास आग जला देते और रुईका बड़ा भारी कपड़ा बनाकर उनको ओढ़ा देते। बाबा जब उनका दर्शन करने गये तो देखा कि उनके शरीर पर जो कपड़ा था, उसमें आग लग गयी है। लेकिन वे आग बुझावें नहीं। बल्कि, मुँहसे उसको फूँकें। उनका हाथ जलता जाये और वे मुँहसे

फूँकें। इतनें बाबाने झट जाकर आग बुझा दी। हाथ थोड़ा-सा झुलस गया था। तो बाबाने पूछा कि अगर यह आग बुझा देते तो तुम्हारे ज्ञानमें क्या फर्क पड़ जाता? बुझा देते आग! वे बोले कि मैंने सोचा, आग भी मैं हूँ, यह कपड़ा भी मैं ही, हाथ भी मैं ही। जरा देखें कि अपना यह स्वरूप कैसा होता है। इसका भी मजा ले लें! माने जलानेवाली आगको भी बुझाते नहीं। यह सामान्य-बुद्धिका चमत्कार नहीं है। यह बहुत गाढ़ी अनुभूति है कि यह सम्पूर्ण प्रपञ्च मुझसे अभिन्न है।

एक दिन मैं पूतना-उद्धार पर एक लेख लिखवा रहा था। एक प्रसंग उसमें आया कि वेदान्तकी रीति यह है कि पहले नेति-नेतिके द्वारा नाम-रूपात्मक विश्व प्रपञ्चका निषेध कर दिया जाय और अपवाद होनेके बाद जब अखण्ड ब्रह्मका बोध हो जाय, तब व्यतिरेककी जरूरत नहीं है, नेति-नेतिकी जरूरत नहीं है। विधि-मुखसे सब आत्मा है और अन्वय-दृष्टिसे सब अवस्था अपनी अवस्था है। सब अवस्था ही ब्राह्मी-अवस्था है, ब्राह्मीस्थिति है। परन्तु, इस पूतनाने निषेध तो किया नहीं। नेति-नेतिके द्वारा प्रपञ्चका निषेध नहीं किया। पहले ही विधि-मुखका आश्रय लेकर और यह गोकुलमें घुस गयी। तो बिना निषेधके गोकुलमें घुस जाने पर जो दुर्गति होनी चाहिए, वही पूतनाकी हुई। तो यह जो ब्रह्म-निष्ठा है, ब्राह्मी-स्थिति है-वह कोई साधारण मानस भावना नहीं है। वह कोई बौद्ध-चमत्कार नहीं है। वह केवल प्राणोंके स्पन्दनका निरोध नहीं है अथवा जड़ शरीरके साथ लीन हो जाना नहीं है। हठयोगके द्वारा जड़तामें लीन होना नहीं है। प्राण-स्पन्द निरोधके द्वारा निष्क्रिय होना नहीं है। मानस भावना नहीं है। बौद्ध-प्रत्यय नहीं हैं। यह तो अखण्ड तत्त्वका एक अनुभव है कि आत्माके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

तो नारायण, ब्रह्माजीने कहा कि वेदमें लिखा है कि नारायणसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई-**नारायणात् ब्रह्मा अजायत, नारायणात् रुद्र अजायत,** नारायणसे ब्रह्मा पैदा हुए, नारायणसे रुद्र पैदा हुए।

नारायणात् सर्वं अजायत्-नारायणसे ही सब उत्पन्न हुआ। जगत्के मूलमें नारायण हैं।

जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे
नारायणस्योदरनाभिनालात् ।
विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ् न वै मृषा
किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि।।

(10.14.13)

'श्रुतियाँ कहती हैं कि जिस समय तीनों लोक प्रलयकालीन जलमें लीन थे, उस समय उस जलमें स्थित श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्म हुआ। उनका यह कहना किसी प्रकार असत्य नहीं हो सकता। तब आप ही बतलाइये, प्रभो! क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ?'

अच्छा, जने-जनेको बाप कहना कोई उचित नहीं है। श्रीकृष्णने कहा कि भला तुम हमें क्यों अपना बाप बता रहे हो? तुम्हारे बाप तो नारायण हैं! देखो बात बड़ी मामूली है, सब लोग जानते हैं, तस्वीर भी देखते हैं कि नारायण लेटे हुए हैं और उनकी नाभिसे कमल और कमल पर ब्रह्मा पैदा हुए। परन्तु, अब जरा इस ढंगसे देखो कि ये जो चौदह भुवन हैं ब्रह्माण्डके, वे कमलके चौदह पत्ते हैं और इनमें जितने प्राणी हैं, उनको ब्रह्माजीने कमलकी कर्णिका पर बैठकर बनाया और वह जो लोक-पद्म है चौदह भुवनवाला, वह नारायणकी नाभिमें कभी डूब जाता है और कभी उतरा जाता है। 'नभ एव नाभिः'-आकाशका नाम नाभि है। अच्छा, वह नाभि जिस पेटमें है, वह पेट कितना बड़ा होगा- आप बताओ! कभी ध्यान करो तब पता चलेगा! अच्छा, उस पेटवाला जो आदमी लेटा हुआ होगा, वह कितना बड़ा होगा! और, वह जिस शेष-सज्जा पर सोता होगा, वह कितनी बड़ी होगी। और वह शेष-सज्जा क्षीर-सागरमें कैसी मालूम पड़ती है-जैसे दूधके समुद्रमें एक बूँद रखा हुआ हो और वह क्षीरसागर चिदाकाशमें कैसा मालूम पड़ता

होगा-जरा यह विचार करो! हमको जिस दिन यह बात मालूम पड़ी, उस दिन मैंने अंदाज लगाया कि आखिर नारायण कितने बड़े होंगे! अब आपको खुशी हो कि न हो, जिस दिन हमको नारायणकी नाप-जोख मालूम हुई, उस दिन हमको बड़ी खुशी हुई कि आ-हा! आज नारायणको जान गया मैं। जाननेकी एक खुशी होती है। यह तो सामान्यरूपसे लोग कहानी सुनते हैं।

तो ब्रह्माजीने पूछा, क्यों भगवन्, क्यों स्वामी, क्यों मालिक, मैं तुमसे ही पैदा हुआ तुम्हारा बेटा नहीं हूँ? बोले कि तुम नारायणके बेटे हो, हमारे बेटे नहीं हो! ब्रह्माजी, काहेको बाप-बेटेका झूठा सम्बन्ध बनाते हो? अरे गलती की, चोरी की, बालक चुराये, बछड़े चुराये! तो अब बचनेके लिए बेटा बनने आते हो! मैं नारायण नहीं हूँ। अब यह बात कृष्णने बोलकर ब्रह्मासे नहीं कही। जब आदमीका मन बोलने लगता है तो दोनों ओरसे बोलता है। जो मन दोनों ओरसे बोलता है, वह बुद्धिमान् होता है और जो मन एक ही ओरसे बोलता है, वह बेअकल होता है। यह आप लोग अपनेको जरा कसना कि आप केवल अपनी ओरसे ही बोलते हो कि सामनेवालेकी ओरसे भी बोलते हो? सबसे बढ़िया वकील कौन? पहले ही जिसको मालूम पड़ जाये कि हमारे सामनेवाला वकील क्या-क्या पूछेगा, क्या-क्या कहेगा और उसका हम क्या-क्या जवाब देंगे! अगर वकीलको यह सोचनेकी फुर्सत नहीं मिलती और यह नहीं मालूम पड़ता कि सामनेवाला क्या कहेगा, तो वह वकील मुकदमा जीत नहीं सकता। वह तो हारता जायेगा। उत्तम वकील सामनेवालेकी ओरसे भी बहस कर लेता है और अपनी ओरसे भी बहस कर लेता है।

एक वकीलकी बात मैं आपको सुनाता हूँ। इलाहाबादके हाईकोर्टके बहुत बड़े वकील थे। वे किसी मुकद्दमेमें गये। उन्होंने बहस करना शुरु किया। उनको यह भूल गया कि मैं किस पक्षका वकील हूँ? अब अपने विपक्षकी ओरसे ही उन्होंने बहस करना शुरू कर दिया।

दो-तीन घंटे तक ऐसी बहस करते रहे कि विपक्षी जीत जाये। परन्तु जिस पक्षके असलमें वे वकील थे वे तो थर-थर काँपें, बड़े उदास। जजने पूछा कि आखिर तुम कहना क्या चाहते हो? अपने मुवक्किलको हराना चाहते हो? तो उन्होंने कहा कि साहब यह जो हम बहसकर रहे हैं, वह तो यह कर रहे हैं कि हमारा विपक्षी भी यह-यह बात कह सकता है। और, अपनी सब बात काट कर रख दी।

तो देखो, अपनी आँख बन्द करके बैठ जाओ और अपने मनमें भगवान्‌से कुछ बात कहो। तब देखो कि वे उसका क्या जवाब देते हैं। वे एक जवाब दें तो तुम उनसे दूसरी बात कहो। कहीं लड़ाई मत कर बैठना भगवान्‌से! गुस्ताखी करोगे तो फिर भगवान् तुमसे बात नहीं करेंगे। जरा भगवान्‌से बात करना हो तो थोड़ा विनयसे बात करना। तो तुम हाथ जोड़कर प्रार्थना करो, अपनी बात कहो, भगवान् तुमको जवाब देंगे। गीता-प्रेससे पहले एक पुस्तक छपी थी-'ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप'। तो जैसे आप मन-ही-मन अपनी पत्नीसे बात कर लेते हो कि आज जब जाऊँगा तो वह ऐसे-ऐसे नाराज होगी और यूं-यूं बोलकर उसको खुश कर लूँगा। या जैसे पत्नी सोच लेती है कि आज हमारे पति जब घरमें आवेंगे तो नाराज होंगे; तो पहलेसे ही बात बनाकर रखती है कि मैं यह कहूँगी, यह कहूँगी। वे यह कहेंगे तो मैं यह कहूँगी। ऐसे ही भगवान्‌के साथ थोड़ा वाद-विवाद, सम्वाद पहलेसे ही सोच लेना चाहिए कि क्या-क्या करेंगे। देखो; इसमें आनन्द आवेगा। यह उपासनाकी रीति है। मैं कोई कल्पना करके आपको नहीं बता रहा हूँ। आप एक बार, दो बार, तीन बार ज्ञानेश्वरी पढ़ लीजिये और उसके बाद ध्यान कीजिये कि ज्ञानेश्वर भगवान् बैठे हैं और आप उनसे यह प्रश्न करते हैं। आपको ज्ञानेश्वरका उत्तर फुरेगा कि उन्होंने हमारे प्रश्नका यह उत्तर दिया है। उसके बाद जो आपको शंका हो, फिर पूछिये। वे फिर उत्तर देंगे। ऐसे ही शंकराचार्यसे आप बात कर लो! उपनिषद्‌से बात कर लो। तुलसीदासजीसे बात कर लो! जरा कभी शान्तिसे बैठकर देखो तो!

तो बात यह हुई कि श्रीकृष्ण तो बोलते नहीं हैं, वे तो चुप और ब्रह्माजीकी चार-चार मशीन सिरमें काम कर रहीं-ब्रह्माजीके चार दिमाग हैं। एक दिमागसे वे अपनी ओरसे बोलने लगे और दूसरे दिमागसे भगवानन्की ओरसे बोलने लगे। अब संगति लगा लो!

नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशाखिललोकसाक्षी।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायना-
त्तच्चापि सत्यं न तवैव माया।।

(10.14.14)

'प्रभो! आप समस्त जीवोंके आत्मा हैं। इसलिए आप नारायण! (नार-जीव और अयन-आश्रय) हैं। आप समस्त जगत्के जीवोंके अधीश्वर हैं, इसलिये आप नारायण (नार-जीव और अयन-प्रवर्तक हैं)। आप समस्त लोकोंके साक्षी हैं, इसलिए भी नारायण (नार-जीव और अयन-जाननेवाला) हैं। नरसे उत्पन्न होनेवाले जलमें निवास करनेके कारण जिन्हें नारायण (नार-जल और अयन-निवासस्थान) कहा जाता है, वे भी आपके एक अंश ही हैं। वह अंशरूपसे दीखना भी सत्य नहीं हैं, आपकी माया ही है।'

ब्रह्माजीने कहा कि तुम पिता और मैं पुत्र! भगवान् बोले कि तुम्हारे पिता तो नारायण हैं, मैं नहीं। अच्छा, तो आप नारायण नहीं हैं? 'भला हम कैसे नारायण हो सकते हैं?'

नारायणसर्वदेहिनामात्मासीत्

'नारायणत्वं नहि'-इसको 'काकु' बोलते हैं-'क्या आप नारायण नहीं हैं'? अर्थात् आप अवश्य नारायण हैं। बोले, क्यों? ब्रह्माजी बोले कि 'सर्वदेहिनाम् आत्मानं'-संसारमें जितने देहधारी हैं, उनके आत्मा आप ही हैं।

अब यहाँ सीखनेकी बात क्या है? ब्रह्माजी कहते हैं कि असलमें नारायण कौन है? नारायण वह है, जो सबका आत्मा है।

'नराणां समूहो नारं, जीव समूहो अयनं आश्रयोयस्य स नारायण'। नारायण कहाँ रहते हैं? जो जीवोंके हृदयमें रहते हैं, सब जीवोंके आत्मा हैं, उनका नाम नारायण! नरके समूहका नाम है नार और जो नारका है अयन, माने निवासस्थान, आश्रय जिनका-सो नारायण हैं। कृष्ण, घट-घटमें तुम ही व्यापक हो। दिल-दिलमें तो तुम्हीं दिलदार हो। सबकी प्रियताकी वृत्तिमें तुम ही प्रेमास्पद हो। सबके मैं-मैं-मैंमें तुम्हीं फुदक रहे हो। जब तुम नारायण नहीं तो और कौन नारायण? नारायणका यह एक रूप बताया-सबके दिलमें नारायण, सबकी आत्मा नारायण। जो सब घड़ेमें अवकाश, सो आकाश और जो सब दिलमें आत्मा, सो नारायण! अब वह शरीर-शरीरमें अलग नहीं होता। नारायण .एक-एक शरीरमें अलग-अलग नहीं होते। सब शरीरमें एक ही होते हैं। जैसे सब बूँदमें जल एक होता है, जैसे सब घटोंमें आकाश एक होता है।

क्या तुम नारायण नहीं हो?

'हे अधीश त्वं नारायणो नहि'। पुनः काकु। हे सारे जगत्के स्वामी, क्या तुम नारायण नहीं हो? दूसरा अर्थ यह है, **नारस्यायनं प्रवृत्तिर्यस्मात्**-अय गतो धातु है। पहले 'अयन'का अर्थ आश्रय किया, रहनेका स्थान किया। दूसरे 'अयनं'का अर्थ प्रवृत्ति किया तो ब्रह्माजी बोले कि हे अधीश, तुम सबके प्रवर्तक हो। नारायण कौन है? जो सबका संचालन करता है। कभी-कभी चेले लोग भी गुरुओंको सिखा देते हैं-यह बात हम जानते हैं। सबक देते हैं। कभी-कभी बातचीत करते-करते, प्रश्न करते-करते ऐसी समस्या उत्पन्न कर देते हैं कि उससे कुछ सीखनेको मिल जाता है, उससे कुछ विचार करनेको मिल जाता है। वे अपने मननके द्वारा कोई ऐसी बात बोल देते हैं जो बिलकुल नयी मिल जाती है और नया सूत्र उससे पैदा हो जाता है।

ब्रह्माजीने कृष्णसे कहा कि तुम नारायण हो। पहली बात तो यह

कही कि तुम आत्मा हो। दूसरी बात कही कि तुम प्रवर्तक हो, संसारके संचालक हो। हमारे भगवान् जो हैं, वे मोटरके मालिक नहीं है। मोटरके ड्राइवर हैं। देखो न, मजदूर संघटनके लिए यह कितनी बढ़िया बात है कि हमारे भगवान्ने कहा कि हम रथी नहीं हैं, हम सारथी हैं। अपनेको मालिकोंमें नहीं रखा, मजदूरोंमें रखा। घोड़ोंको खरारा करते थे। आप लोग जानते हैं-घोड़ोंके पेट पर, पीठपर खुजली करनेके लिए एक लोहेका ब्रश जैसा बना होता है। घोड़ोंकी मरहम पट्टी करते है। उनके पाँव दोनों हाथोंसे पकड़कर दबाते हैं। आप लोगोंने कभी घोड़ोंका पालन-पोषण देखा है। यह भगवान्को आता है। सारथि हैं, सबके संचालक हैं।

तो देखो, यह ब्रह्माने सिखाया! ऐसी स्तुति की कि तुम जगत्के प्रवर्तक हो। तो कृष्णने कहा कि अच्छा, मैं जगतका प्रवर्तक हूँ! तो अर्जुनसे बोले कि ऐ अर्जुन, तुम हमको पहचानते हो कि नहीं? 'नहीं महाराज, मैं क्या पहचानूँ?' अरे ब्रह्मा हमसे कह गये हैं कि जगत्के प्रवर्तक हो-

यतः प्रवृतिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता 18.46)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामिच।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।।

(गीता 9.18.19)

जगत् प्रवर्तक हैं, '**आत्माऽस्यधीशाऽखिल लोक साक्षी**'। हे अधीश, प्रवर्तकत्वेन नारायणे त्वं। पहले कहा कि आत्मत्वेन नारायणत्वं-सबके अखण्ड आत्मा ब्रह्म तुम हो, इसलिए तुम नारायण हो। ब्रह्मत्वेन नारायण हो। दूसरे बात कही कि ईश्वरत्वेन तुम नारायण

हो। अब तीसरी बात कहते हैं, अखिल लोक साक्षित्वेन, तुम नारायण हो।

नारमयसे जानाति इति नारायणः।

'अखिललोकसाक्षी-अखिल लोक साक्षात् पश्यसि इति अखिल लोकसाक्षी अतो नारं अयसे जानाति त्वमेव नारायणः' सम्पूर्ण विश्वको तुम देख रहे हो, द्रष्टा हो-यह तीन नम्बरकी बात हुई।

अखण्ड ब्रह्मरूप होनेसे तुम नारायण हो, अखिल लोक प्रवर्तक ईश्वर होनेसे तुम नारायण हो और अखिल लोक साक्षी द्रष्टा होनेसे तुम नारायण हो। अब जरा चौथे नम्बरकी बात भी कर लें। चौथे नम्बरकी बात पौराणिक है। वही नारायणकी नाभि-कमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति। मनुस्मृतिमें इसकी ऐसी व्याख्या की गयी है-

आपो नारा इति प्रोक्ता, आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।।

नारायणको नारायण क्यों कहते हैं? जलको संस्कृत भाषामें 'नार' कहते हैं। जलके बहुत सारे नाम हैं, उनमें एक है 'नारा'। तो गाँवमें जहाँ कुएँसे पानी खींचकर लोग लाते हैं, उसको भी 'नारा' बोलते हैं। वह बहता होए तो 'नाला' बोलते हैं और कुएँ पर हो तो 'नारा' बोलते हैं। 'रलयो अभेदः'-'र' और 'ल'में अभेद है। नालामें भी जल है और नारामें भी जल है।

देखो, शब्दोंकी एक बात आपको सुनावें। शरीरमें एक नाड़ी होती है, वह अगर चले नहीं तो आदमी मर जायेगा। और, परिवारमें एक नारी होती है, वह न हो तो परिवार नहीं चलेगा। यह तो तारीफकी बात हुई। एक तीसरी बात है, मकानमें नालीकी जरूरत है। तो 'ड़' 'र' और 'ल'- तो शरीरमें नाड़ी, परिवारमें नारी और मकानमें नाली-ये तीनों बिलकुल शुद्ध होनी चाहिए। अगर घरकी नाली शुद्ध न हो गन्दगी अटक जावेगी तो दुर्गन्ध आवेगी कि नहीं? बिलकुल नाली स्वच्छ होनी चाहिए। और परिवारकी नारी स्वच्छ होनी चाहिए। नहीं तो संतान-परम्पराका, वंश-

तन्तुका उच्छेद हो जाता है। जैसे घरमें दूसरेसे बच्चा आजाय अगर तो अपनी पीढ़ी-दर-पीढ़ीका नाश हो गया। तो पितरोंको पिण्ड भी नहीं मिलेगा। पिताजीको श्राद्ध भी नहीं मिलेगा। तो नाली भी शुद्ध, स्वच्छ चाहिए और नारी भी शुद्ध, पवित्र चाहिए और नाड़ी भी स्वच्छ चाहिए, उसमें अगर कुछ अवरोध आगया तो काम समाप्त।

तो यह बताया कि ये नारायण केवल नारायण ही नहीं हैं, ये नाड़ायण भी हैं। 'अन्तर्नाड़ी निविष्टः'-हमारी नाड़ियोंके भीतर घुसे हुए हैं भगवान्!

अच्छा, नारायणको समझनेके लिए एक बात आपको सुनाता हूँ! सारी बात यदि लौकिक-दृष्टिसे समझमें नहीं आवे तो अलौकिक दृष्टिसे तो समझमें आवेगी नहीं। यह जीवकी भी एक दशा नारायण होती है। 'नार' माने पानी, पानीमें रहता है। पानीमें तो मछली रहती है? नहीं बबुआ, तुम भी एक दिन पानीमें ही थे। यह जीव नारायण था-कब? जब यह पिताके वीर्यमें था। माताके पेटमें आने पर भी यह एक पानीकी बूँदमें चैतन्य था। जैसे जीव चैतन्य शरीर धारणके पूर्व बीज-जलमें कारण-वारिमें निवास करता है, इसीप्रकार इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके पूर्व हैं, देखो, जैसे चिड़याके अंडेमें जो पानी है उसमें चिड़ियाका चैतन्य है कि नहीं है? चिड़िया जीव अण्डेमें रहता है तो कहाँ रहता है? नारायण रहता है, पानीमें रहता है। तो इसी प्रकार निखिल ब्रह्माण्ड अपनी उत्पत्तिके पूर्व जो बीज-वारिमें जो चैतन्य रहता है, उसको नारायण कहते हैं। **आपो नारा इति प्रोक्ता।** हमको यह समझनेमें तपस्या करनी पड़ी थी। चिन्तन करना पड़ा, मनन करना पड़ा। वेद कहता है कि सृष्टिकी उत्पत्तिसे पूर्वमें सब जल-ही-जल था-उसी जलमें जो चैतन्य था, उसका नाम 'नारायण' है। वीर्यकी बूँदमें जलमें जो चैतन्य, उसका नाम 'नारायण'। पर, नर और नारायण दो नहीं है-**तत्त्वमेकं द्विधा स्थितं।** जो बूँद बिन्दुमें हैं सो सिन्धुमें है, जो सिन्धुमें है वह बिन्दुमें है।

बिन्दु में सिन्धु समान,
यह सुनि अचरज मति करो।
हेरनहार हेरान,
रहिमन आपुहि आप में।।

तो यहाँ जो बात कही गयी, वह पकड़नेकी है। ब्रह्माजी कह रहे हैं, 'हे श्रीकृष्ण, यदि तुम यह कहो कि मैं नारायण नहीं हूँ, तो मैं कहता हूँ कि नारायण तो तुम्हारे एक अंग हैं। माने नारायण अवतार हैं और तुम अवतारी हो। अवतारी और अवतारके भेदसे नारायण तुम्हारे बच्चे हैं। तो बाबा, बेटा न सही, पोता ही सही मैं!

देखो, रामानुज-सम्प्रदायके लोग इस बातको नहीं मानते! एक बार बाबाके आश्रममें कथा हो रही थी। मैं यह सुना रहा था और मैंने तो श्रीधरस्वामीका जैसा अर्थ है, वैसा सहज स्वभावसे सुनाया था। हे भगवान्, हमारे मनमें भगवान्के किसी रूपके प्रति या किसी सम्प्रदायके प्रति किंचित् भी भेद नहीं है। तो कथामें रामानुजाचार्य बैठे थे। अब उनको बड़ा बुरा लग गया। उन्होंने दूसरे दिन उसका खण्डन किया। तीसरे दिन मैंने हाथ जोड़कर निवेदन कर दिया कि हमने अपनी ओरसे एक शब्द नहीं कहा है। श्रीधरस्वामीकी टीकामें जैसा लिखा है वही सुनाया है। तो श्रीहरिबाबाजी महाराजने अपने सेवकको आज्ञा दे दी कि उन महात्माको यहाँ एक महीना कथा कहते हो गया है, अब इनकी विदाई कर दो।

नारायण, रामानुज सम्प्रदायके लोग भी इसकी संगति अपने ढंगसे लगाते हैं-वह अलग बात है। पर उन्होंने भी वल्लभाचार्यजी महाराजकी तरह इन तीन अध्यायोंको प्रक्षिप्त ही माना है, यह भीतरकी बात है।

अब यहाँ यह प्रश्न हुआ कि क्या मैं वह नारायण हूँ, जो जलमें डूबा रहता है? क्या सबीज-चैतन्य मैं हूँ! तो ब्रह्माजी बोले कि न महाराज, गलती हुई। आप बीज संस्कारसे युक्त, बीज संस्कारसे लथपथ चैतन्य नहीं हैं। कौन हैं आप?

तच्चापि सत्यं न तवैव माया।

आपका यह रूप सत्य नहीं है। वह तो आपकी एक माया है, जो जलमें वैसा रूप दिखाते हैं। जल आपका आश्रय हो और आप जलके आश्रित हों-ऐसा तो हो ही नहीं सकता! आप सर्वाधिष्ठान हैं, आपके आश्रित तो जल है। जल आपके पसीनेकी बूँद भले हो, परन्तु जलमें बैठने वाले आप नहीं है। आपका आधार जल नहीं है, जलके आधार आप हैं। इसलिए वहाँ जो आधार-आधेयभाव मालूम पड़ता है कि जलमें भगवान् बैठे हुए हैं, अण्डेके पानीमें चैतन्य है, पुरुषके वीर्यमें चैतन्य है-ऐसा जो ज्ञात होता है, वह तो आभास रूप है, वास्तविक नहीं है। सत्य नहीं है वह तो आपकी माया है-**तच्चापि सत्यं न तवैव माया।**

तच्चेजलस्थं तव सज्जगद्वपुः
किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव।
किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव
किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि।।

(10.14.15)

'हे भगवन्! यदि आपका वह विराट् स्वरूप सचमुच उस समय जलमें ही था तो मैंने उसी समय उसे क्यों नहीं देखा, जबकि मैं कलमनालके मार्गसे उसे सौ वर्ष तक जलमें ढूँढता रहा? फिर मैंने जब तपस्या की, तब उसी समय मेरे हृदयमें उसका दर्शन कैसे हो गया? और फिर कुछ ही क्षणोंमें वह पुनः क्यों नहीं दिखा, अन्तर्धान क्यों होगया?'

देखो, जैसे एक नैयायिक, एक तार्किक तर्क करता है, वैसे ब्रह्माजी बोल रहे हैं। अच्छा, पानीमें रहनेवाला आपका शरीर यदि सत्य है तो मैंने पानीको ऊपरसे नीचे तक खोज डाला, वहाँ आप क्यों नहीं मिले? और, जब आँख बन्द करके देखा तो हमारे हृदयमें तुरन्त मिल गये और फिर हमारे हृदयमें-से भी अन्तर्धान हो गये। असलमें यह रूप

दिखाना और न-दिखाना-यह आपकी माया है, यह आभास रूप है। आपका जो स्वयंप्रकाश रूप है, वह तो बड़ा विलक्षण है। अजी, यह सारी सृष्टि ही आपकी माया है। इस प्रकार ब्रह्माजी धीरे-धीरे अन्तमें कहाँ पहुँचे, आपको मालूम है? आगे बढ़ते जा रहे हैं। जैसे सूर्यमें दिन-रातका भेद नहीं होता है, सूर्यने दिन-रातका भेद देखा ही नहीं है, वैसे ही आत्माके स्वरूपमें बन्धन और मोक्षका भेद, ज्ञान और अज्ञानका भेद होता ही नहीं।

अज्ञानसंज्ञौ भवबंध मोक्षौ,
द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।
अजस्त्रचित्यात्मनि केवले परे,
विचार्यमाणे तरणाविवाहनी।।

देखो, ब्रह्माजीने सामने भगवान्‌को हाथमें भातका ग्रास लिए देख उनके सगुण रूपकी चमत्कृतिके वर्णनसे स्तुति शुरू की और अद्वितीय ब्रह्मका वर्णन करते हुए दृश्यमान प्रपंचको बिलकुल माया कह दिया-यह इस स्तोत्रकी विशेषता है।

अत्रैव मायाधमनावतारे
ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या
मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते।।

(10.14.16)

'मायाका नाश करनेवाले प्रभो! दूरकी बात कौन करे-अभी इसी अवतारमें आपने इस बाहर दीखनेवाले जगत्‌को अपने पेटमें ही दिखला दिया, जिसे देखकर माता यशोदा चकित हो गयी थीं। इससे यही तो सिद्ध होता है कि यह सम्पूर्ण विश्व केवल आपकी माया-ही-माया है।'

भगवान्‌की अपरिच्छिन्नताका ब्रह्माजी स्वयं वर्णन करने लगे।

भगवन्, इसी कृष्णावतारमें यह प्रपंच-पृथिवी, जल, वायु, अग्नि,

आकाशादि-प्रपंच जो बाहर स्पष्ट दिखायी दे रहा है-इस सारे प्रपंचको अपने उदरमें माँ यशोदाको दिखाकर आपने यह सिद्धकर दिया कि यह जो बाहर विराट-जगत् दृष्टिगोचर हो रहा है, यह भगवान्‌की मायाका विलास है। असली जहाँसे प्रकट हुआ है, वह तो भगवान्‌के भीतर है, उदरमें हैं। सब कुछ मायाके द्वारा भगवान्‌से बाहर प्रकट हुआ है। ब्रह्माजी कहते हैं कि इस प्रकारसे आपने जो मृद-भक्षणके प्रसंगमें दिखाया, इससे आपने यह सिद्ध कर दिया कि बाहरी सारा जगत् मायाका विलास है।

नारायण, कहना यह है कि भगवान्‌से पृथक् कुछ भी बाह्य-प्रपंच होता तो भगवान्‌में वस्तुपरिच्छेद आजायेगा, फिर काल-परिच्छेद भी आजायेगा। किन्तु बाहरी प्रपंच तो मायाका विलास है। मायासे विलसित प्रपंचको लेकर भगवान्‌में किसी प्रकारकी भी परिच्छिन्नता नहीं आवेगी। यहाँ 'मायाधमन' संबोधन है, माने जो मायाका नाश करनेवाले हैं। जब वस्तु सत्य नहीं है तो उससे भगवान्‌में परिच्छिन्नता कैसे आ जायेगी?-यह बात ब्रह्माजी कहते हैं-आपने ही दिखा दी है।

ब्रह्माजी यह बात तीन श्लोकोंसे सिद्ध करने जा रहे हैं, जिसमें-से यह प्रथम श्लोक चल रहा है। जिसमें कहा गया कि इसी जन्ममें आपने जो अपनी माताको अपने समस्त जगत् दिखा दिया, सो स्पष्ट है कि यह मायाका विलास है, सत्य नहीं है। सत्य होता तो परिणामी क्यों होता है? बड़ी उत्तम बात है, समझनेकी है। फिर कहते हैं-

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा।
तत्त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया विना।।

(10.14.17)

जब आपके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जैसा बाहर दीखता है वैसा ही आपके उदरमें भी दीखा, तब क्या यह सब आपकी मायाके बिना ही आपमें प्रतीत हुआ? अवश्य ही आपकी लीला है।'

देखो, और भी उत्तम बात कह रहे हैं। कहते हैं कि क्या पता, बाहर संसार भी सत्य हो और भगवान्‌के मुखमें जो यशोदा मैय्याको दिखायी पड़ा, वह और तरहका संसार हो! जादूगर लोग न जाने क्या-क्या दिखाया करते हैं? ब्रह्माजी कहते हैं,

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा।

हे भगवन्! जिन आपके 'कुक्षि' माने उदरमें 'इदं' सर्वं प्रपञ्च जातं सात्मं'-'सात्मं'को समझना है। देखिये, माँ यशोदाने भगवान्‌के मुखारविन्दमें क्या-क्या देखा? सारा संसार तो देखा ही-पहाड़, नदी, जंगल, पृथिवी, आकाश, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा-यह सब देखा। और, यह सब देखनेके साथ-साथमें अपनेको भी देखा और यह भी देखा कि भगवान् अपना मुख खोलकर दिखा रहे हैं। सो 'सात्मं'का मतलब कि भगवान्‌ने अपनेको भी दिखा दिया-यह बात ग्रहण करनेकी समझनेकी है। इससे वे क्या कहना चाहते हैं, आगे आ रहा है। 'सर्वं सात्मं भाति'-सारा प्रपञ्च और उसके सहित आपको भी आपके मुखमें माता देख रही हैं। ब्रह्माजी कहते हैं दोनों अलग-अलग हों, सो नहीं। 'यथा तथा'-जैसा यह बाह्य संसार है, वैसा ही दिख रहा है और आप भी अपने मुखमें दिख रहे हैं। यशोदा माता भी अपनेको देख रही हैं। तो जो कुछ बाहर है, वह आपके भीतर भी है-यह बात मायाके बिना बन कैसे सकती है?

देखिये, यहाँ बिम्ब, प्रतिबिम्बवादका खण्डन करके यह उक्ति दी गयी है। कोई यह कह सकता है कि बाहरका जो संसार है, वह असली है। भगवान्‌का मुख हो गया दर्पण-उसमें सब दिख रहा है। दर्पणमें सब दिखता है कि नहीं दिखता? इसलिए, भगवान्‌के मुखमें दिखनेवाला संसार वही है, जो बाहर है। बाहर वाला संसार सच्चा और मुखमें दीखनेवाला तो प्रतिबिम्ब है और प्रतिबिम्ब तो मिथ्या होता है। तो उलटी बात हो गयी न! तब कहते हैं कि देखो, बिम्ब-प्रतिबिम्बके सम्बन्धमें एक बात है। हम लोग दर्पणमें अपनेको देखते हैं। किन्तु

दर्पणमें दर्पण नहीं दिखायी देता! यहाँ क्या है? यहाँ भगवान्‌का मुखारविन्द यदि दर्पण है तो उसमें केवल संसार दिखना चाहिए, भगवान्‌का स्वरूप नहीं दीखना चाहिए पर; यहाँ तो भगवान्‌का स्वरूप भी दिख रहा है। माने दर्पण भी दिख रहा है। इसका मतलब? यहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्बवादकी सम्भावना नहीं है। यह भगवान् की मायाका खेल है। बाह्य जितना जाग्रत् है, उसका वास्तविक स्वरूप तो भगवान्‌में ही है। वही भगवद् स्वरूप मायाके द्वारा बाहर विलसित हो रहा है। माने बाहरका सच्चा है ही नहीं, पर्यवसान यहाँ है।

अच्छा, एक बात और है। बिम्ब-प्रतिबिम्बमें एक नियम है। जैसे हम पूर्वकी ओर मुँह करके दर्पण देख रहे हैं तो उसमें जो हमारा मुँह पश्चिमकी ओर दिखायी देगा माने उलटा दिखायी देगा। किन्तु, भगवान्‌के मुखमें ऐसा नहीं दिखा। वहाँ तो पूर्व-पूर्व दिखा, पश्चिम-पश्चिम दिखा, उत्तर-उत्तर दिखा। सब बिलकुल ठीक। इसलिए भी बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव नहीं है।

ब्रह्माजी एक दृष्टान्त और दे रहे हैं-बल्कि प्रमाण दे रहे हैं। वेद प्रमाण दिया, प्रसिद्धि प्रमाण दी, माँको जो दर्शन कराया, उसको प्रमाण दिया। अब कहते हैं कि मैंने अपनी आँखोंसे देखा है। आँखोंसे देखेको कोई झुठला देगा क्या?

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित-
मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद् वत्साः समस्ता अपि।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिता-
स्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते।।

(10.14.18)

'उस दिनकी बात जाने दीजिये, आजकी ही लीजिये। क्या आज आपने मेरे सामने अपने अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्वको अपनी मायाका खेल नहीं दिखाया है? पहले आप अकेले थे। फिर सम्पूर्ण ग्वालबाल, बछड़े और छड़ी-छींके भी आप ही हो गये। उसके बाद मैंने देखा कि

आपके वे सब रूप चतुर्भुज हैं और मेरे सहित सब-के-सब तत्त्व उनकी सेवा कर रहे हैं। आपने अलग-अलग उतने ही ब्रह्माण्डोंका रूप भी धारण कर लिया था, परन्तु अब आप केवल-केवल अपरिमित अद्वितीय ब्रह्मरूपसे ही शेष रह गये हैं।

देखिये, ब्रह्माजीको भगवान्‌ने जो लीला दर्शन करायी है, ब्रह्माजी स्वयं उसके रहस्यका उद्‌घाटन कर रहे हैं। श्रीभगवान्‌ने ब्रह्माजीको जो-जो दिखाया-पहले अकेले थे, फिर बछड़े बन गये, ग्वाल-बाल बन गये। फिर वे सब चतुर्भुजाकार बन गये-उसीको कह रहे हैं। हे भगवन् बहुत दूरकी बात छोड़िये। आज ही आप बताइये, 'त्वदृतेऽस्य'-आपके बिना आपने यह जो मायाका खेल दिखाया है 'किं' मम न तो मायात्वमादर्शितम्'-जो कुछ भी आपने दिखाया है, वह क्या आपने अपनी मायाको प्रकट नहीं किया है? कैसे? स्वयं ब्रह्माजी स्पष्ट करते हैं-

पहले तो आप बिलकुल अकेले। फिर आप ही सारे व्रजके सुहृद ग्वाल-बाल हो गये। बछड़े बन गये। आप ही तो बन गये। अब जितने बने, वे सब भी चारभुजा वाले प्रकट होगये और सारी विश्व-सृष्टि, सारे तत्त्व उनकी उपासना करने लगे। और, मैं भी उसमें सम्मिलित था। यह आपने दिखाया कि नहीं दिखाया? जितने वे स्वरूप थे, उतने ही संसार आगये और उपासनाके लिए उतने ही ब्रह्मा आगये। और, अन्तमें अद्वय रूपसे आप ही शेष रह गये। इसलिए, यह सारा विस्तार आपने अपनी मायाको प्रक़ट करके ही दिखाया है न मुझे!!

फिर कहते हैं,

अजानतां त्वत्पदवीमनात्म-
न्यात्माऽऽत्मनाभासि वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाहं जगतो विधान
इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः।।

(10.14.19)

'जो लोग अज्ञानवश आपके स्वरूपको नहीं जानते, उन्हींको आप प्रकृतिमें स्थित जीवके रूपमें प्रतीत होते हैं और उनपर अपनी मायाका परदा डालकर सृष्टिके समय मेरे (ब्रह्मा) रूपसे, पालनके समय अपने (विष्णु) रूपसे और संहारके समय रुद्रके रूपमें प्रतीत होते हैं।'

देखो, वेदान्तकी दृष्टि यह है कि सर्वाधिष्ठान शुद्ध-चैतन्य ही है। उसके बाद जो कुछ अन्य दिखायी पड़ेगा, वह मायाका विलास है। ब्रह्माजी कहते हैं कि जो लोग भगवान्‌की महिमाको, भगवान्‌के तत्त्व स्वरूपको नहीं जानते, उनको आप अनात्मामें ही आत्मा-रूपसे भासमान हो रहे हो। जो आत्मा है नहीं, माने जो भगवान्‌का स्वरूप है नहीं। किन्तु अनजान लोगोंको आप अनात्मामें ही आत्मारूपसे भासमान हो रहे हो। क्यों भासमान हो रहे हो? मायाका विस्तार करके आप लीला कर रहे हो! लोग उसीको आपका स्वरूप समझ रहे हैं। सृष्टि जब करनी होती है, तब ब्रह्माके रूपमें आप भासमान होते हो और 'जगतो विधानैव'-संसारका पालन करनेके लिए आप ही विष्णुके रूपमें भासमान होते हो। और, विश्वका प्रलय करनेके लिए त्रिनेत्र भगवान् रुद्रकी तरह भासमान होते हो। वास्तवमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र-यह भेद है ही नहीं। यह तो भगवान् मायाके द्वारा उत्पत्ति, स्थिति, संहारकी लीला प्रकट करनेके लिए भिन्न-भिन्न रूपोंसे भासमान होते हैं। अज्ञानी लोग भगवान्‌को उसी रूपवाला माने बैठे रहते हैं। वस्तुतः यह बात नहीं है। आप अद्वितीय हैं, आपमें नानात्व है ही नहीं। मायासे गुणोंके तारतम्यसे जैसे भगवान् मत्स्य, कच्छप, नृसिंह आदि रूपोंमें कार्यवशात् प्रकट हो जाते हैं, वह भगवान्‌का स्वतन्त्र मायाका प्रयोग होता है। माने वह तुच्छ नहीं है। भगवान् यद्यपि मायाके द्वारा ही अपनेको प्रकट करते हैं, किन्तु उसको संसारकी कोटि जैसा तुच्छ नहीं समझना है।

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च।।
(10.14.20)

'प्रभो! आप सारे जगत्के स्वामी और विधाता हैं। अजन्मा होने पर भी आप देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु-पक्षी और जलचर आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करते हैं-इसलिए कि इन रूपोंके द्वारा दुष्ट पुरुषोंका घमण्ड तोड़ दें और सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करें।'

फिर कहते हैं,

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ।।
(10.14.21)

'भगवन्! आप अनन्त परमात्मा और योगेश्वर हैं। जिस समय आप अपनी योगमायाका विस्तार करके लीला करने लगते हैं, उस समय त्रिलोकीमें ऐसा कौन है जो यह जान सके कि आपकी लीला कहाँ, किसलिये, कब और कितनी होती है।'

अब कोई यह प्रश्न करने लगे कि भगवान् तो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। अगर भगवान्को कोई अवतार ग्रहण करना है तो बढ़िया अवतार ले लेना चाहिए। अब मछली बन गये, कच्छप बन गये। वामन बन गये-ऐसा क्यों करते हैं? ब्रह्माजी कहते हैं कि इस बारेमें अपनी बुद्धि नहीं लगानी चाहिए। क्योंकि, चाहे कोई कितनी ही बुद्धि लगावे-इसका अन्त नहीं मिलेगा। क्यों?

को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्।

कई सम्बोधन भगवान्के लिए दे रहे हैं। क्यों? भगवान् इतने

विलक्षण हैं कि एक संबोधन पदसे उनका सारा स्वरूप प्रकट ही नहीं होगा। अनन्तशक्ति सम्पन्न हैं, इसलिए 'भूमा'-निर्विशेष, 'भगवन्' माने षड्ऐश्वर्य सम्पन्न, और 'परात्मन्' माने जीवमात्रके भीतर रहनेवाले भगवान् हैं। भगवान्के जितने सम्बोधन किये गये हैं भूमन्, भगवन्, परात्मन्, योगेश्वर-ये दुर्ज्ञेयत्व बतानेके लिए हैं। कोई व्यक्ति-सीमित शक्तिवाला होगा तो कोई एक नाम ले लो, चल जायगा। लेकिन भगवान् तो दुर्विज्ञेय हैं। इसलिए नाना नामोंसे भी पूरे समझमें नहीं आते। क्यों? भगवान्की योगमायाका वैभव अचिन्त्य है, इस तरहसे समाधान करना चाहिए।

●

: 10 :

ब्रह्माजी भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं। यमुनाजीके तटपर, वृन्दावनमें ब्रह्म-कुण्डके आसपास। वैसे वृन्दावनमें ब्रह्माजीका प्रवेश निषिद्ध है। आगये, इतना उनका सौभाग्य समझो! सामने खड़े मयूर-मुकुटी, मकराकृत, कुण्डली, वनमाली, कमल-नयन, मंदस्मित, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर बायें हाथें दही-भातका ग्रास लिये। देखकर मुँहमें पानी आजाये-इतना रस, इतना रस। एक बार अपने मनको वहाँ ले चलो। रूपमें मन गया, फिर कथामें मन गया, फिर गुणमें मन गया, फिर कृपालुतामें मन गया, फिर सम्बन्धमें मन गया। फिर ऐसा ख्याल हुआ कि अरे, मेरे रूपमें भी यही बने हुए हैं। देखो क्या दृष्टिकोण! फिर यह हुआ कि यह प्रपञ्च क्या है?

प्रपञ्च तो सब देखते हैं। आज एक सज्जन पूछ रहे थे कि गधेको ज्ञान हो सकता है कि नहीं? मैंने कहा कि अगर तुम्हारे स्वप्नमें कोई गधा दिखे और वह 'अहं ब्रह्मास्मि' बोल रहा हो तो कोई आश्चर्य है? कोई आश्चर्य नहीं है। अरे, तुम्हारा मन ही तो स्वप्नमें गधा बना है। जब तुम्हारे मनको 'अहं ब्रह्मास्मि' मालूम है, तो तुम्हारा मन ही जो स्वप्नमें गधा बना हुआ है, वह यदि 'अहं ब्रह्मास्मि' बोल दे तो क्या हर्ज है? बल्कि वहाँ गधा नहीं बोलता है, अपना मन बोलता है। यह विश्वमें कौन बोलता है? हमारी दृष्टि बोलती है। हमारी स्फुरणा बोलती है। ब्रह्मज्ञानी कौन है? जिसके बारेमें 'यह ब्रह्मज्ञानी है'-ऐसी मेरी स्फुरणा है। मैं स्वयं ब्रह्म और मेरी फुरना ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मज्ञानी तो कोई है ही नहीं। ब्रह्म-ही-ब्रह्म है। अद्वैतकी बात बड़ी विलक्षण है। स्वप्नका गधा भी द्रष्टाका ही स्वरूप है, पृथक नहीं है। अच्छा तो यह बात पोथीमें मत ढूँढना। यह तो

जब फक्कड़ोंका सत्संग करोगे, तब यह बात मालूम पड़ेगी। आओ आपको इदं जगत्‌के बारेमें बतायें।

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं
स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम्।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते
मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति।।

(10.14.22)

'इसलिए यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नके समान असत्य, अज्ञानरूप और दुःख-पर-दुःख देनेवाला है। आप परमानन्द, परम ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त हैं। यह मायासे उत्पन्न एवं विलीन होने पर भी आपमें आपकी सत्तासे सत्यके समान प्रतीत होता है।'

हे नारायण! आपसे सीधा एक प्रश्न है कि आपको दुःख होता है कि नहीं? पुरुदुःखदुःखम् इदं अशेषं जगत्। यह बदलती हुई दुनिया! ये धड़कते हुए दिल। यहाँ दुःख है कि नहीं है? यदि दुःख है तो उसकी दवा भी होनी चाहिए, उसकी चिकित्सा भी होनी चाहिए। अच्छा, आप एक बात सोचो-आजसे बीस वर्ष पहले एक दिन आपको बहुत दुःख हुआ था। आप याद करो। हम सब श्रोताओंसे एक साथ बोलते हैं-आजसे बीस वर्ष पहले आपको एक दिन बड़ा प्रबल, बड़ा प्रचण्ड दुःखका अनुभव हुआ था। आपके जीवनमें कभी हुआ है कि नहीं?

आप किसी ज्योतिषीको अपना हाथ या कुण्डली दिखाओ तो वह बता देगा। एक दिन तुम्हारे मित्रने तुमको धोखा दिया था भला! तुमको याद है? एक दिन तुम पानीमें डूबते-डूबते बच गये थे। है न! ज्योतिषकी बात सच्ची है कि नहीं? एक दिन तुम्हारे पतिने तुमसे झूठ बोला था श्रीमतियो! एक दिन तुम्हारी पत्नीने बहुत झूठ बोला था श्रीमानो! तुमको याद आती है कि नहीं? एक दिन तुम्हारे जेबमें-से पैसे गिर गये थे-यह बात देखो ज्योतिषमें-से निकलती है। और आपके

जीवनमें घटित हुई है। ज्योतिषी तो आपसे पैसा बनाकर ले जायेगा। परन्तु, मैं तो बिना पैसेके ही बता रहा हूँ। माने ये ऐसी सामान्य बातें हैं कि सबके जीवनमें हमेशा घटती रहती हैं। तुम जिससे प्रेम करते हो, वह तुमसे प्रेम नहीं करता। हमारी ज्योतिषकी बात सच्ची है कि नहीं? लोग तुमसे पैसा ले लेते हैं और फिर वापिस नहीं करते–यह हमारी बात सच्ची है कि नहीं है? ये ऐसी सामान्य बातें हैं जो सबके जीवनमें घटती रहती हैं और ज्योतिषी लोग इसी सामान्य ज्ञानसे लोगोंसे पैसा ले लेते हैं।

अच्छा! तो बीस वर्ष पहले एक दिन आप बहुत दुःखी हुए थे। आज उसकी याद आती है? हाँ, आँख बन्दकर अगर, सोचें तो धुँधली-धुँधली याद आवेगी। वह कैसी होगी? स्वप्न सरीखी होगी। आपको एक दिन आया हुआ स्वप्न, यदि आप उसको याद करें तो आपको जैसा लगेगा, उसी तरह इस जाग्रतके जीवनमें घटित घटना भी यदि आप याद करें तो बिलकुल वैसी ही लगेगी। तो आओ, एक बुद्धि लो। इसमें-से एक अकल निकालो। क्या अकल निकालो? जब बीस वर्ष बाद, बीस नहीं दस वर्ष बाद, दस नहीं पाँच ही वर्ष बाद, पाँच नहीं एक ही वर्ष बाद, एक नहीं छः महीने बाद, तीन महीने बाद, एक महीने बाद यह घटना जो आज बड़ी भयंकर और बड़ी प्रबल मालूम पड़ती है, वह जब एक महीनेमें ही सपना मालूम पड़ने लगेगी, तो बुद्धिका तकाजा यह है कि एक मिनट बाद ही उसको सपना समझ लो। उसी मिनटमें समझ लो, तब तो और बढ़िया। एक मिनट बाद न समझो तो कम-से-कम दूसरे मिनट समझ लो। इसका मतलब यह है कि दुःख निवारणकी बुद्धि यह है कि जिस मिनटमें जो दुःख होये, जैसे मिनट छूट गया, उसी तरह उस दुःखको छोड़ दो! आखिर मिनट पीछे गया कि नहीं गया? तो जब मिनट पीछे गया तो उस मिनटमें होनेवाला दुःख रह कैसे गया? वह भी सेकेण्डकी सूईके साथ क्यों नहीं चला गया? वह भी मिनटकी सूईके साथ क्यों नहीं चला गया? हम करते क्या हैं कि

मिनट तो चला जाता है, स्थान बदल जाता है, आदमी चला जाता है, आँखमें ओझल हो जाता है और हम बे-अकलीसे उस दुःखको पकड़कर रख लेते हैं। वह भी थोड़ी देर तक तुम पकड़ कर रखो, फिर छोड़कर चला जायेगा। वह भी नहीं रहेगा। लेकिन तुम उसको पकड़कर रखोगे और अपनेको तकलीफ दोगे, तकलीफ पाओगे। **पुरुदुःखदुःखम्।**

दुनियामें दुःख है। लेकिन बे-अकलीके कारण है। '**अस्तधिषणं**'-'धिषणं' माने बुद्धि। बुद्धि, मनीषा, धिषणा, धी, प्रज्ञा, शेमुषी मतिः इति अमरसिंहः-अमर सिंह बोलते हैं कि 'धिषणा' माने बुद्धि, धी। आप पकड़ कर रखते हैं।

एक सज्जन कहीं तालमें नहाने गये। तो वहाँसे एक-दो कमलके फूल तोड़े। हाथमें ले लिये। परन्तु, वहाँ जोंक रेंग रही थीं। उन सज्जनने कमल तो तोड़ा ही तालाबमें-से और जो वहाँ जोंक रेंग रही थीं, वे भी 4-5 उठाकर अपने पॉकेटमें रख लिया। अब जो संग्रह करने योग्य हो, उसीका तो संग्रह करना चाहिए। तो कमलमें-से तो सुगन्ध आयी, खुश हुए। अब वे जोंक धीरे-धीरे रेंगकर जेबमें-से निकलीं और भीतर जाकर जहाँ-तहाँ शरीरमें चिपक गयीं। आपको बतायें, हमारे शरीरमें जोंक लगी हुई है। हम पानीमें खड़े होकर धानकी खेती करवाते थे तो चिपक जाती थीं। जोंककी यह विशेषता है कि वे जिस समय शरीरमें छेदकर लेती है, उनके मुँह पर कुछ ऐसी चेंप होती है कि मालूम नहीं होता कि उन्होंने शरीरमें छेद कर लिया और जितनी देर वे खून पीती हैं पता ही नहीं चलता कि वे खून पी रही हैं। बादमें कोई दूसरा देखे या अपना ध्यान जाये या उनका शरीर जब खूनसे भर जाता है तो खुद छोड़ देती हैं और तब जहाँ छेद किये होती हैं, वहाँसे खून बहने लगता है।

तो जोंकने उन सज्जनका खून-चूसना शुरू किया। आपसे पूछते हैं कि उन्होंने जेबमें जो जोंक रख ली, वह अच्छा किया कि

बुरा किया? बिलकुल बुरा किया। बे-अकलीका काम किया। इसीप्रकार जो हुए दुःखको अपनी अकलमें बसाते हैं, वे अपनी जेबमें बिच्छू भरकर रखते हैं, अपनी जेबमें जोंक भरकर रखते हैं, अपनी जेबमें ततैया भरकर रखते हैं। यह कोई संग्रह करनेकी चीज है? मिनट गया, जगह गयी, आदमी गया, दिन गया, रात गयी और दुःख तुम्हारे पास बना हुआ है। इस दुःखमें इतना सामर्थ्य है कि वह तुम्हारे पास बना हुआ है। नहीं-नहीं, तुम उसको पकड़कर बैठे हुए हो। '**अस्तधिषणं**'-जो प्रज्ञा-रहित है, वही दुःखी हैं। प्रज्ञावान् पुरुष-दुःखका संग्रह नहीं करता।

यह जगत्! आ-हा, जा रहा है। जाते हुएको क्या पकड़कर रखोगे? कैसे जा रहा है? देखो,

प्रज्ञापराध एव एषदुःखमिति यत्।

दुनियामें जो दुःख है, वह क्या है? ना-समझी है। बोले कि नहीं-नहीं, इन्होंने अपमान किया-उससे दुःख हुआ। अच्छा, अब इसका सच्चा जवाब दें? उन्होंने अपमान किया, इसलिए दुःख नहीं हुआ। तुमने अभिमान किया इसलिए दुःख हुआ। हमारा यह उत्तर लिख लो भला! किसीने अपमान किया, इसलिए तुमको दुःख नहीं हुआ। तुमने अभिमान किया, इसलिए अपमान चिपक गया। नहीं तो अपमानमें-से दुःख कहाँसे आता? बोले कि अमुकने हमारा पाँच रुपया ले लिया, इसलिए दुःख हुआ। उन्होंने पाँच रुपया ले लिया इसलिए दुःख हुआ? नहीं, तुमने रुपयेको मेरा समझा, इसलिए दुःख हुआ। जब वह तुम्हारे हाथसे बाहर गया, तब दुःख हुआ। रुपया लेनेवालेने, तुमको दुःख नहीं दिया। रुपयेको मेरा समझनेवाली अकलने तुमको दुःख दिया। तुम्हार दोस्त तुमको छोड़कर चला गया, इसलिए दुःख हुआ। नहीं भाई, तुम उसकी मोहब्बतमें मुकतिला हो गये थे। उसके रागमें, उसकी आसक्तिमें तुमने अपनेको गर्क कर दिया, इसलिए तुमको दुःख हुआ। दोस्तने जाकर दुःख नहीं दिया।

तुम्हारीकी हुई मोहब्बतने तुमको दुःख दिया। जरा दुःखकी आध्यात्मिकताको देखो! वह तुम्हारे मनमें होता है। बोले कि हमारे दुश्मनने दुःख दिया। दुश्मनने दुःख नहीं दिया। जो उसके प्रति तुम्हारा द्वेष है, वह तुमको दुःख देता है। जो काम तुम्हारे दुश्मनने किया है, अगर वही काम तुम्हारी माँ करती, अगर वही काम तुम्हारा बेटा करता, अगर वही काम तुम्हारा पति और पिता करता तो क्या तुम उसको अपना दुश्मन समझते? यह तुम्हारा द्वेष दुःख दे रहा है।

बोले कि मृत्यु और रोग बहुत कष्ट देते हैं। मृत्युका भय लगता है। मृत्यु तो बेचारा कभी कष्ट देता नहीं किसीको! आपको याद हो कि न हो, मौत कभी किसीको तकलीफ नहीं देती। बल्कि, बहुत लोग ऐसे होते हैं जो मौतको तकलीफसे बचानेवाली, छुड़ानेवाली समझकर मृत्युका वरण करते हैं। मृत्यु किसीको तकलीफ देती है? तुम अपने मनमें मृत्युसे भयभीत रहते हो, इसलिए मृत्युसे कष्ट होता है। तब कष्टका भूल कहाँ है? दुःखका मूल कहाँ है? एक कम कपड़ा पहननेवाला, कम भोजन करनेवाला किसान या मजदूर दुःखी है। परन्तु, एक कम कपड़ा पहननेवाला और कम भोजन करनेवाला और पेड़के नीचे सोनेवाला साधु दुःखी नहीं है। हम आपको भौतिकवादकी शिक्षा देनेके लिए यहाँ नहीं बैठे हैं। हम यह बताना चाहते हैं कि हमारे जीवनमें जो दुःख हैं, उनका उत्स, उनका मूलस्रोत, उनका उद्गम भीतर है। दुःख जहाँ होता है वहाँ पैदा होता है। दुःख बाहरसे नहीं आता है। दुःखको कोई बाहरसे हमारे दिलमें ठूँसता नहीं है। हमारे दिलमें जो ना-समझी है, जो अभिमान है, मोहब्बत है, दुश्मनी है, डर है, हमारे भीतर ही उससे दुःख पैदा होता है। दुःखका मूल बाहर कहीं नहीं है। इसीसें जब और-और चीजें ख्यालमें आने लगती हैं तो पिछली-पिछली बात भूल जाती है। तब वह कैसा हो जाता है?

स्वप्नाभम्।

क्रमसे नहीं, व्युत्क्रमसे यह बात समझा रहे हैं। सबसे आखिरमें

इसमें 'पुरुदुःखदुःखम्' है। उसके पहले 'अस्तधिषणं' है। उसके पहले 'स्वप्राभम्' है। कलका बीता हुआ आपका सुनहरा दिन आज सपना होकर रह गया है और वह आपका विषाक्त दिन भी सपना हो गया है। जीवनमें भी कभी लौह दिन आता है, कभी ताम्रदिन आता है, कभी रजत दिन आता है, कभी सुवर्ण दिन आता है, कभी हीरक दिन आता है। परन्तु है सब सपने।

एक बार वृन्दावनमें हिन्दीके प्रसिद्ध कवि नीरज आये। कविता बहुत अच्छी लिखते हैं। कुछ प्रोग्राम था। हमको लोगोंने उसका अध्यक्ष बनाया। अब मैंने कहा कि भाई, आप जानते हैं कि कवि तो होता है बाप और कविता उसकी होती है कुमारी और उसका मजा लेते हैं समझदार लोग कविके जमाई हो गये-समझदार लोग। 'कविं करोति काव्यानिस्वादं जानन्ति पंडितः। कुमारयः रूप लावण्यं पतिं जानाति नो पिताः।।' कविताका सौन्दर्य तो श्रोता देखता है, पिताको क्या मालूम? फिर मैंने कहा कि बाबा, अब मैं तो बुड्ढा हो गया, ये तरुण कवि हैं, मैं ज्यादा देर व्याख्यान करूँगा तो तुम लोग कहोगे कि 'मैं क्या करूँ राम, मुझे बुड्ढा मिल गया'। बड़ी हँसी हुई। लोगोंके कहने पर घंटे भर व्याख्यान दिया। बात तो यह कहनी है कि उनकी कविताकी एक पंक्ति थी-

सपने मर मर जाते हैं, जीवन नहीं मरता है।

आपके ध्यानमें यह बात आयी। यह वेदान्त हुआ। जो सत्य है, वह ज्यों-का-त्यों रहता है और जो आभास है, वह बदलता रहता है। इसीको 'स्वप्राभं' बोलते हैं।

अच्छा, 'स्वप्राभं' क्यों बोलते हो? लड़ाई हो गयी तो भूखे ही सो जाओगे। कोई-कोई पुरुष घर जायेंगे तो स्त्रियाँ कहेंगी बड़े बाबाजी बनने जा रहे हो। रोज कथा-वार्तामें जाकर बैठे रहते हो। कुछ घरकी नोन-लकड़ीकी भी फिकर है? मालूम है आगे क्या दृश्य आवेगा? यह जो आजका जीवन है, यह मिनटों बाद कौन-सा मोड़ लेगा-यह क्या

मालूम है? अरे, यह तो जैसे बहती हुई, नदीकी धारामें कोई जीवनकी नौका बह रही हो। कैसे-कैसे दृश्य आते हैं-सबका मजा लेते चलो। वीभत्सका भी मजा लो। जब हमको हमारे गुरुने बताया कि वीभत्स भी रस है, हमने साहित्य-दर्पण पढ़ा है, अलंकार-कौस्तुभ पढ़ा है, कुवलयानंद पढ़ा है। काशीके पण्डित भालचन्द्र शास्त्रीजीसे पढ़ा है। तो रौद्र भी रस है, वीभत्स भी रस है। करुण भी रस है।

आपने कभी जीवनकी ओर ध्यान दिया? आपके जीवनमें हमेशा शान्त-रस ही रहे-यह आग्रह करते हो? हमेशा श्रृंगार ही रहे-यह आग्रह करते हो? हमेशा हास्य ही रहे-यह आग्रह करते हो? हमेशा अद्भुत ही रहे-यह आग्रह करते हो? मरोगे! '**अस्तधिषणं**'। जीवनमें एक रस नहीं रहेगा। कभी भयानक आवेगा, कभी रौद्र आवेगा, कभी वीभत्स आवेगा, कभी करुण आवेगा। कभी रोयेंगे, कभी ग्लानि होगी। कभी तेजी आवेगी, कभी डर जायेंगे। कभी उत्साह आवेगा। लेकिन सब रसोंमें रसिक तो हम ही हैं। तो; अन्तःकरणके रंगमंच पर हमारी जो वृत्ति है, ये जो संकल्प नट हैं, ये नाना प्रकारके दृश्य हमारे अन्तः-करणके रंगमंच पर उपस्थित करते हैं। उनके द्वारा उपस्थापित करुण रसका भी मजा लेना और वीभत्स रसका भी मजा लेना। तब तो तुम मजेमें रहोगे! और, चाहोगे कि जीवनमें केवल हास्य ही हो, केवल श्रृंगार ही हो, केवल शान्त ही हो, तो ऐसा होना शक्य नहीं है। यह एक अशक्यानुष्ठान जो वस्तु है, जैसा होना कभी शक्य नहीं है-उसको जो चाहता है, दुनियामें वही दुःखी होता है।

'जगत्' शब्दका अर्थ ही है 'गच्छति इति जगत्'-जो जाता है, जाता है। हमारे संकल्पके 'गं' धातुको अंग्रेजीवालोंने 'कं' बना दिया है। कमहियर (Come here) बोलते हैं न। 'गं' का 'गो' भी है। गो बैक (Go back) बोलते हैं। तो जगत् माने गच्छति इति जगत्। इसीसे जगाम् क्रिया बनती है, माने गया। तो 'ईश्वर' किसका नाम है? जो कभी जाये नहीं, सो ईश्वर! जिसको हम छोड़ना चाहें और न छोड़ सकें, वह

ईश्वर। जिसके जीवनमें मजबूरी है, वह ईश्वरको कैसे अस्वीकार कर सकता है? हम राजा-रईस सबसे यह बात बोलते हैं-जिसके जीवनमें कहीं विवशता है वह अपनी पराधीनताको कैसे अस्वीकार कर सकता है? कहाँसे अपने आते हैं? ईश्वर वह हैं जो हमको छोड़कर कभी नहीं जा सकता और जगत् वह है जो कभी रह नहीं सकता। जो सरके सो संसार! बचपन सरक गया, पता नहीं चला! जवानी सरक गयी, पता नहीं चला। काले बाल कहाँ गये, पता ही नहीं चला। बुढ़ापा कहाँ जा रहा है, कुछ पता ही नहीं चलता। और, श्रीमती और श्रीमान्का ब्याहके पहले-पहले जो प्रेम था, वह ब्याह होनेके बाद वहाँ सरक गया, इसका पता ही नहीं चलता। वह तो नेकचार हो जाता है, मर्यादा हो जाती है। निर्वाह दूसरी वस्तु है।

तो यह संसार! कैसा? बोले कि 'असत्स्वम्' आपको वेदान्तियोंका मिथ्यात्व समझाते हैं। एक होता है रूप और एक होता है स्वरूप। शीशेमें जितनी परछाईं दिखती है, जितनी तस्वीरें दिखती हैं, अपना प्रतिबिम्ब दिखता है, प्रतिच्छाया, आभास शीशेमें दिखता है। वह शीशेका स्वरूप नहीं है। क्या है? उसमें प्रतिबिम्बित रूप है। अन्यनिष्ठ रूप अन्यमें भास रहा है। तो यह जो संसार है, इसका अपना कोई रूप ही नहीं है। बदलना, बदलना, बदलना। 'असत्स्वरूपं'। अपना कोई स्वरूप नहीं है। रूप तो है इसका, पर वह अपना नहीं है। आप देखो, आपके दुःखकी यह अचूक दवा है, रामबाण दवा है, अमोघ औषध है। कभी व्यर्थ नहीं होनेवाली दवा है! जगत्का यदि कोई अपना रूप होता तो उसको हम पकड़कर अपने पास रख सकते। आजतक दुनियामें किसने क्या पकड़कर रखा है? असलमें देश, काल और वस्तु मूलतः एक ही हैं। हमने इनका रूप देखा है भला! विवेकके लिए अलग किया जाता है कि जैसे घ, ट-पहले 'घ' पीछे ट-यह जो क्रम हुआ, यह काल हो गया और 'घट' लिखनेकी आकृति हुई और 'घट' लिखनेका स्थान हुआ। घटकी लकीरोंमें जो बिन्दु होते हैं, वे स्थानकी कल्पनाके आधार

हैं और कालमें जो सैकेंड होते हैं वे कालकी कल्पनाके आधार हैं। स्याहीके जो कण-कण होते हैं, वे द्रव्य कल्पनाके आधार हैं। सच पूछो तो कालके क्षण और द्रव्यके कण और देशके बिन्दु उपलक्षित स्थान- ये तात्त्विक दृष्टिसे एक साथ ही जा रहे हैं। सैकेण्ड जाता है, बिन्दु जाता है, बिन्दुका स्थान जाता है। एक समयमें सब बदल रहा है। जो स्वयं प्रकाश साक्षी है, वही रहता है। जो अधिष्ठान ब्रह्म है, वही रहता है। स्वयंप्रकाश साक्षी, अधिष्ठान ब्रह्म ही एक है।

नारायण, जगत् स्वरूप रहित है। पर-सत्तासे ही सत्तावान् है। अधिष्ठान सत्तासे ही सत्तावान् है। चाहे बोलो साँप, चाहे बोलो माला, चाहे बोलो दरार, चाहे बोलो डंडा-इनका अपना स्वरूप कुछ नहीं है। इनका असली स्वरूप क्या है? रज्जु। अज्ञात जो रज्जु है, असलमें भ्रान्तिओंके अनेक रूपसे भास रहा है। अज्ञात आत्मा ही, अज्ञात-ब्रह्म ही जगत्के रूपमें भास रहा है। जगत्का कोई स्वरूप नहीं है। इसमें कहाँ फँसते हो? जहाँ हम फँसते हैं, वह भी भ्रान्त-दृष्टिसे है और जो हम फँसते हैं-ऐसा मालूम पड़ता है, वह भी भ्रान्त-दृष्टि है। हम निमन्त्रण देते हैं किसी रागी महात्माको, सज्जनको, जो आकर बता दे कि दस-वर्षसे हमारा राग एकरस है। रागीपनेका मिथ्याभिमान होता है कि मैं रागी हूँ। मैं प्रेमी हूँ-यह स्वप्न है। न प्रियतम प्रियतम रहता है और न प्रेमी प्रेमी रहता है। एक जिद्द रहती है, एक आग्रह रहता है। बदल जाती है दुनिया।

नारायण, एक परमात्मा सत्य है, एक ईश्वर सत्य है। जिसको तुम सत्य समझकर पकड़ते हो वह तो ऐसा ही है जैसे सपना देख रहे कि हमारे सामने एक बड़ी सुन्दर स्त्री आयी है और आलिंगन किया उसको, भुजपाशमें बाँधा। क्या मिला? बोले कि ठन-ठनपाल। कुछ नहीं। हम अपने मनके भुजपाशमें, बुद्धिके भुजपाशमें जगत्के किसी रूपको नहीं बाँध सकते। स्वप्नमें मिले हुए हीरेका आभूषण हम जाग्रतमें नहीं धारण कर सकते।

त्वय्येव नित्य सुखबोधतनावनन्ते,
मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति।

नित्यमिव, सुखमिव, ज्ञानमिव-नित्य परमात्मामें, जो कालका अधिष्ठान साक्षी है, परिपूर्ण परमात्मामें जो देशका अधिष्ठान साक्षी है, उसमें यह दुनिया लगती है नित्य! अनित्य ही नित्य लगता है। दुःख ही सुख लगता है। जड़ता ही ज्ञान लगती है और शान्त ही अनन्त लगता है। क्यों? इसीको बोलते हैं 'माया'। जो चीज जैसी न हो, उसको वैसी दिखा दे। 'उद्यदपियत्'-उगता है और जाता है, उगता है और जाता है। देख ले जादूका तमाशा। मकान बना और टूट गया। फल लगा और गिर गया। दीपक जला और बुझ गया। पानीका बुलबुला पैदा हुआ और मिट गया। चिंगारी निकली और बुझ गयी। यह देखो तमाशा! क्या है? **यत्सदिवावभाति।।**

भासता तो मैं भी हूँ कि मैं हूँ। आत्मा है-ऐसा भासता है। दुनिया है-ऐसा भी भासता है। पर, एक भान परिवर्तनशील है और एक भान अपरिवर्तनशील है। जो अपरिवर्तनशील भान है उसको सत्य बोलते हैं और जो परिवर्तनशील भान है उसको मिथ्या बोलते हैं। और, परिवर्तनशील भान अपरिवर्तनशील भानसे ही भासता है। इसलिए, आत्मा स्वयंप्रकाश सत्य है और जो मालूम पड़ता है सो बदलता है।

तो परमात्मा कैसा है? नित्य है, सुख है, बोध है, अनन्त है और उसमें यह जितना दुःख है, दुविधा है, मूर्खता है, स्वप्न है-असत् है, माने बिना हुए ही भास रहा है। और, यह कितनी बढ़िया बात है कि तुमको भास रहा है। यह शान्त, अद्भुत, हास्य, शृंगार, करुण, रौद्र, वीभत्स-सब तुमको भास रहे हैं और इस जगन्नाट्यके द्रष्टा तुम हो। कितना बड़ा नाटक तुम्हारे सामने। छोटा-सा नाटक देख कर तुम खुश हो जाते हो! इतना बड़ा नाटक देखकर तुम्हें खुशी नहीं होती!

ब्रह्मा माने अन्तःकरण अधिष्ठात्री देवता। अन्तःकरणमें बैठा

हुआ प्रकाश, आभास। अन्तःकरणका चतुर्विधत्व ही इसका चारमुख है और ये अपने जाग्रत् -स्वप्न-सुषुप्तिके भावाभावसे उपलक्षित अद्वय परमात्माका निरूपण कर रहा है। यह स्तोत्र ऐसा है कि इस पर ध्यान दें तो तुरन्त भगवान्‌का दर्शन हो जाता है। ईश्वरका दर्शन हो जाये। क्योंकि ईश्वरका जो दर्शन है-यह ऐसा ही है, एक आपको उदाहरण देते हैं। एक ऐसी वस्तु है जो किसी चीजको ऊपर भी फेंक सकती है और नीचे भी डाल सकती है। वह सिकुड़ भी सकती है और फैल भी सकती है। एक ऐसी वस्तु है कि उससे आप किसीको छोड़ भी सकते हैं और पकड़ भी सकते हैं। आप जानते हैं उसको? देखो आपको बताते हैं। अब समझो कि एक बच्चेसे हम बात कर रहे हैं। आप सब विद्वान् हैं, बड़े-बूढ़े हैं-सो सब ठीक है। आप एक बार मान लो कि हम किसी बच्चेसे बात कर रहे हैं। 'बेटा, एक ऐसी चीज है कि उससे किसीको पकड़ सकते हैं और छोड़ भी सकते हैं।' 'अच्छा, ऐसी है! तब तो बहुत बढ़िया होगी? हम उसीसे अपना खिलौना पकड़ लिया करेंगे और छोड़ दिया करेंगे'। 'वह फैलती भी है, और सिकुड़ती भी है'। 'अच्छा, ऐसा। तब तो पिताजी हमको वह चीज जरूर चाहिए।' 'बेटा चाहिए काहेको। वह तो तुम्हारे पास है'। 'नहीं, पिताजी, हमारे पास तो कोई ऐसी चीज नहीं है। हमारे पास है तो उसका नाम क्या है?' बोले कि उसका नाम 'कर' है। 'इस नामसे तो कोई चीज हमारे पास नहीं है'-बच्चा बोला। तो उसका हाथ पकड़कर बताया कि देख इसका नाम 'कर' है। हाथका ही नाम 'कर' है। अब यह क्या हुआ? जो हमने पहले परोक्ष वर्णन किया और उसकी सन्निधिमें ही बताया, उसके गुण, लक्षण बताये, उसको बालक समझता नहीं था, इसलिए उसको अन्य समझता था, परोक्ष समझता था। और, जब हाथ पकड़कर बता दिया। 'अयं करः'-इसीका नाम हाथ है, यह सिकुड़ता है कि नहीं? सिकुड़ता है। फैलता है? हाँ, फैलता है। पकड़ता है? हाँ पकड़ता है। छोड़ता है? हाँ, छोड़ता

है। ऊपर फेंकता है? हाँ! नीचे फेंकता है? हाँ! देखो, जितने लक्षण मैंने बताये थे, वे सब तुम्हारे हाथमें है कि नहीं? हैं! इसका नाम है 'हाथ', इसका नाम है 'कर'।

यह हम लोग जो परमात्माका वर्णन करते हैं-यह आयाराम, यह गयाराम-सब बदलते हैं और वह नित्य है। देखो तुम नित्य हो कि नहीं? सब प्रिय-अप्रिय होते रहते हैं और वह हमेशा प्रिय रहता है। ठीक है कि नहीं? वह देश-काल-वस्तुका प्रकाशक है कि नहीं? वह सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद रहित है कि नहीं? जो ब्रह्मकी पहचान हमने बतायी थी कि ऐसा ब्रह्म है, जिसके मिलनेके बाद सुख-ही-सुख है, आनन्द-ही-आनन्द है, ज्ञान-ही-ज्ञान रहता है! हाँ, बताया तो था। अरे, वह ब्रह्म जो है, वह तो आत्मा है। अरे, वह तो तुम खुद हो!

परोक्ष वर्णन सुनकर जिसको हम परोक्ष समझते थे कि ऐसी कोई चीज हो ही नहीं सकती जो फैलेगी, सिकुड़ेगी, उठावेगी और पकड़ेगी, गिरावेगी, छोड़ेगी! तो प्रत्यक्षसे हाथ पकड़ कर बता दिया कि यह है, वस्तु! ऐसे ही परमेश्वरके बारेमें जितने लक्षण बताये हैं तुम अपनेमें घटा लो, अपनेमें घटित कर लो।

हम ईश्वरमें मिल जायेंगे तो कोई फायदा नहीं होगा और ईश्वर हममें मिल जायेगा तो फायदा-ही-फायदा है।

अब कल सुनावेंगे!

●

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः।।
(10.14.23)

'प्रभो! आप ही एकमात्र सत्य हैं। क्योंकि आप सबके आत्मजो हैं। आप पुराणपुरुष होनेके कारण समस्त जन्मादि विकारोंसे रहित हैं। आप स्वयंप्रकाश हैं, इसलिए देश, काल और वस्तु-जो परप्रकाश हैं-किसी प्रकार आपकी सीमित नहीं कर सकते। आप उनके भी आदि प्रकाशक हैं। आप अविनाशी होनेके कारण नित्य हैं। आपका आनन्द अखण्डित है। आपमें न तो किसी प्रकारका मल है और न अभाव। आप पूर्ण, एक हैं। समस्त उपाधियोंसे मुक्त होनेके कारण आप अमृतस्वरूप हैं।'

ब्रह्माजी श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं। पहले उन्होंने कहा कि तुम मेघ-श्याम हो, तुम पीताम्बर हो, तुम मुरलीमनोहर हो, तुम नन्द-नन्दन हो। तो भगवान्‌ने कहा कि यह मेरी क्या स्तुति की? यह कोई तारीफ हुई भला? अरे, यह तो पशु-पक्षी भी देख रहे हैं कि मैं ऐसा हूँ। कोई अकलकी बात तो बोलो! तो ब्रह्माजीने कहा कि अच्छा महाराज, अभी जरा ग़ड़बड़ा गया था। जो देख रहा था, सो ही बोल दिया। अब जरा बुद्धि स्थिर होने दो तो सोच-समझकर बोलते हैं।

एक महात्माकी भगवान्‌से भेंट हुई। बड़ी मजेदार भेंट हुई। वह तो निकला था घरसे भगवान्‌को ढूँढनेके लिए! पर, मिल गये दुर्वासाजी। दुर्वासाजीको देखते ही वह बेचारा डर गया। एक कोनेमें छिप गया कि उनकी नजर न पड़े। क्योंकि, पता नहीं बाबा शाप दें कि वरदान दें। डरके मारे उसकी आँख बन्द हो गयी कि बाहर नहीं देखो।

तो आँख बन्द होते ही उसने देखा कि सृष्टिमें तो क्रिया-प्रतिक्रिया पञ्चभूत-ही-पञ्चभूत! शरीर लापता हो गया। देखा, कर्म-ही-कर्म। फिर देखा प्रकाश-ही-प्रकाश! शक्ति-ही-शक्ति! इस तरह द्रव्य-लोक, कर्मलोक, ऐन्द्रियक ज्ञान-लोक, शक्तिलोक पार कर लिया। देखा कि चाँदनी छिटकी हुई है। उसको भी पार कर लिया। देखा, विवेकका सूर्य उदय हुआ है। उसको भी पार कर गया। शान्ति-लोक आया, समाधि लग गयी। उसको भी पार कर गया। दुर्वासाजीकी तो दृष्टि ही नहीं पड़ती। उन्होंने समझा कि ऐसे कोई मुर्दा खड़ा है। ऐसी जगह वह पहुँच गया, जहाँ दुर्वासाजीकी नजर न पहुँचे। अब वह शान्ति-लोकके जो परे वह पहुँचा तो ईश्वरसे भेंट हो गयी। उसने कहा कि हे प्रभु, मैं आपको पहचानता नहीं हूँ, जरा आप अपनी पहचान बता दो। कौन-कौनसे गुण आपमें हैं! भगवान् बोले कि देख भाई, मेरे गुण मत पूछ। मुझे जो काम हो सो बता दे। कोई तकलीफ हो तो मुझे दयालु कहकर पुकार, मैं दूर कर दूँगा। पैसा-वैसा चाहिए तो मुझे उदार कहकर पुकार, मैं दे दूँगा। कोई पहाड़-पवाड़ उठाना हो तो सर्वशक्तिमान् कहकर पुकार, उठा लूँगा। यदि कुछ जानना हो, पूछना हो तो सर्वज्ञ कहकर पुकार, ज्ञान दे दूँगा। तुझे जैसी जरूरत हो, वैसा गुण मेरे अन्दर मानकर मुझे पुकार, मैं वह चीज तुमको दे दूँगा। वह बोला कि न महाराज, हमें तो यह बताओ कि असलमें तुम्हारे अन्दर है कौन-कौनसे गुण! सुन्दर हो, उदार हो, सर्वज्ञ हो, सर्वशक्तिमान हो, दयालु हो? बोले कि देख, ये सब तो तेरी बुद्धिके खेल हैं। मेरे अन्दर तो कोई गुण ही नहीं है। मैं तो निर्गुण हूँ। मैं क्या गुणका अभिमानी हूँ? मैं सुन्दरूपवाला हूँ, मैं दयागुणवाला हूँ, मैं शक्तिवाला हूँ, मैं ज्ञानवाला हूँ-मैं क्या वाला-वाला हूँ?

ईश्वर 'वाला' वाला नहीं होता है। उसके साथ कोई 'वाला' नहीं जुड़ता है। महात्माने पूछा कि तब महाराज आप अपनी नजरमें कैसे हो? बोले कि निर्गुण हूँ मैं! अगर मेरेमें गुण होवें तो मैं गुणावान गुणका

अभिमानी बन जाऊँ। मैं अपनी नजरमें सगुण नहीं हूँ। यह तो मेरे भक्तलोग मुझे सगुण देखते हैं भाई! 'तब महाराज आपमें कोई गुण नहीं है? तब दुनियाके लोग आपसे प्रेम कैसे करते हैं? भगवान् बोले कि जो गुण देखकर प्रेम करते हैं, वे तो स्वार्थी हैं। यदि अपने प्रियतमके गुण देख-देखकर प्रेम करेंगे कि इनके चेहरे पर बड़ी चमक है। यदि चेचक हो जायेगी तो उनका प्रेम कहाँ जायेगा? मर जायेंगे। देखेंगे कि बाल बड़े काले-काले हैं। और, जब सफेद हो जायेंगे तब उनका प्रेम उड़ जायेगा। एकदिन उदार देखकर प्रेम करेंगे और एक दिन देखेंगे कि दो-आना पैसा नहीं देता है ईश्वर तो दुश्मन हो जायेंगे? जो लोग गुण देखकर प्रेम करते हैं, उनके प्रेमकी तो दो कौड़ी कीमत नहीं है।

तब प्रेम किसका बड़ा? भगवान् बोले कि जो हमको निर्गुण जानकर भी प्रेम करे कि ईश्वर हमारे किसी काम आनेवाला नहीं है। न तो हमको एक पैसा देगा, न तो हमारी तकलीफ दूर करेगा। उससे हमारा कोई स्वार्थ सिद्ध होनेवाला नहीं है। जो मुझे निर्गुण जानकर प्रेम करता है, वह सच्चा प्रेमी! तो भक्तने पूछा कि महाराज, आखिर आप अपनेमें गुण क्यों नहीं रखते? भगवान् बोले कि हम गुण रखेंगे तो गुणके अभिमानी हो जायेंगे। गुणके घटने-बढ़नेसे हम घटते-बढ़ते मालूम पड़ेंगे। तो गुण होगा तो माँगनेवाले हमको परेशान कर डालेंगे। इसलिए हम गुणका चोला छोड़ कर रहते हैं। महात्मा बोला कि महाराज, जब आपको गुणसे डर लगता है, आप अपनेमें गुणधारण नहीं करते हैं, तो मैं यह जो बड़ा पवित्र और बड़ा सद्गुणी बनकर आपके पास आया हूँ-इसका क्या करें? बोले कि तुम रखो अपने अभिमानको अपने सिरपर! वह बोला कि न-न महाराज, जब आप नहीं रखते हैं तो हम भी छोड़ देते हैं। 'तब तुम भी निर्गुण, हम भी निर्गुण। हमारे अन्दर कोई गुण नहीं, तुम्हारे अन्दर भी कोई गुण नहीं।' तब फिर हमारे और आपमें भेद क्या हुआ?' भगवान् बोले कि तू सोच, क्या भेद हुआ? महात्मा बोला कि निर्गुण-निर्गुणमें तो कोई भेद होता ही नहीं। भगवान्

हँस दिये और बोले कि बस, यही तो बात है! जो मैं निर्गुण सो तुम, जो तुम निर्गुण सो मैं। हम दोनों एक हैं। 'अच्छा, हम दोनों एक हैं तो यह सब क्या है?' बोले कि कुछ नहीं, बिना हुए ही भास रहा है। लो, झगड़ा ही कट गया।

इसीसे संन्यासीके प्रेममें और गृहस्थके प्रेममें अन्तर क्यों होता है? गृहस्थ लोग बच्चेके लिए प्रेम करते हैं, धनके लिए प्रेम करते हैं, मकानके लिए प्रेम करते हैं, इज्जतके प्रेम करते हैं। तो उनको सगुणसे प्रेम करना चाहिए। क्योंकि उनका काम तो सगुणसे ही चलेगा। परन्तु, भगवान्‌के असली स्वरूपको चाहता हो सो निर्गुणके पास आवे! जो सगुण होगा, वह परिमित होगा सीमित होगा। जो निर्गुण होगा वह ही तो खालिस, शुद्ध होगा! गुण मिला हुआ होगा तो दो चीज होंगी-एक गुण और एक गुणी। खालिस कहाँ हुआ? और, गुणका उदय-विलय होगा तो विध्वंस आगया। अनित्यता आ गयी। गुण आनेसे परिमितता आगयी, अशुद्धि आगयी, जड़ता आगयी, विध्वंस आगया। यदि गुण देखकर प्रेम करो और निर्गुणता देखकर प्रेम छोड़ दो तो अपने आपसे क्यों प्रेम करते हो? अच्छा, अपने आपमें तुम्हारा जो प्रेम है, सबसे ज्यादा प्रेम है। अपनेमें कोई गुण न हो तब भी अपनेसे प्रेम रहेगा कि नहीं रहेगा? इस सवालका जवाब सोचो अपने मनमें। अपने अन्दर कोई गुण न हो तब भी आप अपनेसे प्रेम करोगे! तो अपने निर्गुण होने पर भी प्रेम करो और भगवान्‌के सगुण होने पर ही प्रेम करो तो तुम्हारा प्रेम अपनेसे ज्यादा है कि भगवान्‌से ज्यादा है? विवेक आपका क्या बोलता है? इसीलिए भगवान्‌ने देखा कि यह मनुष्य स्वयंके निर्गुण होने पर भी अपने आपसे प्रेम करता है, तो सबसे ज्यादा प्रेम अपने आपसे इसका है। इसका सर्वोत्तम प्रेम हमें लेना हो तो हमें क्या करना पड़ेगा? इसका अपना आपा बनना पड़ेगा। नहीं तो इसका सर्वोत्तम प्रेम हमको नहीं मिल सकता।

अब श्लोक पर आजाइये!

शंकर भगवान्‌ने बड़ी भारी तपस्या की। शंकर, ब्रह्मा-इनको कभी-कभी जीव भी मानते हैं और कभी-कभी ईश्वर भी मानते हैं। चूँकि, जीवत्व और ईश्वरत्व अत्यन्त भिन्न-भिन्न नहीं हैं, इसलिए एक ही उपाधिमें कभी जीवत्वकी प्रधानतासे ब्रह्मा प्रकट होते हैं और कभी ईश्वरत्वकी प्रधानतासे प्रकट होते हैं। क्योंकि तत्त्वतः दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। इसलिए, कभी जीव ब्रह्माके रूपमें प्रकट होता है और कभी ईश्वर ब्रह्माके रूपमें प्रकट होता है। यह पौराणिक-गाथा है।

तो; श्रीकृष्ण शंकरजीके सामने प्रकट हुए और बोले कि शंकरजी, क्यों तपस्या की है? क्या चाहते हो? शंकरजीने कहा कि महाराज, हम वेदान्तोंमें सुनते हैं कि निर्गुण है, निराकार है, निर्विकार है, निर्धर्मक है, निर्विशेष है। तो ऐसेको हम अपनी आँखसे देखना चाहते हैं। कृष्णने कहा कि ठीक है शंकरजी, हिमालयमें देखना हो तो अपनी आत्मामें निर्गुण, निराकार, निर्विकार, निर्धर्मक, निर्विशेष अद्वैतको देखो। और, यदि आँखसे देखना हो तो वृन्दावनमें आना। आकर कुछ सेवा करना, तो तुमको दिखावेंगे। शंकरजीने सेवा की। कालिय-दमन किया भगवान् श्रीकृष्णने और कालियनाग वहाँसे चला गया और रातको भूखे-प्यासे गोप-गोपी, वृद्ध-बालक, गौएँ व्याकुल हो गये थे, थककर नींदमें चूर हो गये। तब शंकरजीने सोचा कि आज सेवाका मौका है। कालियनागके विषसे आसपासकी सब वनस्पति, फल-फूल विषाक्त हो गये हैं, कल उठकर यदि ग्वाल इनको खायेंगे, गौएँ इनको चरेंगी तो उनका बड़ा अनिष्ट हो जायेगा। अब शंकर कालानल रुद्र-दावानल बनकर आये और जो कुछ भी विषैला पदार्थ था, सबको जलाकर भस्म कर दिया। राधा-कृष्ण भगवान् उनके सामने प्रकट हुए। यह कथा पद्मपुराणके पाताल खण्डमें है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले कि देखो, यह जो मेरा रूप तुम देख रहे हो, यह प्राकृत नहीं है। ब्रह्म है। जब अज्ञान रहता है, तबतक प्राकृतरूप रहता है, मायिक रूप रहता है और जब अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है

तब सब ब्रह्मरूप हो जाता है। देहमें मैं करनेसे इसका पता नहीं चलता। ब्रह्ममें 'मैं' करके फिर निखिल जगत्‌को देखो। देखो, तुम्हीं प्रतीत हो रहे हो। तुम्हारे सिवाय और कुछ नहीं है।

तो नारायण, वही हैं भगवान् श्रीकृष्ण, जिन्होंने शंकरजीको दर्शन दिया था। देख लो मेरा यह निर्गुण, निराकार, निर्विकार, निर्धर्मक, निर्विशेष रूप। तो ब्रह्माजी कहते हैं, 'हे कृष्ण, तुम केवल नन्दनन्दन, मेघश्याम, पीताम्बरधारी नहीं हो! परम सत्य हो। जिसमें विकार होता है वह असत्य होता है और तुममें जन्मादि विकार नहीं हैं। तो तुम जगत्‌के आदि हो! जब जगत् नहीं था, तब भी तुम पुराण-पुरुषके रूपमें विद्यमान थे। सबसे पुराना मैं और मुझसे भी पुराने तुम!

पूर्वमेवाहमिहासमितितत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्।

पुरुषको 'पुरुष' इसलिए कहते हैं कि सबसे जो हो। अच्छा, आप यदि आँख बन्द करके गणित लगाने लगेंगे कि कलियुगके पहले द्वापर, द्वापरके पहले त्रेता, त्रेताके पहले सतयुग। ऐसे नहीं। आप देखो, यह हाथ है, इससे पहले क्या है? बोले कि प्राण। नहीं तो हाथ निकलते ही नहीं शरीरमें-से यदि हवा न होती। गर्भाशयमें हाथ बढ़नेके पहले प्राण-शक्ति मौजूद है और प्राण-शक्ति मौजूद होनेके पहले इच्छा-शक्ति मौजूद है। क्योंकि, करनेके लिए कोई चीज बढ़े, चलनेके लिए कोई चीज बढ़े-इच्छा होए बिना प्राण काम नहीं करेंगे और इच्छा होनेके पहले बुद्धि होना जरुरी है। इच्छासे पहले बुद्धि मौजूद है और बुद्धिसे पहले बुद्धिकी शान्ति मौजूद है, सुषुप्त-दशा मौजूद है। और, सुषुप्त-दशामें पहले 'मैं' मौजूद है। इसीसे 'मैं'को 'पुरुष' बोलते हैं। देहाकार होनेसे पुरुषको पुरुष नहीं बोलते हैं। पञ्चभूतसे पूर्व प्राण, प्राणसे पूर्व मन, मनसे पूर्व बुद्धि, बुद्धिसे पूर्व बुद्धिकी शान्ति और उससे भी पूर्व, उससे भी पहले चूँकि 'मैं' मौजूद रहता है, इसलिए आत्माका नाम 'पुरुष' है। केवलकालकी दृष्टिसे ही पूर्वता नहीं होती। द्रव्यकी दृष्टिसे भी पूर्वता होती है और देशकी दृष्टिसे भी पूर्वता होती है। बाहरका देश

मालूम ही तब पड़ सकता है जब अन्तरका देश मौजूद हो और बाहर-अन्तर दोनोंका देश मालूम ही तब पड़ सकता है जब पुरुष मौजूद हो। तो बहिर्देशसे पूर्व कौन है? अन्तर्देश। अन्तर्देशसे पूर्व कौन है? आत्मदेव, शुद्ध चैतन्य। पृथिवी आदिसे पूर्व कौन है? प्राण, मन, बुद्धि, शान्ति और उनसे पूर्व 'मैं' पुरुष। जन्मकालसे पूर्व कौन मौजूद है? जीवनकालसे पूर्व कौन मौजूद है? मरणकालके पूर्व जीवनकाल मौजूद है। जीवनकालके पूर्व जन्मकाल मौजूद है और जन्म होनेपर जो 'अस्ति' मालूम पड़ता है, वह विकार है। अस्तित्व लक्षण विकार जन्म होनेके अनन्तर होता है। और, जन्म होनेके पूर्व जो अस्तित्व है, उसको 'सत्' बोलते हैं। वह अस्ति आत्मा है। देशकी दृष्टिसे भी पूर्व आत्मा है, कालकी दृष्टिसे भी पूर्व आत्मा है, द्रव्यकी दृष्टिसे भी पूर्व आत्मा है। यह आत्म-सूर्य है। इसीके प्रकाशमें समूची सृष्टि भासती है।

देखो, काल इसको छू नहीं सकता, इसलिए यह 'आद्य' है। देशोंमें इसका अन्त नहीं होता, इसलिए यह 'अनन्त' है। क्रियासे इसकी प्राप्ति नहीं होती, इसलिए यह 'आत्मा' है। यह बात ध्यानमें जल्दी नहीं आती है। अपनेसे बाहर, अपनेसे अन्य किसीको प्राप्त करना होता है तब क्रियाकी जरूरत पड़ती है। पाँवसे चलकर हम दूसरेके लिए जाते हैं, हाथसे दूसरेको पकड़ते हैं, मुँहसे दूसरेके लिए बोलते हैं। क्रिया होती है दूसरेके लिए! अपने आपको पानेके लिए क्रिया नहीं होती है। अपने आपको पानेके लिए चलोगे कि पकड़ोगे? वेदान्तियोंकी बात समझना जरा मुश्किल पड़ता है। अपनी प्राप्तिके लिए क्रियाकी अपेक्षा नहीं है। इसलिए, आत्मा कहनेसे ही यह बात प्रकट हो जाती है कि अपनेको पानेके लिए कुछ जाना, करना, बोलना नहीं है। चुप-गुप!

अच्छाजी, क्रियाकी तो जरूरत नहीं है, ज्ञानकी तो जरूरत होगी न? '**स्वयंज्योतिः**'-ज्ञान-अज्ञानका भेद ही जिसको भास रहा है, वह स्वयंज्योति है। उसके लिए ज्ञानकी कोई जरूरत नहीं है। उसमें अज्ञान ही नहीं है तो ज्ञान कहाँसे होगा? अरे अज्ञान है, यही भ्रान्ति है। इस

भ्रान्तिको मिटानेके लिए ज्ञान है। भ्रमसे आत्माकी प्राप्ति नहीं होती है। ज्ञान हुआ कि नहीं हुआ-यह जिसको मालूम पड़ता है, सो आत्मा। ज्ञानके ज्ञानका नाम आत्मा है। स्वयं ज्योति, स्वयंप्रकाश। केवल भ्रम-निवारणके लिए ज्ञान-वृत्तिकी अपेक्षा है, आत्माको प्रकाशित करनेके लिए नहीं।

नित्योऽक्षरोजस्त्रसुखो निरञ्जनः

न बढ़ता है, न घटता है, न बदलता है। न इसमें दुःख है, न माया है। यह पूर्ण है, अद्वितीय है। '**उपाधितो मुक्तः**'-अन्तःकरणसे मुक्त है और '**अमृत**'-अरे नारायण, जन्म-मरण आदि दुःखोंसे वर्जित है।

अब प्रश्न यह हुआ कि यह जो वर्णन है, यह कृष्णका है कि आत्माका है?

देखो, आप लोग स्त्रीके बारेमें, पुत्रके बारेमें, धनके बारेमें, मकानके बारेमें दिनभर सोचते ही तो रहते हो। पैसेके बारेमें दिनभर सोचते हो न! अरे कभी-कभी ऐसी बात भी सोच लिया करो भाई, जिसमें तुम्हारा कोई लौकिक स्वार्थ, लौकिक प्रयोजन न हो! अपनी बुद्धिको इतना स्वार्थी बनाकर रखना कि जिससे मतलब हो, वही सोचना? बिना मतलबकी बात भी सोचो! वैसे है तो यह बड़े मतलबकी। परन्तु; जैसे मतलबकी आप चाहते हैं, वैसी नहीं।

एक सज्जन आये। बोले कि हम सन्ध्या-वन्दन क्यों करें? क्या फायदा है, सन्ध्या-वन्दन करनेसे? स्वर्ग मिलेगा कि ब्रह्मलोक मिलेगा कि धन बढ़ेगा? महात्माने कहा कि हाय रे, मनुष्य! इतना पतित हो गया है कि वह पाँच मिनट भी निष्काम-भावसे अपने कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए नहीं बैठ सकता? इतना अधःपतित हो गया मनुष्य! माना कि सन्ध्या-वन्दन करनेसे पैसा नहीं मिलता, स्त्री नहीं मिलती, बेटा नहीं मिलता, स्वर्ग नहीं मिलता, ब्रह्मलोक नहीं मिलता, इज्जत नहीं मिलती। लेकिन; क्या तुम्हारे चौबीस घंटेमें-से एक घंटेकी बात छोड़ो, पाँच मिनट भी ईश्वरके नामपर, धर्मके नामपर, कर्त्तव्यके

नामपर, आज्ञा पालनके नामपर निःस्वार्थ तुम नहीं बिता सकते? यह जीवनका पातित्य है, यह जीवनकी श्रेष्ठता नहीं है। आठ वर्षके ब्राह्मण बालकको उपनयन संस्कार कराकर उसको अध्ययन कराना चाहिए। यह शिक्षा हम आठ वर्षके बालकको देना प्रारम्भ करते है कि देखो, निष्काम-कर्म कैसा होता है! जिन्दगी भर किताब पढ़ो और पत्रिका पढ़ो, पता नहीं चलेगा निष्काम-कर्म कैसा? निष्काम-कर्म ऐसा कि, शास्त्रकी आज्ञा मानकर, गुरुकी आज्ञा मानकर, अपने पिताकी आज्ञा मानकर पाँच मिनट केवल पवित्रताकी दृष्टिसे निष्काम बैठ जाओ। तब कम-से-कम तुम्हारे पास एक नमूना तो रहेगा कि निष्काम-भावसे ऐसे बैठा जाता है।

एक बार हम वृन्दावनमें बैठे थे। हाथीबाबा आये। वे हमारे पास आकर घंटों बैठते थे। भक्त लोग भी आजाते। तो एक कलकत्तेका मारवाड़ी जवान था-आया। उसने मुझसे पूछा, 'स्वामीजी, राम-राम करनेसे के फायदो है? हाथीबाबा बैठे थे। तो मैं तो अभी बोलने ही वाला था कि हाथीबाबा हमसे पूछते हैं, 'यह साला बनिया मालूम पड़ता है'। बड़े ही फक्कड़ महात्मा थे। तो 'बनिया' माने वैश्य नहीं। बनिया माने वणिक-बुद्धि-हर काममें कुछ मिले, हर काममें कुछ मिले। अरे बाबा, कुछ तो ऐसा काम करो, जिसमें कुछ न मिलता हो! निष्काम करनेका अभ्यास तो पड़े।

विचार कीजिये कि यह जो 'परब्रह्म परमात्माका वर्णन किया ब्रह्माजीने, यह क्या है? दूसरेका है कि अपना है? देखो; अगले श्लोकमें क्या मजेदार बात कही है।

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि
स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा
ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम्।।

(10.14.24)

'आपका यह ऐसा स्वरूप समस्त जीवोंका ही अपना स्वरूप है। जो गुरुरूप सूर्यसे तत्त्वज्ञानरूप दिव्य दृष्टि प्राप्त करके उससे आपको अपने स्वरूपके रूपमें साक्षात्कार कर लेते हैं, वे इस झूठे संसार-सागरको मानो पार कर जाते हैं। (संसार सागरके झूठा होनेके कारण इससे पार जाना भी अविचार-दशाकी दृष्टिसे ही है)'

'**एवं विधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानं**'-यह हो तुम! यह बताया कि यह वर्णन कृष्णका है। बाबा जब इस देहमें रहने वाले 'मैं'के द्वारा उपलक्षित स्वरूप ब्रह्म है, तो कृष्णके शरीरमें रहनेवाले 'मैं'के द्वारा उपलक्षित स्वरूप ब्रह्म नहीं है? ब्रह्म है न! चींटीके 'मैं'का असली अर्थ ब्रह्म है। जूएँके 'मैं'का असली अर्थ ब्रह्म है। पशु-पक्षीके 'मैं'का असली अर्थ ब्रह्म है। सब बल्बोंमें रोशनी हो रही है, पर सब रोशनीका अर्थ बिजली है कि नहीं है? तो दुनियामें चाहे, कोई किसी शरीरमें-ब्रह्माके शरीरमें, रुद्रके शरीरमें, इन्द्रके शरीरमें बैठकर, चींटी-मच्छरके शरीरमें बैठकर 'मैं-मैं' बोले, 'मैं'का असली अर्थ कौन है? वही ब्रह्म! अच्छा, इससे कृष्णका ज्ञान हो गया? नहीं। **आत्म स्वरूपतया विचक्षते पश्यन्ति**-पहले समझो कि सबके 'मैं' भगवान् ब्रह्म और फिर यह भी समझो कि मेरे 'मैं' भी भगवान् ही हैं। यह क्यों नहीं समझते हो? **आत्मात्मतया विचक्षते।**

भक्तलोग कहते हैं कि,

मैं सेवक सचराचर, रूपराशि भगवंत।

ऐसे कहते हैं, 'मैं' सेवक हूँ, भगवन्, आप भगवान्, आप भगवान्, आप भगवान्। यह तो ठीक। परन्तु, कोई दूसरा बोले कि आप भगवान्, तो भक्तको क्यों आपत्ति है? जब वह दूसरेको 'आप भगवान्' बोल सकता है, तो उसको भी कोई 'आप भगवान्' बोल सकता है कि नहीं? जितने पिता हैं, वे सब परमात्मा हैं कि नहीं हैं? सब परमेश्वर हैं। ईश्वर-बुद्धि की जाती है। अच्छा, जितने पिता हैं, वे ईश्वर हो गये। पितरोंको नमस्कार है। अच्छा, जितनी पत्नी हैं, उनके अपने-अपने

पति परमेश्वर हैं कि नहीं? पति-परमेश्वरको नमस्कार है। ब्रह्मचारी परमेश्वर है कि नहीं? नमस्कार है। 'नम आ बटुभ्यः।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी।

सब स्त्रियोंके रूपमें परमात्मा है, तो 'नमःस्त्रीभ्यः', 'नमः कुमारीभ्यः'।

अब देखो यह बात हुई कि जब भलुआ, पुरवा भी मिट्टी है और सकोरा भी मिट्टी है और घड़ा भी मिट्टी है, पति भी परमेश्वर है, पिता भी परमेश्वर है, पुत्र भी परमेश्वर है, पत्नी भी परमेश्वर है, बेटी भी परमेश्वर है।

त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।

बुड्ढाका रूप धारण करके लठिया टेकते हुए तुम्हीं चल रहे हो! यह परमेश्वर है!! इसका दर्शन खुलेमें होता है, अन्धेरेमें नहीं होता है। जादूका कोई खेल होवे तो थोड़ा अन्धेरा रखकर दिखाते हैं। यह जो लोग एकान्तमें बात करने आते हैं, कुछ-न-कुछ गड़बड़ उनके साथ लगी रहती है। गड़बड़ न हो तो एकान्तमें बात क्यों करें? सच्ची बात हो, ईमानदारीकी बात हो, खुलेमें कर लो, क्या है? कोई लोभकी बात होगी, कोई कामकी बात होगी, कोई मोहकी बात होगी, कोई द्वेषकी बात होगी-कुछ-न-कुछ गड़बड़ बात होगी, तब अन्धेरा चाहिए। गड़बड़ काम अन्धेरेमें होता है और सच्चा काम रोशनीमें होता है।

ईश्वर रोशनीमें मिलता है, अन्धेरेमें नहीं। इसमें आँख बन्द करनेकी जरूरत नहीं है। खुली आँखसे परमात्मा दिखता है। उसके लिए विचार बन्द करनेकी जरूरत नहीं है। विचार करते हुए परमात्मा मिलता है। खुली बुद्धिसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है। अन्धेरेमें जानेकी कोई जरूरत नहीं है।

अच्छा, सबकी आत्मा है परमात्मा और अपनी आत्मा है परमात्मा और यह दर्शन ही सच्चा ज्ञान है। परन्तु, इस बातको देखें किस आँखसे? आँख भी तो चाहिए।

गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा।

बिना किसी राग-द्वेषके प्रथम-दृष्टिमें बात सूझ जाती है, परन्तु, जिससे राग होता है, उसका दोष नहीं दिखता और जिससे द्वेष होता है, उसका गुण नहीं दिखता। राग-द्वेष-दोनों मनुष्यको अन्धा बना देते हैं। जिसका हृदय राग-द्वेषसे शून्य हो जाता है, उसको सत्यका साक्षात् दर्शन होता है। वह आँख कैसे मिले कि खुली आँखसे हम परमेश्वरको देखें!

जागत सोवत पड़े उताने,
कहे कबीर हम वही ठिकाने।

× × ×

धोबिया जलबिच भरत पिआसा।
जल में ठाड़ पिए न मूरख, अच्छा जल है खासा।।

× × ×

नदी में मीन पिआसी,
मोहि लखि-लखि आवत हाँसी।।

पानीके समुद्रमें मछली प्यासी है। अन्धेको हाथी भी कहाँ सूझता है? अन्धेको सूर्य भी कहाँ सूझता है?

गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानताम्बुधिम्।

देखो, उपनिषद् चक्षु है, नेत्र है। पर, नेत्रका अनुग्राहक देवता होता है। आपको मालूम है-यह आँख है, आँखसे सब कुछ दिखता है। परन्तु, रोशनी न हो तो आँखसे कुछ दिखेगा? तो आँख पर अनुग्रह करके आँखकी मदद करनेवाला कौन है? रोशनी है। सूर्यकी रोशनी हो, चन्द्रमाकी रोशनी हो, बिजलीकी रोशनी हो, तब आँख देख सकती है। तो उपनिषद् है आँख। परन्तु, आँखके लिए जैसे सूर्यकी रोशनी चाहिए, वैसे उपनिषद्की दृष्टिके लिए गुरु रूप सूर्य चाहिए। गुरु है सूर्य और उपनिषद् है आँख। अब यहाँ उपनिषद् शब्दका अर्थ पोथी नहीं है भला! कागजका नाम उपनिषद् नहीं है, स्याहीका नाम उपनिषद् नहीं है,

शब्दराशिका नाम उपनिषद् नहीं है। शब्द राशिरूप अपराविद्या है और अर्थ-राशि रूप ब्रह्म-विद्या है। अक्षर-ज्ञान 'यया अक्षरं अधिगम्यते'। अक्षर-ज्ञान क्या है? तत्त्वमस्यादि महावाक्यजन्य जो अखण्डार्थ-धी है, उसका नाम है 'उपनिषद्'। दो पदोंका जो एक अर्थ है-पद हैं, परे दोनोंका जो अर्थ एक है अखण्ड। पदके खण्डित होनेसे अर्थ खण्डित नहीं होता। तो दो खण्डित पदोंके द्वारा बोधित जो अखण्ड अर्थ है। *निरतिशय सामीत्येन 'नि' नितरां सीदति, गत्य अवसाद नेषु अवसादयति अविद्याम्*-बहुत पास रहकर, अपने अन्तःकरणमें रहकर अपने अविद्याके अन्धकारको दूर कर दे, उसका नाम है 'उपनिषद्'। 'नि' माने नितरां और 'षद्' माने अज्ञानान्धकार, विशीर्णकरत्वात्-जो भ्रान्तिको उजाड़ दे, ब्रह्मका अधिगम करा दे, अविद्याका ध्वंस कर दे, उस ब्रह्मात्मैक्य-बोधका ही नाम उपनिषद् है। उसको ही चक्षु बोलते हैं।

अच्छा, इस वृत्तिरूप नेत्रके लिए रोशनी किसकी चाहिए? गुरु रूप सूर्यकी। तब क्या होगा?

सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मा विचक्षते

यह चक्षु जब मिल जायेगा, तब जो सबका आत्मा है वही अपने आत्माके रूपमें मालूम पड़ने लगेगा। तब, **तरन्तीव भवानृताम्बुधिम्**-पारसे हो जाते हैं। बात यह है कि इस किनारे होवें और उस किनारे जाना हो और बीचमें नदीं बह रही हो तो चाहे तैर कर जाओ, चाहे नावसे जाओ। सचमुच जाना पड़ेगा। अपने घरमें आदमी बैठा हो तो क्या उसे अपने घरमें जानेके लिए किसी साधनकी जरूरत पड़ेगी, कहीं जाना पड़ेगा?

सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मा विचक्षते।

●

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां
तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम्।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा।।
(10.14.25)

'जो पुरुष परमात्माको आत्माके रूपमें नहीं जानते, उन्हें उस अज्ञानके कारण ही इस नामरूपात्मक निखिल प्रपञ्चकी उत्पत्तिका भ्रम हो जाता है। किन्तु ज्ञान होते ही इसका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। जैसे रस्सीमें भ्रमके कारण ही साँपकी प्रतीति होती है और भ्रमके निवृत्त होते ही उसकी निवृत्ति हो जाती है।

आज मैं 'चिन्तामणि' पत्रिकाके लिए चुटकुले लिखवा रहा था। पुराने-दो-तीन हजार वर्ष पहलेके जो चुटकुले हैं संस्कृतमें-उनको हिन्दीमें लिखवाया। न्याय, मीमांसा, वेदान्तके प्राचीन ग्रन्थोंमें वे उद्धृत हैं। एक चुटकुला था-

एक था राजा-चक्रवर्ती सम्राट्, बड़ा ही प्रतापी था। उसकी सेवामें एक नाई रहता था। एक दिन उसने अपने नाईसे कहा कि हमारे राज्यमें जो सबसे अधिक सुन्दर और स्वस्थ बालक हो-वह ढूँढकर ले आओ। हम उसको बहुत प्रेम करेंगे। उसका आदर करेंगे, उसको वृत्ति देंगे, वजीफा देंगे। तो नाईने सारे राज्यमें ढूँढा-ढूँढवाया और अन्तमें वह अपने बेटेको राजाके पास लेकर आया। उसका जो बेटा था, वह कोयलेकी तरह तो काला था और आँखका काना था और पेट उसका निकला हुआ था और सींकिया पहलवान था। तो राजाने उसे देख नाराज होकर कहा कि तू मेरे साथ मजाक करता है, मुस्ताखी करता है! लो, हम तुमको सजा देते हैं। नाईने राजाका पाँव पकड़ लिया और बोला कि नहीं, मैंने गुस्ताखी नहीं की है, मजाक नहीं किया है। मैं अपने

दिलकी सच्ची बात बताता हूँ कि मुझे अपने बच्चेसे ज्यादा स्वस्थ और सुन्दर दुनियामें और कोई लगता ही नहीं है। माने अपने दिलकी बात आपके सामने लाकर रखी है। मुझे दुनियाका कोई बालक इतना इच्छा नहीं लगता। तो राजाने कहा कि सच्ची बात है भाई! जहाँ राग होता है, वहाँ खोजबीन नहीं होती। राग मनुष्यकी दृष्टिको अन्धी बना देता है। इसका नाम 'नृपनापित न्याय' कहते हैं।

अच्छा, एक और सुनाते हैं, फिर आगे बढ़ेंगे।

एक आदमीने कुत्ता पाला। तो पतिको तो कुत्ता प्यारा था ही, पत्नीको भी बहुत प्यारा था। पतिने अपने सालेका जो नाम पड़ता, वह ही उस कुत्तेका रख दिया। पत्नीको भी बड़ी खुशी हुई। दिन भर बीस बार उस नामसे पुकारे और अपने भाईकी याद आवे। धीरे-धीरे वह कुत्ता भाई सरीखा हो गया। भाईका प्यार, पक्षपात सब आगया। अब पति जिसदिन कुत्तेकी तारीफ करे कि हमारा मोहन ऐसा, हमारा मोहन ऐसा, उसदिन तो पत्नी खूब खुश होवे और बढ़िया-बढ़िया बनाकर खिलावे। और, जिस दिन पति कुतेको गाली दे, या उसकी निन्दा करे या डाँटे या मारे, तब पत्नी कहे कि ये तो हमारे भाईका तिरस्कार कर रहे हैं। रूठ जाये, खाट पर सो जाये, रोटी न बनावे, लड़ने लगे, गाली देने लगे। वैसे तो पत्नी पतिकी मुट्ठीमें आगयी थी। वह जिसदिन हँसाना चाहे उस दिन हँसा दे और जिसदिन रुलाना चाहे उस दिन रुला दे। जिसदिन लड़ाई करना चाहे उसदिन लड़ाई कर ले। कुत्तेके प्रति राग हो जानेसे कि यह मेरा भाई है- पत्नी पतिकी मुट्ठीमें आगयी थी। अब यह सवाल हुआ कि भला सालेसे कुत्तेका क्या सम्बन्ध है? कहाँ साला रहता है मायकेमें और कुत्ता रहता है ससुरालमें। वह आदमी और यह कुत्ता। दोनोंमें कोई रिश्ता-नाता नहीं था। लेकिन नामके साथ तादात्म्य होनेपर और मोह हो जानेपर कि यह तो हमारा भाई सरीखा है, उसको गाली देनेपर पत्नीको अपनेको गाली लगे और तारीफ करने पर तारीफ लगे और दुःख लगे। इसमें यह बात कही गयी है कि संसारमें मूर्खताके सिवाय दुःखका और कोई कारण नहीं है।

तो आओ, ब्रह्माजीकी स्तुतिमें चलो।

यह जितनी दुनिया बनी है, यह अज्ञानसे बनी है। अज्ञानसे ही राग है, अज्ञानसे ही ममता है। अज्ञानसे ही कर्तृत्वका अहंकार है। संसारमें दुःख देनेवाली अगर कोई वस्तु है तो यह अहंकार ही है।

तीन बात कही गयी—आप समझदारीसे दुनियाके सब दुःखोंको मिटा सकते हैं। सचमुच मिटाना नहीं पड़ता। दुःख है ही नहीं। लेकिन एक बात है कि आप ईश्वरको ईश्वरके रूपमें जानो, अपने आत्माको आत्माके रूपमें जानो। यह बड़ा भारी आग्रह है।

एक दिन राधारानीकी मुँदड़ी खो गयी। तो गोपियाँ गयीं कृष्णके पास और बोलीं कि ओ महाराज, दे दो! कृष्ण बोले कि सखी, मैंने नहीं लिया है। सखी बोली कि भलेमानुस, कौन कहता है कि तुमने लिया है? हम तो कहते हैं कि दे दो! हम शायद मुँदड़ी माँग रहे हों, शायद पीताम्बर माँग रहे हों। हम चाहे शायद तुम्हारी गुँगचीकी माला माँग रहे हों। तुमने किस चीजके लिए कहा है कि मैंने नहीं लिया है। कौन-सी चीज तुमने नहीं ली है? अब तो श्यामसुन्दर छटपटाने लगे, गोपियोंने पकड़ा कि जिस चीजको तुमने लेनेको मना किया है, वह चीज तुम्हारे पास है। चोर पकड़ा गया।

आत्मानमेवात्मतयाविजानतां
तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम्।

अपने आपको ठीक अपने आपके रूपमें, ब्रह्मके रूपमें न जाननेके कारण यह सम्पूर्ण प्रपञ्च उत्पन्न हुआ है। अज्ञानसे प्रपञ्च उत्पन्न हुआ है। माने ज्ञानसे ब्रह्म है, अज्ञानसे प्रपञ्च है।

ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा।।

अब नियम देखो! अज्ञानसे जो चीज पैदा होती है, दरअसल वह पैदा होती नहीं और ज्ञान अप्राप्तको ही मिटाता है। नित्य-निवृत्तको ही निवृत्त करता है—यह नियम है। अगर ज्ञानसे साँप मिट गया तो साँप था

ही नहीं। और, अज्ञानसे साँप बन गया तो साँप बना ही नहीं। रस्सीके अज्ञानसे साँप बन गया और रस्सीके ज्ञानसे साँप मिट गया, इसलिए साँप नहीं है, रस्सी है। ब्रह्मके अज्ञानसे प्रपञ्च बन गया और ब्रह्मके ज्ञानसे प्रपञ्च मिट गया अर्थात् प्रपञ्च न बना, न मिटा; ब्रह्म ही है।

तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम्।

अब देखो यह बात सिद्ध होती है। चाहे यह प्रपञ्च जितना बड़ा हो, ज्ञानके एक झटकेमें निवृत्त हो जाता है। कोई खटपट नहीं रहती। दृष्टान्त क्या दिया?

रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा।

जैसे रस्सीमें साँप पैदा होता है और साँप मर जाता है।

अच्छा, आप यह बताओ कि 'तरन्ती इव' क्यों बोलते हो? ज्ञानसे तरते हैं, यह सिद्ध हो गया। पर, तरते नहीं हैं, तरतेसे हैं।

एक आदमी बीमार पड़ा। तो वह चिल्लाया था कि हमको हमारे घर पहुँचा दो। लोग उसको समझाते थे कि अरे भाई, तुम अपने घरमें ही तो हो! अब किस घरमें पहुँचना चाहते हो? वह बोले कि नहीं-नहीं, यह तो जंगल है, मैं तो नदीके पार आगया हूँ। तो उसकी बेहोशी दूरकी गयी। जब बेहोशी दूर हुई तो देखता है कि अपने घरमें ही है।

असलमें तुम अपने आपको छोड़कर कहीं और चले गये? अपने आपको आलमें रखकर बाजारमें घूमने गये हो? तुम अपनेको कैसे छोड़ सकते हो?

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ
द्वौ नाम नान्यौस्त ऋतज्ञभावात्।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे
विचार्यमाणे तरणाविवाहनी।।

(10.14.26)

संसार सम्बन्धी बन्धन और उससे मोक्ष-ये दोनों ही नाम अज्ञानसे कल्पित हैं। ये सत्य और ज्ञानस्वरूप परमात्मासे भिन्न

अस्तित्व नहीं रखते। जैसे सूर्यमें दिन और रातका भेद नहीं है, वैसे ही विचार करने पर अखण्ड चित्स्वरूप केवल शुद्ध आत्मतत्त्वमें न बन्धन है और न मोक्ष है।'

जैसे विचारमें देखो तो सूर्यमें रात और दिनका भेद नहीं है। सूर्यने कभी रातका मुँह ही नहीं देखा और जिसने रातका मुँह ही नहीं देखा, उसके लिए दिन कहाँसे होगा? इसी प्रकार जो अखण्ड चेतन है, केवल है अद्वैत, सर्वाधिष्ठान हैं, स्वयंप्रकाश अपनी आत्मा है, उस 'ऋतज्ञभावात्'-अबाधित सत्य और ज्ञानके भावसे, उसकी सत्तासे अलग न कोई बन्धन है, न कोई मोक्ष है। यह तो अज्ञानके ही दो नाम हैं-एक बन्धन और एक मोक्ष। जबतक अपने स्वरूपका अज्ञान है, तबतक हम बन्धनसे भयभीत होते हैं और मोक्ष चाहते हैं। और, अपने स्वरूपका ज्ञान हो गया तो बन्धन कुछ है नहीं। मोक्ष किससे चाहेंगे?

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता।।

(10.14.27)

'भगवन्! कितने आश्चर्यकी बात है कि आप हैं अपने आत्मा, पर लोग आपको पराया मानते हैं। और, शरीरादि है पराये, किन्तु उनको आत्मा मान बैठते हैं और इसके बाद आपको कहीं अलग ढूँढने लगते हैं। भला, अज्ञानी जीवोंका यह कितना बड़ा अज्ञान है।'

मनुष्यका आत्मा कौन है? जीवका आत्मा कौन है? सम्पूर्ण वस्तुओंका, व्यक्तियोंका आत्मा कौन है? प्रमाण और निर्माणका आत्मा कौन है? निर्वाणका भी आत्मा कौन है? ब्रह्माजी बोले तुम हो! परमात्मा अपना आत्मा है-

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च।

तुम हो अपने आत्मा और तुमको मान लिया पराया-'परं मत्वा'। 'आत्मानं सन्तं त्वां परं देहादि मत्वा'-तुम हो तो आत्मा, परमप्रेमास्पद। परन्तु, देहको परमप्रेमास्पद मान लिया। आत्माको देह मान लिया और

देहको आत्मा मान लिया-परस्पर अध्यास हो गया। अब बोले कि हमको तो आत्मा चाहिए, परमात्मा चाहिए। ढूँढने जा रहे हैं। ब्रह्माजीने कहा, **अहोऽज्ञजनताज्ञता।** यह पढ़े-लिखे लोग कभी-कभी चमत्कार कर देते हैं। यह समझदारोंकी मूर्खता है। शिक्षितोंकी, पठितोंकी यह मूर्खता है! क्या मूर्खता है? पढ़े-लिखे होकर परमात्माको ढूँढने जाते हैं, कहाँ ढूँढने जाते हैं? बोले-समुद्रमें ढूँढने जाते हैं, आकाशमें ढूँढने जाते हैं, जंगलमें ढूँढने जाते हैं। अरे जिसको तुमने अपने दिलमें नहीं पाया, वह क्या बाहर मिलेगा? इसी प्रसंगमें श्रीधर स्वामीने कहानी लिखी है-

एक बुढ़िया रातके समय सड़क पर रोशनीमें कुछ ढूँढ रही थी। किसीने पूछा कि क्या ढूँढ रही हो माई? वह बोली कि सुई। 'कहाँ खोयी थी?' 'खोयी तो घरमें थी'। 'घरमें खोयी थी तो सड़क पर क्यों ढूँढ रही है?' वह बोली कि घरमें दीया नहीं था, सड़क पर रोशनी थी, सो मैंने सोचा कि चलो सड़क पर ही ढूँढो। तो '**नहि गृहे नष्टं वने मृग्यते**'-घरमें चीज खोयी हो तो वह बाहर नहीं मिलती है। रसोई ऐसी बनाओ कि कड़वा मुँह मीठा हो जाये। मीठा भी कड़वा हो जाये, ऐसी रसोई मत बनाओ।

एकने दालमें करेला काटकर डाल दिया। आप जानते हैं क्या होगा उसका? कड़वे करेलेका रस तो छूटेगा नहीं और दाल भी कड़वी हो जायगी। रसोई बनानेका मतलब है कड़वेको मीठा करना, मीठेको कड़वा करना नहीं। दुःखी जीवनको सुखी बनाना-यह मनुष्यका पौरुष है। सुखी जीवनको दुःखी बनाना-यह मनुष्यके जीवनका पौरुष नहीं है। आओ-आओ, परमेश्वरको ढूँढें। परमप्रेमास्पद परमात्माको ढूँढें। कहाँ? बोले कि इसी शरीरमें है।

हमारे गाँवमें भाद्रपद मासमें अनन्त-चतुर्दशीका व्रत होता है। अनन्तकी पूजा होती है, वह साक्षात् नारायण है-यह उसका अभिप्राय है। अनन्त माने साक्षात् नारायण, तो एक बड़े कटोरेमें दूध डालकर उसमें अनन्तको डाल देते हैं। सूतवाला अनन्त नहीं, सोनेका अनन्त।

फिर हाथ डालकर ढूँढते हैं। हमने अनन्तकी कथा बहुत की है।वैसे हमारी रुचि नहीं थी। तो नारायण, कथाके समय दूधके बर्तनमें एक आदमी हाथ डालता तो उससे पूछते कि 'का ढूँढेला'? 'क्या ढूँढ रहे हो?' बोलता कि 'अनन्त फल'। कहाँ? बोलता कि क्षीरसागर समुन्दरमें। 'पवला'? 'मिलल'? 'ना ही'। तीन बार जब पूछ लेते, तब चौथीबार बोलते कि पवली, पवली, पवली-मिल गया, मिल गया, मिल गया। देखो, तीनमें नहीं मिलता चौथेमें मिलता है। जाग्रत् -स्वप्न-सुषुप्तिमें नहीं मिलता, तुरीयमें मिलता है। विश्व-तैजस-प्राज्ञमें नहीं मिलता, तुरीयमें मिलता है।

तो नारायण, इस शरीरमें परमेश्वर है। प्रेमका स्वरूप, प्रेमका उल्लास है।

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव
ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण
सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः।।

(10.14.28)

'हे अनन्त! आप तो सबके अन्तःकरणमें ही विराजमान हैं। इसलिए संत लोग आपके अतिरिक्त जो कुछ प्रतीत हो रहा है, उसका परित्याग करते हुए अपने भीतर ही आपको ढूँढते हैं। क्योंकि यद्यपि रस्सीमें साँप नहीं है, फिर भी उस प्रतीयमान साँपको मिथ्या निश्चय किये बिना भला कोई सत्पुरुष सच्ची रस्सीको कैसे जान सकता है?'

'अन्तर्भवे' माने अन्तर्शरीरे। हे अनन्त प्रभु, इस शरीरके भीतर ही आपको संतपुरुष देखते हैं। कैसे? अपनी नजरसे जो ईश्वर न मालूम पड़े, उसको छोड़ते जाओ। देखो, वास्तवमें साँप नहीं है। लेकिन जबतक बुद्धिसे साँपका निषेध नहीं करोगे, रस्सीको नहीं पहचानोगे। पहले साँपका निषेध करो, फिर रस्सीको पहचानो। तब फिर साँप रहेगा ही नहीं। पहले अपवाद करके,

असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमुयन्ति सन्तः।

आपको एक बात सुनाते हैं।

रस्सी माने क्या है? रस्सी माने है जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिको समन्वित करनेवाला आत्मत्व। और, साँप क्या है? यह अहंकार, जो फुँफकारता है। अहंकार ही साँप है। इसी पर चोट लगती है तो फुँफकार देता है। कभी कोई चोट मारता है, तब लगती है और कभी अपने आप ही कल्पना हो जाती है कि इसने हमको चोट मार दी। बोले कि अपने आप कल्पना हो जाती है तो उससे क्या फायदा है? फायदा है। साँप जब सोता रहता है तब उसका पता नहीं चलता और जब फुँफकारता है, तब पता चल जाता है कि 'है'। तुम्हारी रस्सीमें साँप है कि नहीं? तुम्हारी आत्मामें अहंकार जुड़ा हुआ है कि नहीं? तो जब वह फुँफकार बैठता है तब स्वयं भयभीत होता है और दूसरेको भी भयभीत कर देता है। यही तो साँप हैं।

अब आगे बहुत बढ़िया भक्तिका प्रसंग आ रहा है। भक्त लोग खुश हो जायेंगे। भक्त प्रसन्न होते हैं तो भगवान् भी प्रसन्न हो जाते हैं। मैंने भगवान्‌से पूछा, 'खुश हो कि नाराज हो'? बोले कि क्या बतावें, हमारा दिल तो भक्तोंके शरीरमें हैं। भगवान्‌को तकलीफ कब पहुँचती है? जब उनके भक्तको तकलीफ पहुँचती है।

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ।।

(10.14.29)

'अपने भक्तजनोंके हृदयमें स्वयं स्फुरित होनेवाले भगवन्! आपके ज्ञानका स्वरूप और महिमा ऐसी ही है, उससे अज्ञानकल्पित जगत्‌का नाश हो जाता है। फिर भी जो पुरुष आपके युगल चरण-कमलोंका तनिक-सा भी कृपा-प्रसाद प्राप्त कर लेता है, उससे

अनुगृहीत हो जाता है, वही आपकी सच्चिदानन्दमयी महिमाका तत्त्व जान सकता है। दूसरा कोई भी ज्ञान-वैराग्यादि साधनरूप अपने प्रयत्नसे बहुत काल तक कितना भी अनुसंधान करे, वह आपकी महिमाका यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता।'

अच्छा, एक अपनी तारीफकी बात आपको सुनावें। खुशीसे सुनो तो सुनावें!

मैं वृन्दावनमें श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके आश्रममें रहता था। एक दिन एक महात्मा आये। श्रीउड़ियाबाबाजी उनसे थोड़ा संकोच ही करते थे। आये, तो हमारी किसीने उनसे कोई शिकायत कर रखी होगी। तो उन्होंने कुछ कड़ी-कड़ी बातें बाबाके सामने ही मुझसे कहीं। अब हमारा ख्याल था कि ये जो महात्मा हैं, ये हमारे बहुत परिचित हैं, बड़े प्रेमी हैं। ये जो कुछ बोलते हैं, प्रेमसे बोलते हैं। हमारे मनमें रत्ती भर भी कुछ ख्याल नहीं आया कि ये कोई मान-अपमानकी बात कर रहे हैं या तिरस्कार कर रहे हैं। उन्होंने कान भी पकड़ लिया! लेकिन हमें यही ख्याल था कि ये जो हमारे बहुत प्रेमी है। सचमुच प्रेमी हैं। अब वे तो चले गये और मैं जब महाराजके साथ भोजनके लिए बैठा तो बाबा बड़े उदास दिखे। अब हमारी तो समझमें ही नहीं आवे कि क्यों उदास हैं? तो उनके एक भक्तने पूछा कि महाराज, आपके चेहरे पर तो कभी उदासी नहीं रहती है। आज आप उदास क्यों दिखते हैं? तब बाबाने बताया कि मेरे सामने एक साधुने इनका अपमान कर दिया, उससे हमको दुःख हो गया। मैंने कहा कि अपमान कब किया उन्होंने? हमारा तो उनसे कई वर्षोंसे परिचय है और हमारा उनका बहुत प्रेम है। उन्होंने अपमान कहाँ किया? उन्होंने तो प्रेमका व्यवहार किया। हमारे ख्यालमें तो अपमान आया ही नहीं। अरे, उसके बाद बाबाने वो पीठ ठोंकी हमारी, खुश हो गये और बोले कि बेटा, जीत गया, जीत गया। तुमको मालूम ही नहीं पड़ा कि वे अपमान कर रहे हैं। जो सचमुच अपमान कर रहे थे और, तुमको नहीं मालूम पड़ा तो जीत गये। हम तो समझते थे कि तुमको

दुःख हुआ होगा। देखो, तारीफ तो इसमें हमारी है जरुर! लेकिन उड़ियाबाबाजी साक्षात् परब्रह्म परमात्मा स्वरूप वे दुःखी क्यों? हमारे दुःखका ख्याल करे। जब उनको मालूम हुआ कि हमको कोई दुःख ही नहीं है, हमको ख्याल ही नहीं कि कोई दुःखका निमित्त बना-ऐसे प्रसन्न हुए, ऐसे प्रसन्न हुए कि आपको क्या बतावें।

असलमें ईश्वरकी प्रसन्नता जो है, वह भक्तकी प्रसन्नता है। ईश्वरने अपने लिए तो अन्तःकरण ही नहीं रखा। भक्तको दे दिया। तुम खुश तो हम खुश। क्या आपको सुनावें?

जा थल कीन्हें विहार अनेकन,
ता थल बैठ के काँकरि चुनयो करें!
जा रसना सो करि बहु बातन,
ता रसना सों चरित गुनयो करें।।

जहाँ भगवान्‌के साथ अनेक विहार किये थे, अब वहाँ बैठकर कंकड़ चुनते हैं। जिस जीभसे बहुत बातें की, उससे अब उनके गुणानुवादका चिन्तन करते हैं। बाबाका स्मरण हो आया, इसलिए यह बात करते हैं।

तो जिसपर भगवान्‌की कृपा होती है, 'जानाति तत्त्वं'।

संसारमें सबसे बड़ा असहाय वह है, ब्रह्मनिष्ठ, जीवन्मुक्त महापुरुष साक्षात् ब्रह्म जिसका मददगार नहीं है। और, उसीका अहंकार सबसे बड़ा प्रबल है, जिसने किसी महापुरुषके चरणोंमें सिर नहीं झुकाया।

ब्रह्माजी कहते हैं हे देव, यह सब सच है कि यह संसार-सागर झूठा है। इसमें न बन्धन है, न मोक्ष है। यह केवल अज्ञानसे ही ऐसा भासता है। बिलकुल सच है। ज्ञान होते ही मिट जाता है, ठीक। न कुछ है, न कुछ मिटता है-यह भी ठीक है। यह जो बात कही गयी है, सब सच है। लेकिन यह बात जानता कौन है? ये जो बातें कही गयी हैं, इसमें निष्ठा किसकी होती है? प्रतिष्ठा किसकी होती है? बोले कि आपके युगल चरण-कमलके प्रसादलेशसे जो अनुगृहीत है, वही इस

ब्रह्म-तत्त्वको जान सकता है। जिसके ऊपर आपके चरण युगलका प्रसाद नहीं है, वह नहीं जान सकता।

न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्।

जाओ, सौ-वर्ष तक जंगलमें रहो और चिरकाल तक वेदान्त-वाक्योंसे उसको ढूँढो! लेकिन गुरुदेवके चरणारविन्दकी कृपा नहीं है तो कुछ हासिल नहीं होगा। आप बताओ जब आप ढूँढनेका भाव लेकर निकले, आपको कैसे मिलेगा ब्रह्म? बड़ी भारी बाधा है। क्या बाधा है? तुम ढूँढनेकी क्रियाके कर्त्ता बने हुए हो, तुम अपनेको ब्रह्म कैसे जान सकोगे? जब कोई बतावेगा कि अरे ओ ढूँढनेवाले, ब्रह्म सामने है, यह भ्रम छोड़! ढूँढनेका प्रयत्न छोड़। यह जो ढूँढनेकी वृत्ति है, इसका जो साक्षी है तू, सो ही तो ब्रह्म है। कहाँ ढूँढकर पाओगे?

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्।।

(10.14.30)

स्वामी, मेरे लिए सबसे बड़े सौभाग्यकी बात यह है और यही मुझे चाहिए, और कुछ चाहिए नहीं-इस जन्ममें मिले तो इस जन्ममें मिले, दूसरे जन्ममें मिले तो दूसरे जन्ममें मिले, पशु-पक्षी होनेसे मिले तो पशु-पक्षी होने पर मिले-लेकिन यह सौभाग्य मुझे जरूर मिले। क्या मिले? कि मैं आपका कोई बन जाऊँ!

येनाह मे कोऽपि भवज्जनानां भूत्वा

आपके भक्तोंमें-से, प्रेमियोंमें-से, सेवकोंमें-से मैं कुछ हो जाऊँ! 'अरे होकर क्या करोगे तुम?' **भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्**

कैसे भी आपके पाद-पल्लवकी सेवा हमें प्राप्त हो। अरे ब्रह्म तो हम हैं। अपने आपको कहीं पाना है? जिस ज्ञानसे सब मालूम पड़ रहा है, उस ज्ञानको पाना है? वह तो हम खुद हैं।

कल मैं 'अहंकार-कौस्तुभ' पढ़ रहा था। संस्कृतमें श्लोक है, उसमें आया कि एक महात्मा मरते समय रो रहे थे। तो दूसरेने पूछा कि महात्माजी, क्यों रो रहे हो? क्या तुमको भगवान् नहीं मिले? बोले कि भगवान् तो मिल गये। 'तब फिर रोते क्यों हो?' तब क्या भगवान्का प्रेम नहीं मिला'? 'नहीं, प्रेम भी मिला भगवान्का।' तब फिर मरते समय रोते क्यों हो'? बोले कि सब कुछ मिल गया, पर साधुता नहीं मिली। इसलिए रो रहा हूँ। भगवान् मिल गये, भगवान्का प्रेम मिल गया। पर, मैं सच्चा साधु नहीं हुआ। इसके लिए रो रहा हूँ।

वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

श्रीउड़ियाबाबाजी कहते थे कि बेटा, ज्ञान तो बहुतोंको हो जाता है। पर, ज्ञान-निष्ठ बहुत कम होते हैं। ज्ञान-निष्ठा माने ज्ञानके बल पर ही जीवनका व्यतीत होना। अन्यके बल पर नहीं, सेठके बलपर नहीं, राजाके बलपर नहीं, कोई देवी-देवताके बलपर नहीं, ईश्वरके बलपर नहीं। मिथ्या है सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत् -इसी आधार पर प्रत्येक धर्माधर्म, प्रत्येक भावाभाव, प्रत्येक योगायोग, प्रत्येक जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति। केवल इस ज्ञानके बल पर होना कि आत्मतत्त्वके सिवाय सब मिथ्या है। ज्ञान तो हुआ, पर ज्ञान-निष्ठा नहीं हुई। देखो, यही बोलते हैं-

येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम्।।

ब्रह्माजीको ऐसा लग रहा है कि यह सृष्टि रचनाका कार्य छोड़ केवल भगवान्के श्रीचरणोंका सेवन ही सार्थक है। आगे ब्रह्माजी कहते हैं-

अहोऽति धन्या व्रजगोरमण्यः
स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना
यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वरः।।

(10.14.31)

'मेरे स्वामी! जगत्के बड़े-बड़े यज्ञ सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर

अबतक आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके। परन्तु आपने व्रजकी गायों और ग्वालिनोंके बछड़े-एवं बालक बनकर उनके स्तनोंका अमृत-सा दूध बड़े उमंगसे पिया है। वास्तवमें उन्हींका जीवन सफल है, वे ही अत्यन्त धन्य हैं।'

भगवान्, मैं तो ब्रह्मा हूँ, देवताओंका भी पूज्य हूँ। किन्तु, मुझको आज मालूम पड़ा, आज आँख खुल गयी मेरी। क्या? ये वृन्दावनकी गौएँ और यहाँकी गोपियों-ये अतिशय धन्यवादकी पात्र है। मुझसे भी बढ़कर! अपनेको तो भूरिभाग्य कहा और वृन्दावनकी गौओं और गोपियोंको ब्रह्माजी 'अतिधन्या' कह रहे हैं। क्यों? आपने बछड़े बनकर गौओंका स्तनपान किया और बालक बनकर गोपियोंका स्तनपान किया। स्तनसे निकलनेवाला दूध अमृतमय है। और, आपने इन दोनोंके दुग्ध रूपी अमृतका बड़े मौजसे पान किया है। शिशु जैसे माताओंका स्तन-दूध पीते हैं तो कितने डूबे रहते हैं। प्रसन्न रहते हैं। ऐसे ही तो भगवान्ने भी पान किया। भगवान् तो पूरी लीलाकर रहे थे। तो अत्यन्त मोदसे युक्त होकर आपने बछड़ोंके रूपमें जिन गौओंका स्तनपान किया और बच्चोंके रूपमें गोपियोंके स्तन्यामृतका पान किया-इसलिए ये अत्यन्त धन्य हैं। ब्रह्माजी, 'इसमें क्या उनकी धन्यता है भला'? ब्रह्माजी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, **यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः।**

देखिये, भगवान्की तृप्तिके लिए वैदिक यज्ञ है। उनके द्वारा भगवान्की पूजा की जाती है, भगवान्को भोग लगाया जाता है, भगवान्की आराधना की जाती है। किन्तु, सृष्टिके आदिसे लेकर हजारों, करोड़ों यज्ञ हो गये-भगवान्को भोग लगाया गया, उनको तृप्त किया गया। पर भगवान् तृप्त नहीं हुए। यह तो वर्णन आता है कि अग्नि भी भगवान्का मुख है। पर उससे भी भोजन करने पर भगवान् प्रसन्न नहीं होते, जितना ब्राह्मणके मुखसे भोजन करने पर होते हैं। कुछ इसी तरहकी बात यहाँ ब्रह्माजी कहते हैं कि अनादि कालसे यज्ञोंके द्वारा

आपकी आराधना की जाती है, आपको भोग लगाया जाता है, लेकिन आप तृप्त नहीं हुए, छके नहीं। जितनी तृप्ति आपको यहाँ गायों और गोपियोंका दूध पीनेसे हुई है।

अब देखिये, अगर भगवान् इस तरहसे ऐसी लीला प्रकट नहीं करेंगे तो जीवका हित नहीं होगा, कल्याण नहीं होगा। यज्ञादिमें तो वहाँ कर्म-काण्ड पूरा किया जाता है-इनको अर्पण करो, उनको अर्पण करो। भाव तो वैसे वहाँ भी वैसा ही चाहिए। लेकिन वहाँ विधि-विधानकी प्रधानता रहती है। विधि-विधानकी प्रधानतामें वह प्रेम टिक नहीं पाता। माँके हृदयमें पुत्रको दूध पिलानेका प्रेम होगा, वह प्रेम वहाँ कहाँसे आवेगा? इसलिए, ब्रह्माजी कहते हैं कि अनादि-कालसे सारे यज्ञ आपको भोजन करा रहे हैं, तृप्त करा रहे हैं। लेकिन, आपको तृप्त नहीं कर पाये। लेकिन यहाँ आकर आपने बड़े चावसे इनका दूध पीया है। इसलिये ये उन याज्ञिकोंसे भी भाग्यशाली हैं। ब्रह्माजीके कहनेका भाव यह है कि आपकी भक्ति, आपसे प्रेम करनेवाला जन्म देवता, ऋषि आदिसे भी श्रेष्ठ हैं।

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।।

(10.14.32)

'अहो, नन्द आदि व्रजवासी गोपोंके धन्य भाग्य हैं। वास्तवमें उनका अहोभाग्य है। क्योंकि परमान्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृद् हैं।'।

श्रीभगवान्के प्रति प्रेमभाव क्या होता है, यही तो सीखना है। भगवान्के लीला-चरित्रोंसे और भगवान्की लीलामें सम्मिलित भक्त-चरित्रोंसे भवगत्प्रेम कैसा होता है, यह सीखना है। ब्रह्माजी संभ्रममें बार-बार कहते हैं, 'अहो भाग्यं, अहोभाग्यं किनका सौभाग्य है ब्रह्माजी? नन्दके व्रजमें रहनेवाले निवासी-माने सब गोप और गोपियाँ-इनका बड़ा सौभाग्य है। क्यों? क्यों इतना बड़ा सौभाग्य है कि ब्रह्माजी

प्रशंसा कर रहे हैं? कहते हैं कि देखो, जो पूर्ण परब्रह्म सनातन परमानन्द स्वरूप हैं वे इसके मित्र बने हुए हैं, हितैषी बने हुए हैं। उनका भाग्य अपरिच्छिन्न है। माने पहले भी इनका महान् भाग्य, अब भी और आगे भी रहेगा-इसके लिए दुरुक्ति कही गयी।

देखो, संसारमें जितने भी सम्बन्ध हम-आपको प्राप्त हुए हैं या प्राप्त होते रहते हैं, इन सबका पूर्वके कर्मोंसे सम्बन्ध है। पूर्वजन्मके कर्मके अनुसार माता-पिता, भाई-बन्धु, पुत्र-पत्नी, परिवार सब सम्बन्ध हैं। यहाँ तक कि शत्रु-मित्र भी। किन्तु, यहाँ इनकी महिमा देखिये। इनके सगे-सम्बन्धी मित्र सब कुछ परमानन्द स्वरूप सनातन परब्रह्म भगवान् हैं। इसलिए इनके भाग्यका कौन वर्णन कर सकता है?

नारायण, वेदार्थ अनुभवमें दिखायी देना चाहिए। वेदान्त-दर्शन, भक्ति-दर्शन केवल शब्द नहीं है। वह दिखनेकी वस्तु है। दृष्टिगोचर होना चाहिए। तो ब्रह्माजीको दृष्टिगोचर हो रहा है, इसलिए तो वर्णन कर रहे हैं, कथन कर रहे हैं और भगवान्के सामने कथन कर रहे हैं जैसे कोई गवाही देनेके लिए गंगाके सामने शपथ ले कि झूठ नहीं बोल रहे हैं।

एषां तु भाग्य महिमाच्युत तावदास्ता-
मेकादशैव हि वयं बव भूरिभागाः।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः
शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते।।

(10.14.33)

'हे अच्युत! इन व्रजवासियोंके सौभाग्यकी महिमा तो अलग रही-मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताके रूपमें रहनेवाले महादेव आदि हम लोग बड़े ही भाग्यवान् हैं। क्योंकि इन व्रजवासियोंकी मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंको प्याले बनाकर हम आपके चरणकमलोंका अमृतसे भी मीठा, मदिरासे भी मादक मधुर मकरन्द-रसपान करते रहते हैं। जब उसका एक-एक इन्द्रियसे पान करके हम

धन्य-धन्य हो रहे हैं, तब समस्त इन्द्रियोंको उसका सेवन करनेवाले व्रजवासियोंकी तो बात ही क्या है।'

इन व्रजवासियोंकी महिमाको तो एक जगह रखिये।

देखो, हम सबकी ग्यारह इन्द्रियोंके एक-एक अधिदेव हैं। ब्रह्माजी कहते हैं कि इन सब व्रजवासियोंकी ग्यारह-ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। अच्छा, उन इन्द्रियोंमें अनुग्रह करनेवाले सूर्य-चन्द्र आदि देवता-गण हैं। उनमें-से ब्रह्मा भी एक देवता हैं। ब्रह्माजी कहते हैं कि इन ग्यारह इन्द्रियोंके जो हम अलग-अलग ग्यारह देवता हैं-हम लोगोंका बहुत बड़ा भाग्य है। क्यों? असलमें इन व्रजवासियोंकी जो इन्द्रियाँ हैं, इनमें हम सब देवता रहते हैं। तो इन्द्रियाँ जो हैं, पात्र हैं, बर्तन हैं। जैसे देखो, अमृत पीना है तो चम्मचसे लेकर मुखमें डाल लो। तो ब्रह्माजी कहते हैं कि हम ग्यारहों देवता इनकी इन्द्रियरूपी चम्मचसे भगवान् के चरण-कमलका आसवरूपी अमृत पी रहे हैं। जो कामके देवता है, उनको क्या भगवान्का रस मिलेगा? भगवान्की कीर्ति सुनेंगे, महिमा सुनेंगे? इसीमें वे महान् भाग्यशाली हो जायेंगे। नेत्रके देवता सूर्य क्या पायेंगे? भगवान्के रूप माधुर्यका पान करेंगे। ऐसे करके देवता भगवान्के चरणोंका स्पर्श पायेंगे। ऐसे एक-एक देवता भगवान्के एक देशका भी सेवन करने पर भी कृतार्थ हो रहे हैं।

अब देखो, उन ग्यारह देवताओंको तो एक-एक इन्द्रियके द्वारा ही रस मिलेगा। परन्तु ये व्रजवासी तो ग्यारहों इन्द्रियोंके द्वारा भगवान्के चरण-कमलका रसपान कर रहे हैं, भगवान्के चरणकमलका रस ऐसा है कि अमृत भी उसके सामने फीका हो जाता है और उसे पीकर मनुष्य ऐसा तृप्त हो जाता है कि फिर संसारका ध्यान ही नहीं रहेगा कि संसार कहाँ गया।

●

तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपिकतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजःश्रुतिमृग्यमेव।।
(10.14.34)

'प्रभो! इस व्रजभूमिके किसी वनमें और विशेष करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही हमारे लिए बड़े सौभाग्यकी बात होगी। क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी-न-किसी प्रेमीके चरणोंकी धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायेगी। प्रभो! व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है। आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं। इसलिए उनके चरणोंकी धूलि मिलना आपके ही चरणोंकी धूलि मिलना है। और, आपके चरणोंकी धूलि तो श्रुतियाँ भी अनादिकालसे अबतक ढूँढ ही रही हैं।

ब्रह्माजीने कहा कि हमको मुक्ति नहीं चाहिए और हमको ब्रह्म-लोकमें रहकर ब्रह्मा होनेकी इच्छा नहीं है। हम तो जन्म चाहते हैं। सो भी मथुरामें नहीं, गोकुलमें और गोकुलमें भी जहाँ गौएँ चरती हैं, उस वनमें और वहाँ भी कोई-सा जन्म पशु, पक्षी, कीड़ा-मकौड़ा। मैं मनुष्य होने योग्य नहीं हूँ गोकुलमें। मैं गाय होने योग्य नहीं हूँ गोकुलमें। मैं तो मनुष्योंका अपराधी, गायोंका अपराधी-उनके बच्चों और बछड़ोंको चुराने वाला!

यदि मनुष्यको अपने किये हुए बुरे कर्म पर पश्चाताप नहीं होता है तो समझ लेना कि वह सकल परमार्थसे भ्रष्ट है। अन्तःकरणकी शुद्धिसे भ्रष्ट, धर्मसे भ्रष्ट है। गुरु, देवताके प्रसादसे भ्रष्ट है। अपनीकी हुई गलती पर पश्चाताप तो होना ही चाहिए। चाहे ब्रह्मा हो, चाहे रुद्र-एक बार अपराध हुआ, साधन-च्युति हुई, तो आगे गड़बड़ी न हो। आगेके लिए

अन्तःकरणमें एक ऐसा दृढ़ संस्कार पैदा करनेके लिए पश्चातापकी अपेक्षा होती है। जैसे जला दिया। पश्चाताप माने अन्तःकरणको दाग दिया, तप्त कर दिया-फिर ऐसा नहीं करना बच्चू! और, यदि अपने किये हुए गलत कामपर पछतावा नहीं होता तो समझना वह लोहा है, पत्थर है, लकड़ी है। वह लोक-सुखसे, परोलक-सुखसे भ्रष्ट है। वह धर्महीन है। अशुद्ध अन्तःकरण है। वह परमार्थकी प्राप्तिके योग्य नहीं है।

तद्भूरिभाग्यमिहजन्मकिमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपिकतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।

ब्रह्माजी तुम इतने दीन-हीन क्यों हो रहे हो?

हाय-हाय, मुझसे गलती हुई! बच्चोंको अलग करके एक वर्ष तक उनका जो मातृत्वका सुख था, उससे उन्हें मैंने वंचित कर दिया। बछड़ोंके एक वर्षके सुखसे हमने वंचित कर दिया। भगवत्प्राप्तिसे वंचित किया, मातृ-स्नेहसे वंचित किया, वृन्दावनसे वंचित किया। हमको तो उसका अपराध काट रहा है। इसलिए, हमको एक घास बना दो वृन्दावनमें कि यहाँके किसीके 'कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।' हमको एक महात्माने पूछा, जैसे कि उनको मालूम न हो कि 'कतम'का क्या अर्थ है। जब मैंने बताया कि उन्होंने कृपापूर्वक बताया कि यहाँ 'कतम' शब्दका अभिप्राय यह है-वे यह नहीं कहते हैं कि हम ब्रजवासी मनुष्य हो जायें और हमारे ऊपर धूलि पड़े। यह नहीं कहते हैं कि हम ब्रजवासी पशु हो जायें तो धूलि पड़े। क्योंकि, मनुष्य और पशुओंके तो अपराधी हैं। मनुष्य-पशु होनेकी हिम्मत कैसे पड़ सकती है?

चेला होता है तो उसकी गलती बतानेसे वह खुश होता है कि हमारी गलती दूर हो जायेगी। जो गलती बताने पर लड़ पड़े कि तुम दिनभर गलती ही बताते रहते हो, वह चेला नहीं। तो देखो, ब्रह्माजीको अपनी गलती मालूम हो गयी। भगवान्‌की प्यारी गायके अपराधी हैं। भगवन्‌के प्यारे ब्रजवासीके अपराधी हैं। तो कहते हैं कि जिनके हम

अपराधी हैं, उनके चरणोंकी धूलिके योग्य भी हम नहीं हैं। इसलिए, उनके चरणोंकी धूलि नहीं, कोई चिड़िया भी फूलमें पंख फड़फड़ावे और उसके पंखसे उड़कर धूलि हमारे ऊपर पड़ जाय।

मुक्ति कहे गोपाल सों, मेरी मुक्ति कराय।
ब्रज रज उड़ि माथे लगे, मुक्ति मुक्त हो जाय।।

कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकं।

अच्छा, कितनी धूलि मिले? बोले कि थोड़ी-सी नहीं। टीका लगानेसे काम नहीं चलेगा। जैसे शरीर पर पानी डालकर स्नान करते हैं, वैसे व्रजकी रज हम अपने शरीर पर डालकर उसमें नहायें, लथपथ हो जायें।

आपने साधनकी यह प्रणाली शायद कहीं नहीं देखी होगी। अभी ब्रजमें ऐसे लोग रहते हैं जो अपने सारे शरीरमें ब्रजरज लपेट कर रहते हैं। कपड़े अपने साबुनसे नहीं धोते हैं। कपड़ेको ब्रजरजसे लथपथ रखते हैं और 'छोड़ि के रज लुठत रज में' माने रजोगुण छोड़कर। जो रजोगुण नहीं छोड़ सकता, वह रजमें लोट भी नहीं सकता। क्यों? हमारे कपड़े गन्दे हो जायेंगे। रजोगुणी ठाट-बाट, शान-शौकत छोड़कर ब्रजकी रजमें लोटते हैं। सच पूछो तो जैसी भक्ति आज भी ब्रजमें देखनेमें आती है, वैसी सृष्टिके पर्दे पर और कहीं नहीं है। 'प्रीति की रीति रंगीलो ही जाने'-यह प्रीतिकी रीति बड़ी विचित्र है।

श्रीचैतन्य महाप्रभु वृन्दावनमें आये। उनके साथ पण्डा था। पण्डेने बताया कि यह वही जगह है, जहाँ भगवान्‌ने रासलीला की थी। झर-झर आँसू गिरने लगे। आँखोंसे,चैतन्य महाप्रभुके शरीरमें रोमाञ्च हुआ और शरीर वहीं भूमिपर गिर पड़ा। यही वह भूमि है, जहाँ भगवान्‌ने रासलीला की थी। यही वह धूलि है। अब कहाँ पाँच हजार वर्ष पहलेका वह स्थान और कहाँ वह धूलि? इसी वृक्षके कन्धों पर बैठकर उन्होंने बाँसुरी बजाई थी, चीर-हरण किया था। कोई थीसिस लिखनेवाला जाय, ऐतिहासिक अनुसन्धान करनेवाला जाय तो वह

कहेगा कि यह पेड़ कहीं पाँच हजार वर्षका हो सकता है? अभी तो इसकी उम्र दो-सौ वर्षकी है।

नारायण कहो! हमको भगवान्‌की यादसे मतलब है कि सौ-दो-सौ वर्षसे मतलब है? यहाँ भगवान्‌ने माखन खाकर पेड़में पोंछ लिया। यहाँ गोपियोंका चीर-हरण करके गये। वह सेठ-साहूकारोंका मकान नहीं है। भगवान्‌की लीला-स्थली है। वृन्दावन जिसको गोदमें लेता है, फिर कभी उतारता नहीं है।

यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दः।

जिनका निखिल जीवन मुकुन्दमय है। **भगवन्परमेव जीवनं निखिलं** सम्पूर्ण जीवन भगवान् परायण है। जैसे मुम्बईमें रहनेवालोंका जीवन अर्थ, काम परायण है। पैसा और भोग।

शिश्नोदर पर यमपुर त्रासन।

यह मुम्बईका जीवन है। क्या? गोस्वामीतुलसीदासजीने कहा कि जीभको स्वाद मिले, मूत्रेन्द्रियको तृप्ति मिले। शिश्नोदर परायण हैं। ये एक ही तत्त्वके दो भाग हैं। यमपुरका त्रास नहीं हैं और शिश्नोदर परायण हैं। हाय पैसा, हाय भोग!

वृन्दावनका जीवन क्या है? मुकुन्द परायण। कहाँ जा रहे हो? बिहारीजीका दर्शन करने! कहाँ जा रहे हो? रास-लीला देखने। कहाँ जा रहे हो? परिक्रमा करने। कहाँ जा रहे हो? कथा सुनने। जल्दी खा लो! क्यों? अरे भाई, भजन करना है।

यह धाम ब्रह्म है। यह नहीं देखता है कि यह भजन करता है कि नहीं करता है। यह दर्शन करता है कि नहीं करता। यह ध्यान करता है कि नहीं करता। भगवान्‌का धाम ब्रह्म है।

यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दः।

भगवान् मुकुन्द ही जिनके जीवन हैं। 'मुकुन्द' माने जो मुक्ति दे। बोले कि यह नाम तो कुछ प्रेमियोंके नहीं जँचता है। प्रेमी लोग मुक्तिको तो पसन्द नहीं करते हैं। नहीं भाई, तुमने अभी इसका अर्थ समझा नहीं।

जो मुक्ति दिलावे सो मुकुन्द। दिलावेका क्या मतलब? धनसे मुक्ति दिलाकर, परिवारसे मुक्ति दिलाकर, गाँव-घरसे मुक्ति दिलाकर सब कुछ छुड़ाकर अपने पास बुला ले, सो मुकुन्द। यह अपनेसे मुक्ति नहीं देता है, औरोंसे मुक्ति दिलाता है। भक्ति सिद्धान्तमें मुक्तिका अर्थ यही होता है। जो प्रेम दे, मुक्ति काट दे उसको 'मुकुन्द' बोलते हैं। जिसके मुख पर कुन्दवत् हास विराजमान हो।

अब एक बात बड़ी विलक्षण है। यह बात सारे श्रीमद्भागवतमें दो जगह आती है और वह आती है बृजवासियोंके बारेमें।

अद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव।

जिनके चरणोंकी धूलि आज भी श्रुतियोंके लिए अन्वेषणकी वस्तु है, मृग्य है। माने वेदके मन्त्र, वेदकी ऋचाएँ जिनके चरण-धूलिको ढूँढती रहती हैं। एक जगह उद्धवजीने कहा,

आसामहो चरणरेणुजुषामहंस्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

(भागवत, 10.47.61)

श्रुतिभिर्विग्याम् और श्रुतिमृग्यमेव।

अच्छा, अब आओ वहाँसे शुरू करते हैं जहाँ पर छोड़ा था।

श्रुतियोंने दो प्रकारसे परमात्माकी उपासना बतायी है-एक सकाम भावसे और एक निष्काम-भावसे। तो सकाम-भावमें यह है कि धन मिले, भोग मिले, स्वर्ग मिले। अपनेसे अलग सुखकारक जो वस्तुएँ हैं, वे मिलें। श्रुतिने ऐसी उपासना भगवान् की बतायी है। यह तो ब्रजमें चाही नहीं सकती। भगवान्के सिवाय और कुछ भगवान्से चाहना-यह तो प्रेममें बनता ही नहीं। यह तो प्रेमका लक्षण ही नहीं है कि हमने तुमसे प्यार इसलिए किया कि मोटर चढ़नेके लिए मोटर मिलेगी, रहनेके लिए महल मिलेगा, पहननेके लिए वस्त्राभूषण मिलेंगे।

यह तो प्रेमका लक्षण ही नहीं है। तो सकामभाव तो प्रेममें है ही नहीं। सकाम-भावका मतलब भगवान्के सिवाय और कुछ चाहना। और, मोक्ष चाहना भी सकाम है। धर्म चाहना सकाम और मोक्ष चाहना भी सकाम। श्रीमद्भागवतमें इसके लिए 'मोक्षकाम' शब्द आया है-

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्।।

(2.3.10)

मोक्षकी कामना हो तो भगवान्की आराधना करो, तुमको दे देंगे। लेकिन मोक्षकामनासे वह आराधना भी सकाम ही है, प्रेम नहीं है। 'श्रीचैतन्य चरितामृत' नामका बंगलामें एक ग्रंथ है। समझो कि प्रेम-शास्त्र ही है। प्रेम-विषयक जितनी जानकारी है, सबका संग्रह चैतन्य-चरितामृतमें कर दिया गया है।

प्रेम और काम दोनोंमें क्या अन्तर है? उसमें आया कि प्रेम वह होता है जो सुखको अपने प्यारेकी ओर भेज दे और काम वह होता है जो सुखको अपनी ओर खींच ले। आत्मसुखकी इच्छाका नाम है काम और प्रियतमका जो सुख है, उसको सुखी करनेकी जो लालसा है, उसका नाम है प्रेम। अहंकी पूजाका नाम काम है और प्रियतमकी पूजाका नाम प्रेम है।

अच्छा, 'आत्मसुख'-यह बड़ा गम्भीर शब्द है। अपनेको सुखी करना। जैसे हम कृष्णको देखकर खुश होते हैं। यह भक्ति-सिद्धान्तमें बड़ी बात है, छोटी नहीं है। कृष्णको देख़कर खुश होते हैं, छूकर खुश होते हैं, छातीसे लगाकर खुश होते हैं। पहले-पहल हमारी जब श्रीकृष्णसे भेंट हुई, अरे हम तो बिलकुल मस्त हो गये कि दुनियामें और क्या है? शरीर खिल गया, रोयें खिल गये, आँख खिल गयी, कपोल खिल गया-वाह, वाह, वाह! मैं धन्य, धन्य, धन्य। इसको भक्तिमें बड़ा श्रेष्ठ मानते है। बोले नहीं, हमको देखकर भगवान् खुश हो जाँय। जैसे हम उनको देखकर खुश हुए, वैसे हमको देखकर वे खुश हो

जाँय। लड़ाई मत करना भगवान्से आप लोग कोई कि ऐ! तुम हमको देखकर खुश नहीं होते हो?' नहीं होते हमको देखकर खुश तो फिर कल हम समझेंगे। ऐसे नहीं किया जाता। हम इतने बढ़िया बन जायें, इतने सहृदय, इतने रसीले, इतने रंगीले, इतने प्रेममय हम हो जायें कि हमको देखकर भगवान् खुश हो जाँय! तो भगवान्को खुश करनेके लिए प्रेम होता है और अपनेको खुश करनेके काम होता।

तो सकाम और निष्काम-ये दोनों जगत्से हुआ जाता है। सकाम होना दोष है। किसकी कामना? संसारकी; और, निष्काम होना गुण है। किसके प्रति? संसारके प्रति निष्काम होना गुण है। वेद मंत्र जो बताते हैं, वे इसी संसारकी सकामता और निष्कामताका वर्णन करते हैं।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति।

अब यह कहो कि हम दो ही हैं-मैं और भगवान्।

एक बार मैं भागकर चित्रकूट जा रहा था। गोरखपुरसे भगा था। उन लोगोंको बताया नहीं था, मालूम भी नहीं पड़ा। वाराणसीके चौकमें एक मित्र मिल गये। बोले कि कहाँ जा रहे हो? तो मैंने उनको बता दिया कि चित्रकूट जा रहा हूँ। उन्होंने पूछा कि तुम्हारे साथ और कौन है? मैंने कहा कि मैं और मेरा दोस्त-मैं और मेरे भगवान्, दो हैं। ऐसी वृत्ति चढ़ती थी, आँख ऊँची हो जाती थी, दुनिया थोड़े ही दिखती थी!

आपको क्या सुनावें! काम और निष्काम-असलमें संसारमें हुआ जाता है। और, जहाँ हम ही दोनों रहते हैं, हम और हमारे प्यारे, वहाँ हम उनसे सकाम होते हैं। और, यदि उनसे निष्काम हो जायें तो? उनसे निष्काम होना माने रूठना। वे यदि हमें न चाहें और हम उनको न चाहें तो दोनों एक दूसरेके प्रति निष्काम होयें तो वह प्रेम कैसा? हम उनके लिए रोते हैं, वे हमारे लिए रोते हैं। हम उनके बिना नहीं खाते हैं और वे हमारे बिना नहीं खाते हैं। हम उनके प्रति सकाम हैं और वे हमारे प्रति सकाम हैं। संसारमें सकाम होना बुरा है और निष्काम होना अच्छा है और भगवान्के प्रति निष्काम होना अच्छा नहीं है, भगवान्के प्रति

सकाम होना अच्छा है। भगवान्के प्रति जो काम-लीला है, उसीका नाम तो प्रेम है।

जरा श्रुतिकी व्याख्या आपको सुना लें, तब आगेकी बात सुनावेंगे।

श्रुतिमें वर्णन है कि धर्मका अनुष्ठान करो तो तुम्हारी सकामता पूरी हो जायेगी। और, यदि निष्काम हो जाओ तो तुम्हें आत्मोपलब्धि हो जायेगी-यह बात श्रुति बताती है। यह श्रुतिकी गति है-

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति।
आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।।

यही तो संसार है! क्या? सब कुछ अपने लिए बाबा! चेला अपने लिए गुरुकी सेवा करता है और गुरु अपने लिए चेलेको प्यार करता है। पति अपने लिए पत्नीसे प्यार करता है और पत्नी अपने लिए पतिसे प्यार करती है। लेकिन यह भगवद्प्रेममें नहीं। देखो, श्रुति कहाँ रह गयी? श्रुति तो रह गयी अपने लिए तुम और तुम्हारे लिए मैं! इसीमें रह गयी श्रुति! गोपी क्या करती है?

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्या परं न मे किञ्चिन् निगूढ़ा प्रेम भाजनं।।

अर्जुनने कहा कि कृष्ण, तुम क्या बारम्बार गोपियोंकी याद करते रहते हो? तुमको ये राजकुमारियाँ पसन्द नहीं आती हैं? अरे, सोलह हजार एक सौ आठ तो तुमने अपने घरमें रख छोड़ी हैं। भले घरकी बेटी। इनसे तुमको सन्तोष नहीं है। उन गाँवकी ग्वालिनोंकी याद आती है? कृष्णने कहा कि अर्जुन, तुम क्या जानों इस रहस्यकी बात! यह सोलह हजार एक सौ आठ महलमें रहती हैं रथों पर चलती हैं, वस्त्राभूषणसे सज्जित रहती हैं। एक-एकके कई सौ-सौ दासी हैं। ये तो विवाहित थीं और परदायत तो अलग थीं। आप लोग बुरा मत मानना।

एक बार सेठ जयदयालजीके भाई हर किशनदासजीने पूछा कि यह बात समझमें नहीं आती स्वामीजी, सोलह हजार स्त्रियाँ!! यह क्या बात है? मैंने कहा कि यह तो बहुत कम करके लिखा है सेठ! यह तो

तुम लोगोंके डरके मारे साधु ब्राह्मणोंने कम करके लिखा कि ये सेठ लोग आलोचना करेंगे, राजा लोग आलोचना करेंगे, दुनियादार लोग आलोचना करेंगे। संसारमें जितने प्राणी हैं और उनकी जितने प्रकारकी मनोवृत्ति है, श्रीकृष्णकी उतनी स्त्री हैं। जितने प्राणी और उनकी जितनी मनोवृत्ति-वे सब चैतन्य भोग्या हैं, कृष्ण भोग्या हैं। गोपियाँ जानती हैं-

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्नचलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्।।

(भागवत 10.29.40)

पेड़ भी कृष्णसे ब्याह करना चाहते हैं कि ये हमसे आलिंगन कर लें। हरिण भी कृष्णका आलिंगन चाहते हैं। पक्षी भी कृष्णका आलिंगन चाहते हैं। गौएँ भी कृष्णका आलिंगन चाहती हैं। यह सबका प्यारा है। सबकी अन्तरात्माका भी प्यारा है।

श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा, '**जानान्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः**'-दुनियामें भले किसीने भी प्रेम किया हो, लेकिन मेरे दिलकी बात गोपियाँ जानती हैं और कोई मेरे हृदयका रहस्य जानता नहीं अर्जुन! मैं समझता हूँ कि गोपी जब अपने शरीरमें तेल लगाती है, स्नान करती है, बाल बनाती है तो सोचती है कि आज कैसा बाल मैं सँवारू तो देखकर कृष्ण खुश हो जायेंगे। वह अपनी खुशीके लिए कपड़ा नहीं पहनती, अपनी खुशीके लिए बाल नहीं सँवारती। अपनी खुशीके लिए नाखून नहीं रंगती। वे तो मेरी खुशीके लिए सब करती हैं।

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।

जरा श्लोकका अर्थ ध्यानमें लें। गोपी अपने अंग-अंगकी उपासना करती हैं। अपनी आँखको कटीली बनाती है। क्यों? भौंह मटकाती हैं, अपने कपोलको सजाती हैं। क्यों? अपने अंगकी उपासना करती है। वह कहती है कि हे अंग देवता, हे आँख, तुम इतनी सुन्दर बन

जाओ कि तुमको देखते ही श्रीकृष्ण आनन्दसे भर जायें। हे कपोल, तुम ऐसी बन जाओ कि तुमको देखते ही श्रीकृष्ण आनन्दोल्लसित हो जायें। हे पाँव, हे हाथ, हे वक्षःस्थल, हे ललाट, हे केश, तुम ऐसे क्यों, तुम हमारे देवता हो, तुम ऐसी कृपा करो कि हमको देखकर श्रीकृष्णको आनन्द आवे।

देखो, यह आत्मकाम नहीं है। गोपी अपने लिए सुख नहीं चाहती हैं। गोपी ज्ञान-निष्ठा नहीं है। गोपी आत्मनिष्ठा नहीं है। गोपी ब्रह्म-निष्ठा नहीं है। गोपी कृष्ण-निष्ठा है। श्रुति कहती है कि सब लोग अपने लिए दूसरेसे प्रेम करते हैं और गोपी कहती है कि हम कृष्णके लिए अपनेसे प्रेम करते हैं। यह सिद्धान्त-भेद हो गया। गोपीका है प्रेम-सिद्धान्त और श्रुतिका है ज्ञान-सिद्धान्त। अब श्रुतियोंने विचार किया कि हाय-हाय, अनादिकालसे अबतक हम ब्रह्मका निरूपण कर रही हैं। न कभी हमें ब्रह्मका दर्शन मिला, न कभी चुंबन मिला, न आलिंगन मिला, न कभी स्पर्श मिला। हम तो यूँ ही, काँपती रह गयीं और ये गाँवकी ग्वारिन लूट ले गयीं ब्रह्म को!

'श्रुतयः पलाल कल्पः'

वेद तरुं प्रतिशाखं मृगितं मिलितं न सद्ब्रह्म।
मिलितं मिलितं इदानीं गोपवधूटी पटाञ्चले नद्धं।।

एक महात्मा बोल रहे थे कि अरे हमने सब वेदकी ऋचाएँ देख लीं। वह तो पुआल है। जैसे धान निकाल लेनेके बाद उसका तना बचा रहता है। अब श्रुतियोंमें ढूँढनेके लिए रहा क्या? बात क्या हुई? इसका सार कहाँ गया? बोले कि, उन गाँवकी ग्वालिनोंने अहीरिनोंने अपनी आँखसे इशारा करके ब्रह्मका अपहरणकर लिया। ब्रह्म अब वेदोंमें नहीं है, ब्रह्म अब श्रुतियोंमें नहीं है। कहाँ है? ब्रह्मका तो अपहरण हो गया। डाकू लूट ले गये। कौन डाकू आया बाबा! जो वेदोंमें-से ब्रह्म लूट ले गया। बोले कि अहीर नहीं, अहीरनें लूट ले गयीं। अहीरतो लाठीके बलपर लूटते हैं। ये अहीरनोंने किसके बल पर लूटा? बोले कि

आँखोंके बल पर। वेदवृक्षकी एक-एक डाली पर ढूँढ लिया, परन्तु ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं हुई। तब कहाँ मिला? गोपियोंने अपनी साड़ीके आँचलमें श्यामसुन्दरको बाँध लिया।

परमिममुपदशमाद्रियध्वं निगमवनेषु नितान्त खेद-खिन्नाः।
विचिनुत भवनेषु वल्लभीनामुपनिषदर्थमुलूखले निबद्धम् ।।

अरे आइयो, मेरे उपदेशका आदर करो। क्योंकि, आप वेदके वनमें ढूँढते-ढूँढते थक गये हो। तब कहाँ ढूँढें भगवान्‌को? गोपियोंके भवनमें ढूँढो। वहाँ उपनिषद्का अर्थ ऊखलमें बँधा मैय्या! मैय्या!! बोल रहा है।

तो **'श्रुतिभिर्विमृग्याम्।'**

पद्मपुराणमें कथा आती है कि श्रुतियोंने तपस्या की। गायत्रीने तपस्या की, ब्रह्मविद्याने तपस्या की। प्रेससे पद्मपुराण छपा तो वह प्रसंग उन्होंने निकाल दिया। बड़ा विलक्षण प्रसंग है। एक-एक मंत्र है-रंगदेवी कौन हुई, चित्रा कौन हुई, धन्या कौन हुई, ललिता कौन हुई। दशाक्षर मंत्र, षोडशाक्षर मंत्र, अष्टादशाक्षर मंत्र-इन मंत्रोंका जप करके और कृष्णकी आराधना करके, ध्यान करके कौन-सी श्रुति किस मंत्रकी आराधनासे और किस ध्यानसे किस गोपीके रूपमें व्रजमें पैदा हुई-यह कथा है। 'श्रुतिमृग्यमेव'।

नारायण, जो गोपियोंको मिल गया-गोपियोंको इन्द्रिय-विषय होकर मिला। वही श्रुतियोंको इन्द्रियातीत रूपमें ज्ञात हुआ और प्रत्यगात्मासे अभिन्न अनुभव हुआ। गोपियोंको कानसे उनकी आवाज सुनायी पड़ी। कभी-कभी कुछ कहनेके लिए कानसे चिपक जाते।

मोसे कहे सुन एरी सुन्दरी, तो समान ब्रज सुभग न कोऊ।

बोले, 'एरी गोपी! सुन ले, मेरी एक बात सुन।' 'कहो श्याम सुन्दर।' बोले कि ऐसे कहनेकी थोड़ी है। कानमें कहूँगा। मंत्र देने लायक है। तो जब कान उसने पास कर दिया तो चूम लिया। बोली कि अरे-अरे, यह क्या करते हो? सुन-सुन, 'तो समान ब्रज सुभग न कोऊ'।

ब्रह्माजी कहते हैं कि महाराज, हमको एक ही फिक्र सताती है कि श्रीकृष्ण अपने प्रेमियोंको क्या देंगे? सवाल यह है। प्रेमी लोग आखिर चाहते क्या हैं? प्रेमी लोग कभी चाहते हैं, प्रेममें चाहना भी होता है। समझो, किसीकी कोई पत्नी है, प्रिया है, प्रेयसी है। उसको साड़ीकी जरूरत हैं। अब वह कहे कि अपने पतिसे निष्काम हूँ, उससे साड़ी कैसे माँग सकती हूँ मैं? यदि साड़ी मागूँगी तो सकाम हो जाऊँगी। और, पड़ोसीसे जाकर साड़ी माँगकर ले आवे तो वह पत्नी ठीक है? गलत है। अपने पतिसे साड़ी नहीं लेगी तो क्या पर-पतिसे साड़ी लेगी? तो जिसका प्रेम होता है, उसको लेनेकी भी छूट होती है, माँगनेकी भी छूट होती है, देनेकी भी छूट होती है। वह मीठा-ही-मीठा हमेशा बोले, तो ऐसा हो जायेगा। जैसे घरमें रोज ही खीर खिलावे। रोज खीर खिलावे तो खानेवालेको अपच भी हो जायेगा और वह ऊब जायेगा, खीरमें स्वाद नहीं आवेगा। तो पत्नी ऐसी चाहिए जो कभी मिर्चकी चटनी भी खिलावे। कभी अचार भी दे। कभी करेलेकी कड़वाहट भी दे। प्रेमको ताजा करनेका भी उपाय होता है। जब चीज ठण्डी हो जाती है तो उसको कड़ाहीमें चढ़ाकर गर्म करते हैं। ऐसे अगर पति ठण्डा हो जाये, एयरकंडीशन टाइप हो तो कभी उसको गर्म करनेकी भी जरूरत पड़ती है। तो प्रेम एक सरीखा नहीं चलता है।

अहेरिव प्रेम्णा स्वभाव कुटिला गतिः।

अच्छा! तो इन ब्रजवासियोंको देंगे क्या?

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति न-
श्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन् मुह्यति।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता
यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनय प्राणाशयास्त्वत्कृते।।

(10.14.35)

'देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो! इन व्रजवासियोंको इनकी सेवाके बदलेमें आप क्या फल देंगे? सम्पूर्ण फलोंके फलस्वरूप

आपसे बढ़कर और कोई फल तो है ही नहीं, यह सोचकर मेरा चित्त मोहित हो रहा है। आप उन्हें अपना स्वरूप भी देकर उऋण नहीं हो सकते। क्योंकि आपके स्वरूपको तो उस पूतनाने भी अपने सम्बन्धियों-अघासुर, बकासुर आदिके साथ प्राप्त कर लिया, जिसका केवल वेष ही साध्वी स्त्रीका था, पर जो हृदयसे महान् क्रूर थी। फिर, जिन्होंने अपने घर, धन, स्वजन, प्रिय, शरीर, पुत्र प्राण और मन-सब कुछ आपके ही चरणोंमें समर्पित कर दिया है, जिनका सब कुछ आपके ही लिए है, उन ब्रजवासियोंको भी वही फल देकर आप कैसे उऋण हो सकते हैं?'

ये गाँवके रहनेवाले गोप-निवासी-इनके पास कुछ है, सो बात नहीं। ये किसी देशके राजा नहीं हैं। ये किसी कारखानेके मालिक नहीं हैं। ये झोंपड़ी-पट्टीके वासी हैं 'एषां घोषनिवासिनां'-अहीरोंकी बस्ती-आज यहाँ, कल वहाँ, परसों कहाँ! जहाँ गाय-भैंसोंके चरनेके लिए घास मिले, वहाँ जाकर बस जाँय। हैं तो ये गरीब। और, आप हैं विश्वेश्वर। इनको क्या देंगे? इनको विश्वका साम्राज्य देनेसे काम नहीं चलेगा। भगवान् बोले कि मैं अपने आपको ही इन्हें दे दूँगा। सब फलोंका फल मैं हूँ। हम तो ढूँढ चुके, भगवान् तुम ऋणी हो गये। यह देखो, ब्रजवासी अपनी इन्द्रियोंके द्वारा भगवान्का भोग नहीं चाहते हैं। भगवान्को सुख देना चाहते हैं। ब्रजवासी चाहते हैं कि भगवान्के कान, भगवान्की आँख, भगवान्की त्वचा, भगवान्की जीभ, भगवान्का अंग-अंग हमारे द्वारा तृप्त होवे। अपने लिए भगवान्से ब्रजवासी सुख नहीं चाहते हैं। अपनेको भगवान्के लिए देते हैं। तब भगवान् क्या करते हैं? इन्होंने तो अपने आपको दे दिया, अब हम अपने आपको इन्हें दे देते हैं।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (गीता 4.11)

इन्होंने पूरी तरहसे अपने आपको दे दिया, हम भी पूरी तरहसे अपने आपको दे दें! ब्रह्माजीने कहा कि ऐसे काम नहीं चलेगा

महाराज! तुम तो अपने आपको जने-जनेको देते फिरते हो। जो चीज तुमने पूतनाको दी, वही अगर इन्हें दोगे तो तुम्हारा उद्धार हो जायेगा? भगवान्-अपनेको ब्रजवासियोंका कर्जदार मानकर अपना शरीर उनके सामने कर देते हैं कि तुम हमारे शरीरको भोगो। ब्रजवासी नहीं कहते हैं कि भगवान्का शरीर हमारा भोग्य है। स्वयं भगवान् भोग्यके रूपमें अपनेको उपस्थित करते हैं कि तुम हमें अपना भोग्य बना लो! मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। हम तुम्हारा कर्ज उतारना चाहते हैं।

तो ऐसे कर्ज उतरेगा?

सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता।

देखो, संतवेषका बड़ा आदर है। एक बार सती सीताजीका वेष बना लीं। शंकरजीने कहा कि तूने सीता माताका वेष स्वांगमें ही बना लिया, तू हमारी माता हो गयी और फिर पत्नीका व्यवहार शंकरने सतीसे नहीं किया। सतीको वह शरीर जलाकर पार्वती होकर आना पड़ा। पूतना भक्तका वेष धारण करके आयी, माताका वेष धारण करके आयी। भगवान्ने कहा कि अच्छा, माताका वेष धारण करके आयी! दूध पिलानेवाली, स्नेह पिलानेवाली माँको जो गति मिलती है, मैं तेरा बेटा हो गया जा! ब्रह्माजी कहते हैं कि पूतना जरा-सा वेष बनाकर आयी और उसकी गोदमें तुमने आपको दे दिया और अगर वही काम इन ब्रजवासियोंके साथ करोगे तो उऋण हो पाओगे? जहर पिलानेवालीको तो तुमने अपने आपको दे दिया और जिन्होंने तुम्हें अपना घर दिया, अपना धन दिया, अपना सुहृद दिया, अपना प्रिय दिया, अपना शरीर दिया, अपना पुत्र दिया, अपना हृदय दिया-उनसे अब तुम उऋण कैसे होओगे? कोटि-कोटि कल्पमें भी कृष्ण तुम ब्रजवासियोंसे उऋण नहीं हो सकते।

●

: 14 :

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः।।
(10.14.36)

सच्चिदानन्द स्वरूप श्यामसुन्दर! तभी तक राग-द्वेष आदि दोष चोरोंके समान सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं, तभी तक घर और उसके सम्बन्धी कैदकी तरह सम्बन्धके बन्धनोंमें बाँध रखते हैं और तभी तक मोह पैरकी बेड़ियोंकी तरह जकड़े रखता है-जबतक जीव आपका नहीं हो जाता।'

जिनका स्वभाव चिन्ता करनेका होता है, वे चाहे जहाँ भी पहुँच जायें, वहाँ चिन्ता ही करते हैं। कहते हैं न कि आदमी अपनी आदतसे लाचार होता है। तो सामने खड़े हैं भगवान् और वृन्दावनकी प्रेममयी भूमि। यहाँके तो पशु-पक्षी भी निश्चिन्त होते हैं। क्योंकि, भगवान्की भूमि, प्रेमकी भूमि-चिन्ताका तो कोई कारण ही नहीं है। अरे हम अपने प्रभुकी आँखोंके सामने हैं, उनकी मुट्ठीमें हैं, उनको देख रहे हैं। अब आगे-पीछेकी कौन सोचे कि क्या होगा? अब सामने भगवान् खड़े हैं और ब्रह्माजी सोच रहे हैं कि हे प्रभु, ये जो गाँवके गँवार, गोष्ठके रहनेवाले, इनको आप क्या देंगे? आप इनके ऋणसे कैसे मुक्त होंगे?

भगवान्को कई तरहके कर्ज सताते रहते हैं। अर्जुनसे भगवान् कहते हैं-

'ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे'-मेरे ऊपर यह ऋण बढ़ गया, 'हृदयान्नापसर्पति'-यह ऋण हर समय हृदयमें गड़ता रहता है। आपके ऊपर क्या ऋण? बोले कि 'यद् गोविन्देऽपि' चुक्रोशं कृष्णा मां दूर

वर्तिनं'-मैं द्रौपदीके पास उस समय नहीं था, दूर था और उसको करुण-कन्दन करना पड़ा-गोविन्द! द्वारकावासी! कृष्ण! गोपीजनप्रिय रक्षा करो! द्रौपदीको गला पकड़कर मेरे लिए चिल्लाना पड़ा। उसको इतनी तकलीफ हुई। मेरे भक्तको पुकारनेके लिए इतना कष्ट हुआ-यह ऋण मेरे ऊपर बढ़ गया। मैं इसे दूर नहीं कर पाऊँगा। भगवान् ऋणी हो जाते हैं।

तेरा ऋणी हों कह्यो कपिसों।

हनुमानजीसे श्रीराम बोले कि हनुमान्, तुम्हारा मैं ऋणी हूँ, ऋणी! तुम हमसे दस्तावेज लिखा लो कि हम तुम्हारे कर्जदार हैं। इतना सहृदय प्रभु! तो यह भी ब्रह्माजी प्रभुके स्वभावको जानते हैं कि ये तो जरा-जरा-सी बात पर ऋणी हो जाते हैं।

तुलसी दलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीड़ते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः।।

तुलसीके एक पत्तेपर बिक जाते हैं। एक चुल्लु पानीसे बिक जाते हैं। भगवान् अपनी तो कोई कीमत समझते ही नहीं। यही असलमें सत्पुरुषका लक्षण है। जो अपनेको बहुत कीमती समझता है, उसमें तो हीनभाव है। अपनी कुछ कीमत भगवान्ने नहीं रखी। बोले कि ब्रह्माजी, फिक्र क्यों करते हो तुम? हम इनका ऋण उतार देंगे। ब्रह्माजी बोले कि मैं मोहग्रस्त हो रहा हूँ। भगवान्ने कहा कि भला, मुझसे बड़े फलकी, क्या जरूरत है? मैं अपने आपको ही देकर उऋण हो जाऊँगा। मुझसे बड़े फलकी क्या जरूरत है? नहीं, अपनेसे भी बड़ी कोई चीज दे दें।

सद्वेषादिव पूजनापि सकुला त्वामेव देवापिता।

जो संतका वेष बनाकर आयी पूतना, लोकबालघातनी, राक्षसी, रुधिराशना, जिघांसया-खून पीनेवाली, लोकोंके बच्चोंको मारनेवाली, कंसकी भेजी हुई राक्षसी और मारनेकी नीयतसे तुम्हारे पास आयी; उसको तुम मिल गये। तो जो चीज पूतनाको तुमने दी, वही

ब्रजवासियोंको दोगे तो उऋण कैसे होओगे? बोले कि बाबा, अकेली पूतनाको दे दिया। अब हम ब्रजवासियोंको, नाते-रिश्तेदार, बन्धु-बान्धवोंको दे देंगे। ब्रह्माजी बोले कि पूतनाके भाई अघासुर, बकासुरको भी मुक्ति मिल गयी। तब फिर ब्रजवासियोंकी क्या विशेषता है कि उनका ऋण भगवान् पर रहेगा!

यह प्रीतिकी रीति निराली।

आली, प्रीति की रीति निराली।
प्याली भरे न खाली होय।।

पीते-पीते प्यास बुझती नहीं और कभी तृप्ति होती नहीं। प्रेम कभी कम होता नहीं। पीते जाओ, पीते जाओ!

कई लोग ऐसा मानते है कि ईश्वर कहीं है। सच पूछो तो ईसाई-धर्म उतना ईश्वर-प्रधान मार्ग नहीं है-साफ-साफ बात है। हफ्तेमें एक दिन हाजिरी दे आओ तो काम चल जाता है। हफ्तेमें एक दिन देखनेसे तृप्ति हो जाती हो तो वृत्ति कैसी? और, एक दिन रजिस्टरमें हाजिरी भर ली और मालिक खुश! यह प्रेमकी बात नहीं हुई। कानून-कायदेकी बात हुई। इस्लाम-धर्ममें दिनभरमें पाँच बार जाते हैं सामने। पाँच बार नमाज पढ़ो, खुदा खुश! यह हिन्दुओंका जो ईश्वर है, यह अपने भक्तको एक क्षणके लिए भी छोड़ना नहीं चाहता। यह तो कहता है कि तुम मुझे देखा करो और मैं तुम्हें देखा करूँ। एक मिनटके लिए भी नजर-से-नजर अलग न हो। तुम हमको देखते रहो। देखो ईश्वरकी प्रधानता। चौबीस घंटे हमारा जीवन ईश्वरके लिए हो।

एक दिन मैंने एक बच्चेसे कहा कि तुम भगवान्‌का नाम नहीं लेते हो? वह बोला कि स्वामीजी, आप क्या कहते हैं! मैं भगवान्‌का नाम लेता हूँ। 'अच्छा, दिनमें कितनी बार लेते हो'। बोला कि दिनकी बात मत पूछिये। जिस दिन इम्तहान होता है, उस दिन लेता हूँ। परीक्षाके दिन भगवान्‌का नाम ले लेता हूँ।

एक दिन एक सज्जन आये। हमने पूछा कि अरे भाई, तुम तो

बहुत दिनके बाद मिले। एकाध वर्ष तो हो ही गया होगा। वह बोला, 'स्वामीजी, आपको भूल जाता है। मैं पिछले साल आया था आपके पास। नारायण, यह कोई प्रीतिकी बात नहीं हुई।

इन दुखिया अखियन को, सुख सिरझो ही नाहीं।

इन दुःखिया आँखोंके लिए सुख बनाया ही नहीं गया है। क्यों?

देखत बने न देखते, बिन देखे अकुलायँ।।

देखते समय देखते नहीं बनता, आँख नीची हो जाती है, बिना देखे व्याकुलता होती है कि कैसे देखे!

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूढ़े स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय।।

डुबकी लगाता है काले रंगमें और होता है उज्ज्वल! जरा देखो तो यह चित्तकी गति कि काले रंगमें तो डुबकी लगावे और हो जाये सफेद। और स्वयं तो लाल है नारायण! क्या अद्भुत है। प्रीतिकी रीति निराली है। यह हफ्तेमें एक दिनसे तृप्त नहीं होती है। यह दिनभरमें पाँच बारसे तृप्त नहीं होती है।

लाज लगाम न मानहिं, नैना मो बस नायँ।
ये मुँह जोर तुरंग लौं ऐंचत हूँ चलि जायँ।।

ये आँखें क्या है, मुँह जोर घोड़ेकी तरह हैं। लगाम खींचते रहो, मुँह जोर घोड़ा रुकता नहीं, चला ही जाता है।

तो; हमारा जो ईश्वर है, वह बड़ा विलक्षण। आपको जरा उसकी एक़-दो बात सुनाते हैं। यह तो सब कुछ ले लेता है और फिर भी ऐसा रहता है मानो कुछ नहीं लिया। चौबीसों घंटे समय ले ले और जीवन-क्रिया ले ले और सारी चेतना ले ले। तो कोई-कोई इतनेसे ही प्रसन्न रहते हैं कि वह है कहीं। जब कोई जरूरत पड़ेगी, तब याद कर लेंगे। कोई कहते है कि भई थोड़ा उसके साथ रिश्ता-नाता रखो। दिन भरमें एक आध बार तो सलाम-बन्दगी कर लिया करो। जान-पहचान रहेगी तो काम देगा।

अच्छा, मैं उसका हूँ-एक और तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूँ- आपको इसमें फर्क मालूम पड़ता है कि नहीं? मैं उसका हूँ, नहीं, मैं तुम्हारा हूँ-सामने आ गया भगवान्। तुम मेरे हो। अब देखो एक बात। हमारा-तुम्हारा अलग-अलग कमरा नहीं है, हमारा-तुम्हारा अलग-अलग बैंक-बैलेंस नहीं है। अलग-अलग संदूक नहीं है। अलग-अलग पलंग नहीं है। मैं के रहनेके लिए अलग दिल नहीं है। जरा ईश्वरके नजदीक आओ। फिर मजा आवेगा। संसारी लोग ईश्वरके बारेमें बहुत कम जानते हैं। वे यही जानते हैं कि हमारा बेटा बीमार होगा तो हम ईश्वरसे कहेंगे तो वह अच्छा कर देगा। इतना ही जानते हैं ईश्वरके बारेमें। हम लोगोंने ईश्वरके साथ एक बड़ा भारी अन्याय कर रखा है। पहले उससे मुक्ति प्राप्त करो। यह दुनियाकी जितनी चीजें हैं, ये सब ईश्वरकी है। माटी जब ईश्वरकी तो मकान तुम्हारा कैसे? जब सब प्राणी ईश्वरके, तो एक स्त्री, पुत्र, पति, माता, पिता, तुम्हारा कैसे?

जब सब ईश्वर तो यह तुम्हारा 'मैं' कैसे? यह ईश्वरसे अलग जो 'मेरा' बनाकर रखा है, यह भ्रम है। ईश्वरसे अलग 'मेरा' भ्रम है और ईश्वरसे अलग 'मैं' भ्रम है। मेरा-मेरा-मेरा! सो कहीं भी विवेकके द्वारा-न तो सांख्यकी रीतिसे विवेक करने पर यह सिद्ध होता है कि 'मैं-मेरा' है कुछ, न तो वेदान्तकी रीतिसे विवेक करने पर सिद्ध होता है कि 'मैं'-मेरा है कुछ। न तो बौद्ध-रीतिसे विवेक करने पर सिद्ध होता है कि 'मैं-मेरा' कुछ है और न तो जैन रीतिसे विवेक करने पर सिद्ध होता है कि मैं-मेरा कुछ है। बौद्ध, जैन, भक्ति, वेदान्त, सांख्य, योग-किसी भी दृष्टिसे यदि विचार करें तो जि 'मैं'के अभिमानसे हम दुःखी होते रहते हैं, वह तो कुछ नहीं है और इस मेरेके लिए हम चौबीसों घंटे अस्त-व्यस्त रहते हैं। उनमें-से कोई हमारा साथ देनेवाला नहीं है। और, अगर लोगोंको पता चल जाय कि इनके मनमें यह बात है, तो उसके विपरीत जरूर करेंगे। दुनियाकी रीति है यह। भाई, तुमने जानकर कि यह हमारे

मनके विपरीत है, क्यों किया? तो बोले कि देखनेके लिए कि तुम्हारे मनके विपरीत करने पर तुम हमसे प्रेम करते हो कि नहीं? हमसे कितना प्रेम है, तुम्हारा, इसकी परीक्षा लेनेके लिए तुम्हारे मनके विपरीत करते हैं। अगर प्रेम होगा तो सह लोगे। तो ये संसारी लोग जो हैं, वे सहाते हैं! सहनशक्ति बढ़ाते हैं।

सृष्टिमें ऐसी कोई चीज नहीं है जो तुम्हारी है। मिट्टी ईश्वर वही, पानी ईश्वरका, आग ईश्वरकी, हवा ईश्वरकी, आकाश ईश्वरका। सृष्टिका मनस्तत्त्व ईश्वरका, महत्तत्त्व ईश्वरका, अहंतत्त्व ईश्वरका, प्रकृति-तत्त्व ईश्वरका। स्वयं ईश्वर, ईश्वरका। किस चीजको तुम विवेककी दृष्टिसे मेरी बोलते हो। तो मैं कह रहा था कि जीवका बड़ा भारी अपराध है। क्या? चीज ईश्वरकी और उसीके सामने बोलता है मेरी, मेरी, मेरी। तो ईश्वरने कहा कि अच्छा बाबा, तू चीज ले जा, तेरी। मैं तो तेरे बखेड़ेसे बच गया। मैं तो तेरे झगड़ेसे बच गया। चीज जो लेनी हो, सो ले ले तू। मेरी-मेरी कर।

ईश्वरकी तरफ ध्यान दो जरा! यह मेरापना भ्रम है। भक्ति वहाँ प्रारम्भ होती है? ईश्वरसे कहो कि हे प्रभु, सब तेरा है, सब तेरे लिए है। मैंने जो भूलसे मेरा-मेरा-मेरा मान लिया था, यह भूल तू मिटा दे। आज यह भूल मेरी मिट गयी। तो संसारकी सर्व वस्तु ईश्वरकी है, इस रूपमें समझ लेना-यह ईश्वरका हो जाना है। असलमें हम ईश्वरको कुछ देते नहीं हैं। एक रसगुल्ला ईश्वरको भोग लगाया। बोले कि अठन्नीका रसगुल्ला तुमको भोग लगाया है। 'तो चाहते क्या हो?' आज लाख रुपया हमारे घर भेज देना। माने ईश्वरको हिसाब नहीं आता है, अठन्नीका रसगुल्ला तुम्हारा खायेगा और लाख रुपया तुम्हारे घरमें भेजेगा। ईश्वरको क्या गणित नहीं आती है? अच्छा, तो वह रसगुल्ला किसका और अठन्नी किसकी यदि अठन्नी चाँदीकी भी हो तो चाँदी भगवान्‌की और वह रसगुल्ला जिस छेनासे बना है, जिस दूधसे बना है, जिस शक्करसे बना है, जिस गायसे बना है, नारायण वह तो ईश्वरकी।

उसमें तुमने ईश्वरको क्या दिया? ईश्वरकी चीज ईश्वरको दी। झूठ ही देनेवाले बन गये।

भक्ति यहाँसे प्रारम्भ होती है कि ईश्वरकी चीज ईश्वरकी समझें, अपनेको देनेवाला न समझे। माने भक्ति जो है, वह ममताको छुड़ा देती है और ज्ञान अहंकी परिच्छिन्नताको छुड़ा देता है। भक्ति 'मेरे'को छुड़ाती है और 'मैं'में-से अभिमानका अंश, उदण्डताका अंश, अभिनयका अंश तो भक्ति दूर कर देती है। लेकिन 'मैं'का जो सूक्ष्म रूप है, परिच्छिन्न 'मैं' उसको भक्ति नहीं दूर करती है। उसको ज्ञान दूर करता है। अब जरा ध्यान देना-यह बात आपको वेदान्तकी सुना रहे हैं। कहो कि हम पहले ज्ञानसे 'मैं'को छुड़ा दें और फिर भक्ति करके मेरा-पना छुड़ावेंगे। ऐसे नहीं होगा। असलमें भक्तिके द्वारा मेरे-पनेका छूटना-यह अन्तःकरणकी शुद्धि है और उसके बाद ज्ञान होकर परिच्छिन्न 'मैं'का बाधित हो जाना, मिथ्या हो जाना, तुच्छ हो जाना-यह ज्ञान है। तो पहले भक्ति करके मेरे पनको धोना पड़ता है?

अच्छा, आज एकने प्रश्न किया कि ब्रजवासियोंके सामने तो भगवान् थे। वे गोपियों अपनी सब चीज कृष्णके लिए रखती थीं। वे पता लगाकर रखती थीं कि कृष्णको साड़ीका कौन-सा रंग पसन्द है। उसी रंगकी साड़ी पहनती थीं भला! वे पता लागकर रखती थीं कि बाल कैसा संवारा जाय तो श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। वैसे ही बाल संवारती थीं। उनको मालूम था कि सिर पर बिन्दी कैसी लगायी जाय तो भगवान् प्रसन्न होते हैं! क्या खायें तो भगवान् खुश होते हैं-यह उनको मालूम था। खाये हुएकी मुँहमें-से गन्ध निकलती है। जब लहसुन, प्याज खाकर लोग अपने कमरेमें बैठते हैं तो उनको नहीं मालूम पड़ता है। लेकिन जो लहसुन, प्याज नहीं खाते हैं, उनके कमरेमें जब जाकर बैठते हैं तो उनका कमरा लहसुन, प्याजकी गन्धसे भर जाता है। तो हमारे प्रियतमको कौन-सी गन्ध भाती है-यह प्रेमीको मालूम रहता है।

यह ठीक है कि भई, भगवान् सामने हैं, उनके लिए सब कुछ। सामने नहीं है, तब उनके लिए कैसे सब कुछ? देखो, शबरीके घरमें भगवान् नहीं आये थे। पर, वह घरमें रोज झाड़ू लगाती थी, रोज जमीन लीपती थी कि भगवान् आवेंगे। रोज उनके लिए फूल चुनकर माला बनाती थी। रोज उनके लिए फल तोड़कर रखती थी कि आज हमारे घर भगवान् आवेंगे।

शबरी देखे रे सपनवा,
आज घर रामा अइहैं न!
शबरी सोचे रे सगुनवा,
आज घर रामा आइहैं न!!

तो देखो, उनके लिए घर है कि नहीं? उनके लिए फूल-माला है कि नहीं? उनके लिए परिश्रम है कि नहीं? उनके लिए भोग है कि नहीं? उनके लिए शरीरकी क्रिया है कि नहीं? और, उनके लिए दिल-दिमाग है कि नहीं? सब तो उन्हींके लिए है।

भक्ति कैसे होती है? भक्तिकी प्रक्रिया देखो! अपने मेरेको पहले भगवान्का कर दो। बल्कि, एक भक्तिका रहस्य आपको सुनाता हूँ-अपना मेरा तुम भगवान्का कर दो तो तुम्हारे 'मैं' को भगवान् अपना कर लेंगे। यह दुनियादार लोग अपना 'मेरा' ही भगवान् को नहीं देते हैं। अपनी आँख नहीं देंगे, अपनी जीभ नहीं देंगे, अपना कान नहीं देंगे, अपनी त्वचा नहीं देंगे, अपना पाँव नहीं देंगे, अपना हाथ नहीं देंगे। यह सब भगवान्को दिया जाता है। आप कथामें आते हैं तो जितनी देर आप पाँवसे चलते हैं, आपका पाँव भगवान्को दिया जाता है। आप भगवान्की कथामें आते हैं तो जो बस या टैक्सीका किराया देते हैं, वह भगवान्को अर्पित होता है। जितनी देर भगवान्की कथा सुनते हैं, आपका कान भगवान्के अर्पित होता है। कितने दिलसे आप भगवान्के बारेमें सोचते हैं, आपका दिल भगवान्को अर्पित होता है। यह जिसका है, उसके लिए

इसका प्रयोग करो और अपनेको तुम्हारे 'मैं'को भगवान् ले लेंगे। पाँवसे भगवान्के लिए चलो। भगवान्के भजनके लिए शौच और लघु-शंकासे निवृत्त होकर शान्तिसे बैठो। शौच और लघु-शंका भी भगवान्की प्रसन्नताके लिए करो।

भगवान्के लिए बोलो, भगवान्के लिए चलो, भगवान्के लिए करो, भगवान्के लिए देखो, भगवान्के लिए सुनो, भगवान्के लिए छूओ, भगवान्के लिए चखो। भक्तोंका भोजन भी भगवान्के लिए होता है। भगवान्के लिए सो जाओ। भगवान्के चरणारविन्दको हृदयसे लगाओ और सो जाओ। या यूँ सो जाओ कि अच्छी नींद ले लेंगे तो फिर बढ़िया भजन करेंगे। पहले 'मेरा'को भगवान्को अर्पित करो।

यत् धामार्थ सुहृत् प्रियार्थ तनया प्राणाशयाः त्वत् कृते।

एकदिन गोपीने देखा कि उसकी किवाड़ीमें जो सांकल लगी हुई थी, वह जरा ऊपर थी। तो श्यामसुन्दर माखन-चोरी करनेके लिए आये, उसके घरमें घुसना चाहते थे। तो सांकल तक उनका हाथ न पहुँचे। वह दूरसे देख रही थी। श्यामसुन्दरको बड़ी तकलीफ हुई। दूसरे दिन उसने सांकल ही तोड़कर फेंक दिया। 'न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी'। जब श्यामसुन्दर आवेंगे तो किवाड़ी खुली मिलेगी। घर श्यामसुन्दरके लिए खुला! आपको यह बात शायद मालूम न हो कि साधु चाहे तो ब्रजवासीके घरमें घुस जाये। मुम्बईमें ऐसा नहीं करना।

एक दिन कोई महात्मा थे, वे नन्दगाँवमें किसीके घरमें घुस गये। उनका ख्याल था कि दूध पीयेंगे। अपने आप ही गृहस्थके घरमें घुस गये, दूध निकाला और पी लिया। वह तो भगवान्का घर है, भगवान्का साधु है। यह गृहस्थ तो बीचमें झूठ ही पड़ा हुआ है।

राम दी चिड़िया राम दा खेत,
खाओ चिड़िया भर-भर पेट।

तो उन साधुने देखा तो दूध खुला रखा था, दही भी खुला था, मख्खन भी वैसे ही था। कुछ भी ढँका हुआ नहीं था। तो साधुने ग्वालिनीको डाँटा, क्यों रे, यह दही-दूध-मक्खन ढँककर नहीं रखती है? खुला रखती है?' वह बोली कि बाबा, हमारे घरमें श्यामसुन्दर मक्खन चुराने आते हैं, दही चुराने आते हैं। ढँककर रखेंगे तो उनको ढक्कन हटानेकी तकलीफ होगी। उनको ढक्कन हटानेकी तकलीफ नहीं हो, इसलिए खुला रखते हैं। यह पाँच हजार वर्ष पहलेकी बात नहीं है, आजकी बात है।

मैत्री किससे? जिससे भगवान्से प्रेम करनेमें सुविधा हो। प्यारा कौन? जो भगवान्से मिलावे। यह शरीर क्यों? अगर यह भगवान्के काम नहीं आया, इसको देखकर भगवान् खुश नहीं हुए, यह शरीर किस कामका बेटा? बेटा वह होये जो कृष्णके साथ खेले। प्राण वे होये जो उनके लिए जीयें। हृदय हो जिसमें भगवान्का ध्यान हो। ऐसे हैं बृजवासी!

पूतनाको तो मिल गये भगवान्! अब ब्रजवासियोंको भी भगवान् ही मिलें तो क्या विशेषता रही? ब्रह्माजीके हृदयमें भगवान् प्रकट हुए। बाहरसे तो ब्रह्माजीसे नहीं बोलते हैं, रूठे हुए हैं। बाहरके भगवान् कभी रूठते हैं, कभी खुश होते हैं और भीतर वाले भगवान् जो हैं, वे कभी रूठते नहीं हैं। वे हमारी आवाजमें बोलते हैं और हमारे कानमें कान मिलाकर सुनते हैं, हमारे दिलमें बैठकर सोचते हैं। हमारे दिलवाले भगवान्से कभी हमारी लड़ाई नहीं होती। बहुत मज़ा आया ब्रह्माजीको। कृष्णने कहा कि क्यों ब्रह्माजी, बड़े-बड़े वीतराग संन्यासी, राग-द्वेषरहित संन्यासी-वे भगवान्को प्राप्त करके अपनेको कृतकृत्य मानते हैं और ये ब्रजवासियोंको भगवान् मिल जायें तब भी इनको इनके प्रेमका पूरा फल नहीं मिला-यह क्या बात कहते हो?

देखो, यह पूर्वपक्ष बनाया कि हे भगवान्, अगर इन ब्रजवासियोंको तुम मिल भी जाओ, इनके घरमें माखन-चोर भी बन

जाओ, इनके घरमें चीरापहारी भी बन जाओ! 'अरे ओ कन्हैया!' 'हाँ गोपी'! 'देख, मक्खन पर चींटी चढ़ गयीं हैं। चींटी बीन-बीन कर 'फेंक'! वो देखो नमक रखा है, उठाकर ले तो आओ।' भले ऐसे मिल जायें भगवान् कि घरमें तुम सफाई करो।

एक दिन कोई ग्वालिन यशोदा मैयाके पास गयी। श्रीकृष्ण देखकर बोले कि मैया-मैया, यह धींगरी क्यों आई है तेरे पास? बोलीं कि तुम्हारे गुण वर्णन करने आयी है। कृष्णने कहा कि यह क्या हमारा गुण वर्णन करेगी? मैं रास्तेमें चलता होता हूँ तो यह मेरा हाथ पकड़कर घरमें ले जाती है और किवाड़ी बन्द कर लेती है और खुद तो तान दुपट्टा सो जाती है खाट पर और हमसे कहती है कि घरका काम करो। यह तो हमसे घरका काम करवाती है मैया। किसी दिन कहती है कि मेरे सिरमें बहुत दर्द है, जरा दबाओ तो लाला! किसी दिन कहती है कि छातीमें बहुत दर्द है, दबाओ! मैय्या, यह धींगरी बड़ी दुष्ट है। क्यों आयी है घरमें? इतने अपने हैं, इतने अपने! कहनेका मतलब कि जहाँ लज्जा नहीं, शर्म नहीं, परायापन नहीं-इतने अपने हैं। फिर भी ब्रह्माजी कहते हैं कि तुम इनको मिल जाओ, तब भी इनसे उऋण नहीं हो सकते।

भगवान् बोले कि संन्यासियोंको मैं मिल जाऊँ तो उनसे उऋण हो जाता हूँ और इनको मिलने पर इनसे उऋण नहीं होता हूँ। तो ये क्या संन्यासियोंसे भी बढ़कर हैं? ब्रह्माजी बोले कि, हाँ, ये ब्रजवासी संन्यासियोंसे भी बढ़कर हैं।

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः।।

देखो, घर-गृहस्थीके लोग संन्यासीसे क्यों छोटे हैं? गृहस्थमें तीन दोष हैं-एक तो वे राग-द्वेष किये बिना नहीं रह सकते। ये तो चोर हैं, उनकी भजन-सम्पत्तिको लूट कर ले जाते हैं। और, दूसरे ये गृहस्थ घरके जेलखानेमें ऐसे बन्द हैं कि छोड़कर निकल ही नहीं सकते। क्या

करें महाराज, भगवान्‌के दर्शनकी तो बड़ी इच्छा थी। बेटेने मनाकर दिया, बापने मनाकर दिया। सासजी नाराज हो रही हैं। बहू कहती है कि माँ तुम चली जाओगी तो मुझको घरमें रोटी बनानी पड़ेगी। बहू सोती है नौ बजे तक और सास बेचारी पाँच बजे उठकर घरमें झाड़ू लगाती है और बहूके लिए चाय बनाती है। हमको कई घरोंका मालूम है। यह तो स्थिति है।

तावत् कारागृहं गृहम्।

गृहस्थोंका एक दोष तो यहहै कि वे राग-द्वेषके चक्करमें फँसे हैं और दूसरा यह है कि वे घरके जेलखानेमें बंद हैं और अपनेको समझते हैं कि हम घरके मालिक हैं। घरसे निकल तो सकते नहीं और समझते हैं कि हम घरके मालिक हैं। और, तीसरी बात क्या है? एक बेड़ी उनके पाँवमें पड़ी हुई है। वह काहेकी है? मोहकी। दिखती नहीं है। छोड़कर नहीं जा सकते। दिलमें मोह है। इन तीन दोषके कारण गृहस्थ संन्यासीसे छोटे हैं। क्योंकि उनके मनमें राग-द्वेष है, वे घरके कारागारमें कैदी हैं, वे स्वयं मोहसे ग्रस्त हैं, छोड़ नहीं सकते।

वैसे ऐसा है कि गृहस्थोंको यदि छोटा बताओ तो वे नाराज हो जाते हैं। श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज अपना एक संस्मरण बताते थे-एक बार वे गंगा किनारे घूमते-घूमते किसी गाँवमें पहुँचे। तो वहाँ कोई रोटी न दे। वे तो लंगोटी लगाते और रोटी माँगकर खाते थे। तो गाँवमें कोई रोटी न दे। तो उन्होंने पता लगाया कि क्या बात है, इस गाँवके लोग रोटी क्यों नहीं देते हैं? तो मालूम हुआ कि एक कोई आर्य-समाजी साधु वहाँ आये थे। उन्होंने कह दिया कि ये मुस्टण्डे साधु माँगनेवाले जो साधु हैं इनको रोटी मत दिया करो। तो जो साधु आवे, उससे यह पूछो कि साधु बड़े कि गृहस्थ? साधु बोले कि साधु बड़े। वे कहें कि हम रोटी नहीं देंगे, जाओ। तो बाबा तो बड़े सिद्ध-पुरुष थे। वे तो हम लोगोंकी सिद्धि बता गये हैं। हमको बता गये हैं कि किसी भी गाँवमें जाने पर अगर रोटी न मिले तो यह नहीं कि उस गाँवको छोड़ दो। जम

जाओ। तीन दिन जरूर रहना। जहाँ लोग गाली दें, अपमान करें, खानेको रोटी न मिले, वहाँ कम-से-कम तीन दिन जम जाओ। तो देखो, फिर उस गाँवमें दो पार्टी हो जायेगी और आधे तुम्हारे भगत हो जायेंगे। तो बाबा जम गये। आकर एक आर्य-समाजीने पूछा, 'क्यों बाबा, मुस्टण्डा है, काम नहीं करता। दूसरेके सिर पर भार है। गृहस्थ बड़ा है कि साधु? बाबा बोले कि भइया, गृहस्थ बड़े हैं। हम लोग गृहस्थोंके बच्चे हैं। हमारी माँ भी गृहस्थ थी, उसीके पेटमें-से तो निकले हैं। गृहस्थोंसे रोटी लेकर खाते हैं। देखो, उनके सामने जाकर माँगते हैं कि रोटी दो, रोटी दो! गृहस्थ बड़े हैं। हमारे अन्दर क्या रखा है? हम तो भिखारी हैं। वह महाशयजी बड़े खुश कि यह साधु तो बड़ा अच्छा है भाई, गृहस्थोंको बड़ा बताता है। रोटी मिलनी शुरू हो गयी। तो दो-तीन महीने बाबा उसी गाँवमें रह गये और सारे गाँवको चेला बनाकर और रोटी देनेकी आदत डालकर तब वहाँसे आगे बढ़े। यह साधुओंकी बात बड़ी निराली है।

लेकिन; घर-गृहस्थीमें यह तीनों बात दुःखद तब है यदि एक तो गृहस्थका भक्त न हो। भगवान्‌का भक्त होगा तो क्या होगा? राग करेगा तो जिसके हृदयमें भक्ति होगी, उससे राग करेगा तो भक्ति और बढ़ेगी और बन्धन नहीं होगा। उससे राग करेगा तो भक्ति और बढ़ेगी और बन्धन नहीं होगा। अच्छा, उसके क्रोध भी आवेगा तो कब आवेगा? जो भक्ति नहीं करेगा, उसके ऊपर क्रोध आवेगा। तो उससे भी भक्तिकी वृद्धि होगी। और, वह घरमें जमा रहेगा तो भगवान्‌की पूजा करेगा, कीर्तन होगा, आरती होगी। तो जेलखाना तो मन्दिर बन जायेगा और उसका मोह भी होगा तो यह भगवान्‌का बालक है-यह समझकर होगा। तो घरमें रहना आश्रममें रहना हो जायेगा।

एक बात गृहस्थमें संन्यासियोंसे ज्यादा रहेगी! वह क्या? ये जो दुनियामें इधर-से-उधर भटकते रहते हैं, ये भजन-वजन नहीं करते। ये केवल रूक्षताके बल पर घूमते हैं। 'रूक्षता' माने रूखापन। जैसे आप

शरीरमें चिकनी चीज न लगावें तो आपका शरीर रूखा हो जाता है। ऐसे ये जो साधु लोग होते हैं, इनका दिल रूखा होता है। इनका मन रूखा होता है। ये सोचते हैं कि इस रूखाईके बल पर, इस रूक्षताके बल पर हम ईश्वरको प्राप्त कर लेंगे। परन्तु, यह रूक्षताके बल पर ईश्वर मिलने वाला नहीं है। स्नेह चाहिए। घर-गृहस्थीमें रहकर भजन ज्यादा किया जा सकता है।

एक बार भगवान्‌के भक्त हो जाँय, भगवान्‌के हो जाओ-घर भी भगवान्‌का, धन भी भगवान्‌का, मकान भी भगवान्‌का, सम्बन्धी भी भगवान्‌के, मैं भी भगवान्‌का-सब भगवान्‌का। तो राग-द्वेषादि भी भगवान्‌की भक्ति हो जायेंगे, घर भगवान्‌का मन्दिर हो जायेगा और 'मोहोऽङ्घ्रिनिगडो'-मोह जो है, वह भी भगवान्‌के प्रति हो जायेगा और भजन तो खूब होगा-ही-होगा। गृहस्थ संन्यासीसे कम कहाँ है? उसको भी भगवान् मिलते हैं।

●

: 15 :

तावद् रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम्।
तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः।।

गृहस्थ और साधु!

ब्रह्माजीने बड़ी समझदारीसे यह बात कही कि यह जो ब्रजवासी गृहस्थ हैं, कृष्ण तुम इनके सदा ऋणी रहोगे। इनसे उऋण नहीं हो सकते। कृष्णने कहा कि जब मैं अपने आपको दे देता हूँ तो बड़े-बड़े यति, संन्यासी, मुनि कृतकृत्य हो जाते हैं और मैंने अपने आपको इन्हें दे दिया तो अब मैं इनका ऋणी कैसे रहूँगा? ब्रह्माजीने कहा कि भजनमें गृहस्थ और संन्यासीका भेद नहीं है। गृहस्थाश्रममें दोष क्या है? दोष यह है कि गृहस्थाश्रममें राग हो जाता है। **'तावद् रागादयः स्तेन'**-जब संसारमें किसीसे राग-द्वेष हो जाता है तो वह हमारे मनको चुराकर दूसरी जगह पहुँचा देता है। 'स्तेन' माने चोर। राग-द्वेष गृहस्थके मनकी चोरी करते हैं। आपको पता नहीं चलेगा कि इसमें क्या चोरी है। चोरी यह है कि आप तो हैं मुम्बईमें और आपका दुश्मन है चीनमें। तो आपके मनमें उस चीनी दुश्मनके प्रति जो द्वेष है, वह आपके मनको शरीरमें-से निकालेगा, मुम्बईमें-से निकालेगा धीरेसे चुरा लेगा। हिन्दुस्तानमें-से चुरावेगा और आपके मनको चीनमें पहुँचा देगा। आपके मनकी चोरी हो जायेगी और आपको पता नहीं चलेगा। आपके मनको चीनमें दुश्मनके घर किसने पहुँचाया? आपके द्वेषने।

अच्छा, आप रहते हैं भारतवर्षमें और आपका यार रहता है अमेरिकामें। तो आप ख्याल करोगे कि इस समय वह क्या कर रहा होगा-वाशिंगटनमें है कि न्यूयार्कमें है, अपने फ्लैटमें है कि सड़कर

पर है। तो आपका मन वहाँ गली-गलीमें भटकने लगेगा। भला आपके मनको यहाँसे वहाँ किसने पहुँचा दिया? आपके रागने पहुँचा दिया।

अब ऐसे ही आप समझ लो कि आपका मन पड़ोसीके घरमें है या फिर सौतके घरमें है या यारके घरमें है? आपके मनकी चोरी हो गयी है और आपको पता नहीं चलता है। आप जहाँ हैं, वहाँ आपका मन नहीं है। तो गृहस्थाश्रममें एक दोष तो यह है। हम अलग बनाते हैं, तबतक हम भगवान्‌के नहीं हुए। जो भगवान्‌का हो गया वह भगवान्‌की दृष्टिसे देखने लगता है। उनको जो प्यारा है सो हमारा प्यारा है। जो उनको प्यारा नहीं है वह हमको प्यारा नहीं है।

देखो, पत्नी जब पतिके घर जाती है, ब्याह हो जाता है तो पतिका गोत्र ही पत्नीका गोत्र हो जाता है। फिर पतिका धर्म ही पत्नीका धर्म हो जाता है। फिर पतिके घरका आचार-व्यवहार ही पत्नीका आचार-व्यवहार हो जाता है। तो जैसे एक लड़की दूसरे गोत्रमें, दूसरे वंशमें, दूसरे माता-पितासे पैदा होने पर भी जब ससुरालमें जाती है तो सास-ससुर उसके माता-पिता हो जाते हैं, उसका वंश बदल जाता है, उसका गोत्र बदल जाता है, उसका सम्बन्ध बदल जाता है। ऐसे ही जब जीव संसारका सम्बन्ध छोड़कर भगवान्‌का होता है तब उसके सम्बन्ध बदल जाते हैं।

जब सम्बन्ध बदल गया तो राग-द्वेषका ढंग क्या हुआ, आपको सुनाते हैं।

एक भक्त हैं, वे एक दिन मुझसे एकान्तमें बात कर रहे थे। उन दिनों वेदान्तका नशा जरा ज्यादा चढ़ा हुआ था। बात-ही-बातमें उन्होंने कहा कि थोड़ा भजन किया करो। हमने कहा कि मुझसे तो भजन नहीं होता है। हमको भजन करनेकी क्रिया और भजनका विषय और भजनका कर्ता-ये सब मिथ्या भासते हैं कि हमारे स्वरूपमें सब मिथ्या हैं। मेरी भजनमें रुचि नहीं होती। जब मैं भजन करने बैठता हूँ तो ख्याल

होता है कि यह तो मिथ्या है। तो उनकी आँखसे झर-झर आँसू गिरने लगे।

एक बात आपको सुनाता हूँ। उनकी महिमा देखो! उनकी प्रतिष्ठा देखो! मैंने कहा कि क्या बात है?

वे बोले कि तुम मुझसे प्रेम करते हो कि नहीं?

मैंने कहा कि करता हूँ। फिर मुझे प्रसन्नता हो, यह चाहते हो कि नहीं?'

'मैं-चाहता हूँ'

'तो मेरा मन प्रसन्न हो-यह चाहते हो?

'हाँ, चाहता हूँ।'

वे बोले कि देखो, तुमसे मेरा मोह हो गया है, तुमसे मेरा राग हो गया है। मेरे मनमें कोई विक्षेप न हो, मेरा मन प्रसन्न रहे, इसके लिए तुम थोड़ा सा कुछ काम करते हो, आखिर माँके कहनेसे कुछ काम करते हो, पत्नीके कहनेसे कुछ काम करते हो, परिवारके कहनेसे कुछ काम करते हो, मित्रके कहनेसे कुछ काम करते हो। चेलेके कहनेसे कुछ काम करते हो। तो एक काम मेरे कहनेसे भी किया करो-थोड़ा-सा भगवान्‌का नाम लिया करो।

यह बात मैंने आपको क्यों सुनायी? समझो उस भक्तका मेरे प्रति राग है। परन्तु, वह राग क्या चाहता है, चूँकि वह भक्त है, वह भगवान् का है, वह यह चाहता है कि हम भजन करें। तो उसका राग उसके मनकी चोरी करके अमेरिका या रूस नहीं ले जाता। उसका राग उसके मनको भगवान्‌के पास ले जाता है और भगवान्‌के पास उसके ही मनको नहीं ले जाता, दूसरोंके मनको भी भगवान्‌के पास ले जाता है। आयी बात ध्यानमें। वह भक्तका हमारे प्रति राग तो है, परन्तु उसके मनमें रहनेवाला राग चोर नहीं है। उसके मनको दूसरी जगह नहीं ले जाता। उसका राग उसके मनको भी और जिससे राग है, उसके मनको भी भगवान्‌की ओर ले जानेकी कोशिश करता है। राग उसका चोर नहीं

है। आप इस घटनाकी सत्यता पर मत जाइये। लेकिन भक्तके रागका स्वरूप तो देखिये!

एक दिन मैं सबेरे सो रहा था। एक फकीर आ गये। बोले, 'अरे, बचवा, बचवा, अब हीं तू सोवत है'। मैंने कहा कि अरे जाने दो'। बोले कि अच्छा, सीधे उठकर तुम बैठ जाओ। और, भगवान्का भजन करो। सबेरे सोवेका बेला हौ? उठके भजन करा नहीं तो मारा एक चाँटा, नींद भाग जाइ। गुस्सा आया उनको। यह आपको नमूना बताया भला! उनका गुस्सा था। पर उनका गुस्सा उनके मनको चुराकर कहीं ले नहीं जाता। उनका गुस्सा भी अपने मनको और दूसरेके मनको भगवान्के पास ले जाता है।

तावद् रागादयः स्तेन।

जब भगवान्का हो गया, भगवान्का भक्त हो गया तो उसके मनमें भगवान्के सिवाय तो और किसीसे राग-द्वेष होता नहीं। अच्छा, रागकी यह पहचान-हमको यह बात मालूम है। एक आदमीका एकसे राग था। उसको रास्तेमें चलते-चलते अमरूदके पेड़पर एक बहुत बढ़िया अमरूद फला हुआ दिखा। बगीचा दूसरेका, फल दूसरेका भला! उसने झट जाकर तोड़ लिया और तोड़कर जेबमें रख लिया। उसके साथ जो था, उसने कहा कि बाबा, काहेको तोड़ते हो? उसने कहा कि तोड़ते हैं तो क्या हुआ? 'अच्छा, तोड़ लिया तो खा लो'। उसने कहा कि वाह, हम कैसे खायें? हम लेकर अपने मित्रको खानेके लिए देंगे तो वह कितना खुश होगा! देखो, यह राग है। दूसरेके बगीचेका फल तोड़ा, चोरीकी और खुद नहीं खाया, अपने प्यारेके लिए ले गया। देखो, संसारी रागकी बात बताते हैं।

अब एक भक्तके मनमें भगवान्से राग है। तो उसको जब कोई अच्छी चीज मिलेगी तो वह सोचेगा कि इस अच्छी चीजको कैसे भगवान्की सेवामें लगा दें। उसके रागका स्वरूप यह होगा। उस समय यह नहीं सूझेगा कि हम इस अमरूदको कैसे तोड़ें? यह नहीं सूझेगा कि

हम खा लें। यह सूझेगा कि इसको हम भगवान्‌की सेवामें लगा दें। बहुत सरल करके यह मैं आपको सुना रहा हूँ, जिससे भक्तिका भाव ठीक-ठीक ध्यानमें आवे।

एक भक्त महात्मा थे। उनके पास एक बड़े दिग्गज विद्वान् दर्शनके लिए आये। आये, दर्शन किया। शास्त्रकी चर्चा चली। पंडित थे-वह तर्क-पर-तर्क, युक्ति-पर-युक्ति प्रमाण-पर-प्रमाण दें। वे महात्मा बोले-'हे-हो, ऐसन कोई उपाय करा कि इह पंडितवा भगवान् क भगत होइ जाय'-ऐसा कोई उपाय करो कि यह पंडित भगवान्‌का भक्त हो जाय। अगर इतना बड़ा पंडित भगवान्‌का भगत हो जायेगा-कितना बड़ा पंडित है, कैसा शास्त्र उपस्थित है, कैसी बुद्धि शुद्ध है, कैसी युक्ति है। भक्त यह नहीं चाहता कि हमारा कोई भक्त हो जाय। जो अपने अहंकी पूजा चाहता है, वह तो भक्त ही नहीं है। वह तो अभिमानी है। यह पंडित कैसे भक्त हो जाय।

श्रीरामानुजाचार्यजीने एक दिन एक संसारीको देखा। वह एक वेश्याके प्रेममें पागल था। रामानुजाचार्यने सोचा कि इसके हृदयमें इतना प्रेम वेश्याके प्रति है, अगर यह भगवान्‌का प्रेमी हो जाता। देखो, उनके हृदयमें यह वासना हुई। किसीने देखा एक वेश्याको। भक्त था। उसने सोचा कि अरे यह संसारियोंसे पैसा लेती है, उनके सामने गाती है, बजाती है, नाचती है। उन्होंने उससे कहा कि अच्छा! ओ सुनो-सुनो, तुम यह सब काम क्यों करती हो? लोगोंके सामने नाच-गाकर उनको रिझाती हो। ऐसा क्यों करती हो? वह बोली कि पैसेके लिए! वह बोला कि अच्छा जाओ, तुमको जितना पैसा चाहिए वह हम तुमको देंगे। आजसे तुम भगवान्‌के सामने नाचो, गाओ, बजाओ। वेश्याको भगवान्‌की सेवामें भेज दिया।

तावद् रागादयः स्तेनाः
तावत् कारागृहं गृहम्

गृहस्थमें दूसरा दोष क्या है?

बोले कि हम घरमें नहीं रहेंगे तो घरमें दियासलाई भी न रहेगी- कोई-न-कोई उठाकर ले जायेगा। घर-गृहस्थियोंका बन्धन तो यही है न! बोले कि बहू घरकी सफाई नहीं करती है, झाड़ू नहीं लगाती है। हम नहीं जायेंगे तो घर गंदा हो जायेगा। हमारे पास ऐसे कहनेवाले लोग आते हैं कि हम अगर छोड़कर चले जायें तो घरमें झाड़ू भी नहीं लगेगी, चूल्हा नहीं जलेगा, रसोई नहीं बनेगी। आये-गयेको कोई खानेको नहीं पूछेगा। हम घर छोड़कर कैसे जायें? घर क्या बनाया, अपने पाँवमें बेड़ी डाल ली।

अब समझो कि एक भक्तके घर हम गये। वह भी घरसे कहीं बाहर नहीं जाता। पर उन्होंने घरमें ठाकुरजीकी पूजा जोड़ रखी है। बोले कि हम घर छोड़कर चले जायेंगे तो ठाकुरजीकी सेवा कौन करेगा? इनको भोग कौन लगायेगा? इनको फूल-माला कौन चढ़ावेगा? इनको इत्र कौन लगावेगा? महाराज! हम आपके आश्रममें नहीं चलेंगे। आप ही आओ, हमारे घरमें रहो। थोड़े दिन हमारे ठाकुरजीका दर्शन करो, इनका प्रसाद पाओ। देखो, क्या चमत्कार हमारे ठाकुरजीमें है। वह घरका बन्धन नहीं, घरका मोह नहीं है।

एक दिन ठाकुरजीने कहा कि भई, अब तुम्हारे घरमें तो बहुत रह चुके। अब हमारा मन है कि जरा वृन्दावनमें, दर्शन कर आवें। चलो महाराज! पूजा अपनी साथमें ली, सामग्री ली और चले गये वृन्दावन। घरका क्या बन्धन है? घर तो ठाकुरजीका है। यह बात है।

अब देखो, मोह भी कैसा विचित्र-विचित्र होता है। संसारी लोगोंके मनमें मोह होता है। उनको सत्य और झूठका ज्ञान नहीं है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका भी ज्ञान नहीं होता। गंगामें स्नान करते हैं और नर्मदाकी याद करते हैं। अच्छा, जो गंगामें स्नान करते नर्मदाकी याद करेगा, गंगाजी उसपर खुश नहीं होगी। नाराज हो जायेगी कि इसका मन तो हमारे पास है ही नहीं। भई उसमें तो श्रद्धा चाहिए। क्या गंगाजी नहीं पहचानती कि हमारे पास कौन, किसलिए आता है? वे इसको गंगामें

स्नान करे और नर्मदाकी याद करे तो गंगाके स्नानका जो फल है, वह ढँक जायेगा।

अच्छा, तुम सुन रहे हो कथा और बना रहे हो माला; समझ लो। तो तुम्हारा एक मन तो गया माला बनानेमें और एक मन गया कथा सुननेमें। दीयेकी बत्ती बना रहे हो। घरके लिए सब्जी काट रहे हो! सब्जी भी कट जायेगी और कानसे कथा भी सुन लेंगे। क्या कथा तुम्हारे ऊपर खुश हो जायगी? कथा तुम्हारे ऊपर खुश नहीं होगी। यह तो कथाका तिरस्कार हो गया न! कथाको सिर्फ तुम्हारे शरीरको बैठनेकी जरूरत नहीं है। कानकी भी जरुरत है, तुम्हारी आँखकी भी जरुरत है। कथाको तुम्हारे दिलकी भी जरुरत है, दिमागकी भी जरुरत है। कथा तुम्हारा प्यारा चाहती है कि कथा तुम्हारे माँसके लोथड़ेको धरती पर बैठाकर रखना चाहती है! तो भक्तिकी बात सीखनी होती है।

आपको देखो सुनाया-पहले तो मैंने एक-दो संस्मरण सुनाये हैं। हमको कल्पना नहीं आती है। तो हम पीछेकी याद करते हैं कि इस बातसे मिलती-जुलती कोई घटना कभी घटित हुई है कि नहीं।

तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः।

एक आदमीने यह प्रतिज्ञा की थी कि हम आजीवन भगवान्का भजन करेंगे, विवाह नहीं करेंगे। जब घरवालोंने बहुत जोर दिया तो ब्याह कर लिया। अच्छा, अब ब्याह कर लिया, भजन करने जायेंगे। लोगोंने कहा कि भाई, एक तो बच्चा हो जाने दो। बच्चा भी हो गया। फिर बोले कि जरा बड़ा हो जाने दो। बड़ा भी हो गया। बोले कि अब जरा ब्याह हो जाय। ब्याह भी हो गया। अच्छा, जरा इसके भी बच्चा-कच्चा हो जाने दो। इसका कभी अन्त आवेगा?

यह संसार अपने आप कभी नहीं छूटता। अगर तुम्हें इससे छूटना है तो कहीं-कहीं एक जगह जाकर इसे तुम्हें छोड़ना पड़ेगा। अच्छा, जो लोग ऐसा मानते हैं कि हमारे खाने-पीनेमें कोई धर्म नहीं

है, नियम नहीं है। उनके सामने हम ऐसी पचास चीजका नाम ले सकते हैं, जिसको देखते ही कहेंगे कि बाबा-रे-बाबा, मैं नहीं खाऊँगा। आखिर वे पचास चीज नहीं खाते हैं न! सृष्टिमें ऐसा कोई नहीं है जो सब चीज खा सके और सबको खा सके। तो कहीं-न-कहीं जीवनमें यह नियम धारण करना पड़ेगा कि नहीं, यह चीज हम नहीं खायेंगे, इनका हम नहीं खायेंगे। छोड़ देना पड़ेगा। जब कहीं-न-कहीं तुमको नियम बनाना पड़ता है, तो शुरुमें ही क्यों नहीं बना लेते कि जो धर्मके विरुद्ध है सो नहीं खायेंगे। अगर तुम अपने जीवनमें कोई नियम न रखो तो हम छुट्टी दे सकते हैं। परन्तु, ऐसा नहीं हो सकता। कहीं-न-कहीं तुम्हें मर्यादाका पालन करना ही है। किसीसे तुम कह सकते हो कि नहीं हम तुम्हारा पानी नहीं पीयेंगे? किसीसे कह सकते हो कि नहीं, यह पानी हम नहीं पीयेंगे? किसीसे कह सकते हो कि नहीं यह खाना हम नहीं खायेंगे? तो जब एक जगह तुम कहनेके लिए तैयार हो जाते हो, तो शुरुमें ही बता दो कि हम यह-यह नहीं खायेंगे! तुम्हारी गुजर हो जायेगी।

तो मोह बहुत बाँधता है। यह चित्तका पाँव पकड़कर संसारमें फँसाता है। जरा भगवान्‌के बन जाओ भला। तब देखो क्या मजा आता है। अपना घर मन्दिर हो जायेगा। अपना राग भक्ति बन जायेगी। अपना मोह प्रेमकी दृढ़ निष्ठा बन जायेगा। जरा भगवान्‌के होकरके तो देखो!

यावत् कृष्ण न ते जनाः

इसका अर्थ क्या हुआ? भक्तके लिए घर और वनका भेद नहीं है। जब भक्त स्वयं भगवान्‌का हो जायगा तो भक्तका सब कुछ भगवान्‌का हो जायेगा। ऐसे वृन्दावनके लोग मानते हैं कि वृन्दावनमें चार अंगुल तुम्हारी धरती है या एक पेड़ है तुम्हारा! तो क्या कहोगे? यह मेरा पेड़ है या यह मेरी धरती है? बोले कि वह मोह है कि नहीं? वह राग है कि नहीं? बोले कि नहीं, वृन्दावन तो भगवान्‌का है। भगवान्‌की

वस्तुसे राग होना भी भक्ति है। भगवान्‌के धाममें पैर जम जाना भी भक्ति है। एक चप्पेका मेरा होना भी भक्ति है। भगवान्‌की वस्तुमें मोह होना भी भक्ति है।

असलमें देखो भक्ति क्या है? तुम राग करते हो किससे? आजकल तो नये ढंगके लोग हैं न! पूछो कि कहाँ गये थे भई? तो कहेंगे कि ब्वायफ्रेंड या गर्लफ्रेंडसे मिलने गये थे। हे भगवान् ! तो उनसे होता है राग। अब देखो, उनसे जो तुम्हारा राग है, उसमें-से 'ब्वाय'को और 'गर्ल'को निकाल दो। अब तुम अपना मित्र भगवान्‌को बना लो। तो वह तुम्हारा राग कट जायेगा। अपने घरमें भगवान्‌की स्थापना कर लो। तुम्हारा घर मन्दिर हो गया। अपना मोह, जो परिवारमें है, जो कुटुम्बमें है, उसको भगवान्‌के साथ जोड़ दो। इसका नाम 'भक्ति' है। अब तुम्हारे घरमें और वनमें कोई फर्क नहीं।

भगवान् क्या देंगे? घरमें रहकर भजन करोगे तो भजन अधिक होगा तो भगवान् ज्यादा प्रसन्न हो जायेंगे। बोले कि अच्छा भाई जैसे घर छोड़ने पर संन्यासियोंको अपना दान कर देते हैं, वैसे इन भक्तोंको भी अपने आपका दान कर देते हैं। बल्कि, इतना ही नहीं, केवल अपने आपका ही दान नहीं करेंगे।

आपको भक्तिकी बात सुनाते हैं। जोशमें आकर व्याख्यान नहीं देते हैं।

देखो, ब्रह्माजीने कहा कि तब भी तुम उऋण नहीं होओगे। क्योंकि जो पूतनाको दिया, ज़ो बकासुरको दिया, जो अघासुरको दिया और जो मुक्ति चाहनेवाले संन्यासियोंको दिया, वही यदि इन प्रेमी-भक्तोंको भी दोगे तो उऋण नहीं हो सकते। हम तुम्हारे उऋणी हैं-तो ऋणी कहनेसे थोड़े ही उद्धार हो सकता है। और फिर कोई भक्त भगवान्‌को ऋणी बनाना चाहेगा क्या?

भगवान्‌ने कहा कि देखो ब्रह्माजी, हमने पूतना, अघासुर, बकासुरको मुक्ति दे दी, संन्यासियोंको उनके आत्माके रूपमें मिल

गया, भक्तोंको अपने लोकमें उठाकर ले गया। पर, ब्रजवासियोंके साथ तुम कहो तो कुछ और भी करेंगे। और क्या करोगे? और ऐसा करेंगे जो किसीके साथ नहीं किया। इनकी गोदमें शिशु बनकर इनका दूध पीयेंगे। माताकी गोदमें उसके वक्षःस्थलमें नंगे होकर सट जायेंगे। उनके पेटमें रहेंगे भीतर और बाहर भी पेटसे सट जायेंगे और उसका दूध पीयेंगे और वह उचकावेगी तो हँसेंगे। वह गोदमें लेकर हिलावेगी तो खुश होंगे। वह भी खुश हो जायेगी। बच्चा बनकर खुश करेंगे। फिर उसकी चोटी खींचेंगे, उसकी नाकमें अँगुली डालेंगे। उसके ऊपर कभी मूत देंगे। हमारा भक्त कितना खुश होगा! अच्छा, उसके हाथसे माखन-रोटी खा लेंगे। उसके बुलाये बोलेंगे, उसके नचाये नाचेंगे, उसके हँसाये हँसेंगे, उसके गवाये गावेंगे! बिलकुल उसकी कठपुतली बन जायेंगे। उसके लिए चोरी करेंगे तो कहेगा चोर-चोर। उससे छेड़खानी करेंगे तो कहेगा बदमाश, चंचल। उसकी सब सहेंगे। जैसे संन्यासियोंकी आत्मा हो जाते हैं, वैसे नहीं होंगे। उनके चोर हो जायेंगे, उनके जार हो जायेंगे, उनके ब्याहते हो जायेंगे। सब कुछ उनके हो जायेंगे। क्योंकि, भगवान्‌को पाप-पुण्यका तो ख्याल ही नहीं है और सुख-दुःख कभी होता ही नहीं। जैसे भक्त रीझे, वैसे रिझाते हैं। भगवान् भक्तोंकी कठपुतली। सम्पूर्ण विश्वके लिए वे ईश्वर होंगे।

एक बार यशोदा मैया पूछती है 'लाला', 'हाँ मैया' उसदिन मदारी आया था तो बन्दरको नचा रहा था। तो बन्दर कैसा नाचता था बेटा। तो झट एक डंडा ले लिया, अपने कंधे पर रखा और दोनों हाथ उसपर रखकर नाचने लगे। बोलीं कि वह बंदरियाको कैसे मनाता था बेटा! झट एक गोपी बैठी थी, उसके पास पहुँच गये और बोले कि अरे गोपी, तेरा पाँव छूऊँ, तू मान जा! तू मेरी घरवाली है। मायके मत जा। अरे बाप रे, गोपी कहती है-यह क्या करते हो।' 'देख मैयाको बताता हूँ कि बानर बंदरियाको रूठने पर' कैसे मनाता है। यह काम किसी संन्यासीके साथ करेंगे? नहीं करेंगे। देखो ब्रह्माजी, यह काम न तो

किसी संन्यासीके साथ करूँगा और न ही किसी सती-सावित्रीके साथ करूँगा। किसी धर्मात्माके साथ नहीं करूँगा। किसी ब्रह्मा, विष्णु, महेशके साथ नहीं करूँगा। यह काम तो मैं अपने प्रेमियोंके साथ करूँगा। तो संन्यासियोंसे ज्यादा हुआ कि नहीं हुआ?

ब्रह्माजी, हम ईश्वर होकर अपने प्रेमीके पराधीन हो जाते हैं। यह बात क्या किसी संन्यासीको प्राप्त हुई है कभी? ब्रह्माजीने कहा कि फिर भी तुम उऋण नहीं हो सकते। क्यों? इतना करने पर भी नहीं हो सकते? नहीं हो सकते!

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले।
प्रपन्नजनतानन्दसंदोहं प्रथितुं प्रभो।।
(10.14.37)

'प्रभो! आप विश्वके बखेड़ेसे सर्वथा रहित हैं, फिर भी अपने शरणागत भक्तजनोंको अनन्त आनन्द विवरण करनेके लिए पृथिवीमें अवतार लेकर विश्वके समान ही लीला विलासका विस्तार करते हैं।'

ब्रह्माजी कहते हैं! 'स्वामी, तीन लोकके मालिक! अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नायक! तुम अपने स्वरूपसे निष्प्रपञ्च हो। न किसीके पेटमें आते हो। न किसीके बच्चे बनते हो। न दूध पीते हो, न मूतते हो। न चोरी करते हो, न रूठते हो। न मनाते हो, न जार होते हो। तुम तो बिलकुल निष्प्रपंच हो। और, यह सब जो अपने प्रेमियोंको खुश करनेके लिए करते हो, वह तो 'प्रपञ्चं विडम्बयसि'-प्रपंच फैलाते हो। एक स्वाँग करते हो, एक नाटक करते हो। सचमुच तुम चोर नहीं हो जाते, जार नहीं हो जाते, बच्चे नहीं हो जाते, बन्दर-बंदरिया नहीं हो जाते। वह तो एक नाटक रचते हो। तो कहाँ इन ब्रजवासियोंका सच्चा प्रेम और कहाँ जने-जनेके साथ तुम्हारा नाटक! क्योंकि, तुमको मालूम रहता है कि मैं तो जो हूँ, सो तो है ही है। यह नाटक करने-करानेसे हमारा क्या बनता-बिगड़ता है? अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त

स्वरूपको जानते हुए, अपने ब्रह्मस्वरूपको जानते हुए यह प्रपंच वंचना करते हो। तो इस प्रपंच वंचनासे भक्तोंके सच्चे प्रेमका बदला कभी पूरा हो सकता है? आप ईश्वर हैं तो क्या! लेकिन; अपने सच्चे प्रेमियोंके प्रेमका बदला इस स्वाँगके द्वारा नहीं चुका सकते। वह तो उनको खुश करनेके लिए जैसे कोई कहानी सुना दे, चुटकुला सुना दे, लतीफा सुना दे, थोड़ी आँख मटका दे, थोड़ी कमर हिला दे-यह स्वांग करके जैसे सामने वालेको रिझावे-ऐसे ही यह-सब तुम्हारा स्वाँग है। और, अपनी प्रेमी जनताको आनन्दित करनेके लिए यह सब प्रपंच रचना तुम करते हो। इसलिए तुम अपने प्रेमी भक्तसे कभी उऋण नहीं हो सकते। बात वहीं-की-वहीं पहुँची।

कृष्ण बोले, 'ब्रह्माजी तुम तो हमारी सब पोल-पट्टी जान गये कि हम तो सिर्फ स्वाँग ही करते हैं, माया फैलाते हैं, प्रपंच करते हैं, ढोंग करते हैं। तुम तो तत्त्वज्ञानीकी तरह बात कर रहे हो। जान गये तुम हमारी महिमा। ब्रह्माजीने कहा-न-न, आप हमको फिरसे अभिमानमें डालना चाहते हैं क्या? देखो, मैं पहचान गया। इसलिए-जब आपने अघासुरको मुक्ति दे दी। आपने ग्वाल-बाल भक्तोंको यह दिखाया कि देखो हम अपने प्रेमियों, भक्तोंके लिए पापके पेटमें, अघासुरके शरीरमें भी घुस जाते हैं। अच्छा, एक सच्ची बात आप बताओ कि आप पहलेसे अघासुरके पेटमें मौजूद थे कि नहीं? मौजूद तो थे। तब फिर हम अपने भक्तोंके लिए अघासुरके पेटमें प्रवेश कर रहे हैं, यह ढोंगकी बात हुई कि नहीं? हाँ, ब्रह्माजी तुम ठीक समझ गये। अच्छा, जब मैं आया और मेरे मनमें कुछ और मंजुल लीला देखनेकी रुचि हुई कि कोई और मंजुल-महिमा दिखावें-तुम्हारे भोजन करते समय तुम्हारे बछड़ोंका अपहरण कर लिया और बछड़ोंको ढूँढते समय ग्वाल-बालोंका अपहरण कर लिया-तुम समझ गये थे कि नहीं? समझ तो गये थे कि ब्रह्माजीने हरण किया है। तुम अनजान क्यों बने रहे? अनजानपनेका ढोंग ही तो किया! स्वाँग ही तो किया। नाटक किया।

अच्छा, जब तुम सब ग्वालिनोंके बच्चे बनकर उनका दूध पीने लगे और सब गायोंके बछड़े बनकर उनका दूध पीने लगे तो तुमको यह ख्याल था कि नहीं मैं ब्रह्म हूँ। बोले कि ख्याल तो था। तब बच्चा और बछड़ा बननेका ढोंग ही तो किया। तो मैं समझ गया-स्वाँगसे तुम इन सच्चे प्रेमियोंसे उऋण नहीं हो सकते।

तब ब्रह्माजी तुम समझ गये? नहीं-नहीं, समझ कहाँ गया? तुम्हारा खेल समझना क्या मामूली है?

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः।।

(10.14.38)

'मेरे स्वामी! बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं-जो लोग आपकी महिमा जानते हैं, वे जानते रहें, मेरे मन, वाणी और शरीर तो आपकी महिमा जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं।'

स्वामी, जो आपके बारेमें जानते हैं, वे जानते रहें। हमको बहुत जानकारीसे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं बहुत आपसे क्या कहूँ? *मनसा मे वपुषा मे वाचा तव वैभवं गोचरो न भवति। तव मनसां तव वपुषा तव वाचा वैभवं मम गोचरो न भवति।*

अच्छा, अब इस प्रसंगको कल सुनायेंगे!

●

: 16 :

जानन्त एवजानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः।।

ब्रह्माजी भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं।

क्या प्रेम है श्रीकृष्णका ग्वाल-बालोंके प्रति कि ब्रह्माजीने एक वर्ष पहले बछड़ों और ग्वाल-बालोंकी चोरी की। उस समय हाथमें दही-भातका ग्रास लिये, फेंटेमें बाँसुरी खोसे और काँखमें सींग और बेंत दबाये बछड़ोंको ढूँढनेके लिए श्रीकृष्ण निकले थे। बोले कि जबतक हमारे सखा हमको मिलेंगे नहीं, तबतक हम खायेंगे नहीं। ग्रास हाथमें रहा। तबतक हम बैठेंगे नहीं। तबतक काँखके नीचेसे बेंत और सींग हटावेंगे नहीं। तबतक बाँसुरी बजावेंगे नहीं। कबतक? जबतक हमारे ग्वाल-बाल, हमारे प्यारे बछड़े हमको मिलेंगे नहीं। अद्वितीय होकर भी अपने मित्रोंको ढूँढ रहे हैं। सर्वज्ञ होने पर भी ढूँढ रहे हैं, उनका पता नहीं चलता। और, सर्वत्र परिपूर्ण होने पर भी चारों ओर घूम-घूमकर ढूँढ रहे हैं। ढूँढनेका ढोंगकर रहे हैं। क्यों? बोले कि तुम प्रेमी तो हम भी प्रेमी। तुम हमको ढूँढते हो, हम तुमको ढूँढते हैं। तुम हमारे लिए रोते हो, हम तुम्हारे लिए रोते हैं। यह रहस्यकी संवेदना जो है, वह हृदयको ही समान स्तर पर ला देती है। भगवान् भक्त बन गये, क्योंकि ढूँढ रहे हैं। ढूँढना तो भक्तका काम है। और, भक्त भगवान् बन गये,

क्योंकि भगवान् उनको ढूँढ रहे हैं। ढूँढा जाता है भगवान् और ढूँढता है भक्त। लेकिन; यहाँ भगवान् ढूँढ रहे हैं और भक्त ढूँढा जा रहा है। बदल गयी लीला!

अच्छा, भला भगवान् ऐसा क्यों करते हैं? देखो, कोई बनावटी ईश्वर हो तो ऐसा कभी नहीं करेगा। यह बनावटी ईश्वर क्या होता है? जिनको यह डर लगा रहता है कि कोई हमको जीव न समझ ले। हर समय सावधान रहते हैं बनावटी ईश्वर। कहीं हम जीव न हो जायें। अरे, जो असली ईश्वर है, वह कभी जीव होता ही नहीं। तो वह निडर होकर प्रेम करता है। असलमें प्रेम ईश्वर कर सकता है, क्योंकि वह निडर है। उसको फँसनेका डर नहीं है, उसको गिरनेका डर नहीं है, उसको बँधनेका डर नहीं है, उसको नरकमें जानेका डर नहीं है। प्रेम तो असलमें ईश्वर ही कर सकता है। जीव क्या प्रेम करेगा? उसको तो पग-पग पर डर लगा है कि कोई हमको कलंक न लगा दे। कोई हमको पकड़ न ले। कोई हमको बाँध न ले। कोई हमको ठग न ले। ये डरनेवाले बाप रे क्या प्रेम करेंगे? प्रेम तो ईश्वर करता है।

बोले कि भाई, ईश्वर जब ढोंग नाटक भी करता है तो उसका कुछ रहस्य होता है। ठीक है, ईश्वरका रहस्य जो लोग जानते हैं सो जाने।

और कोउ समुझे सो समुझे,
हमको इतनी समझ भली।
ठाकुर नंद किशोर हमारे,
ठकुराइन वृषभानु-लली।।

बहुत समझ भी बोझ हो जाता है। और, एक बात हम आपको बता देते हैं कि आप दुनियामें बहुत समझनेकी कोशिश मत करो। दुनियामें जो बहुत समझनेकी कोशिश करता है, वही दुःखी रहता है। एक आदमी बहरा था। तो घरमें पत्नी भी उसके लिए कुछ बकती रहती थी, बेटा भी कुछ बकता रहता था-ये बुड्ढा मरता नहीं है, चाबी

अपने हाथमें लेकर बैठा हुआ है। सबके ऊपर नजर रखता है। पत्नी भी बोले, बेटा भी बोले, बहू भी बोले। पर; वह तो बेचारा समझे नहीं। वह तो यह समझे कि ये लोग हमसे बड़ा प्रेम करते हैं। एक दिन किसी महात्माके पास गया। महात्माने कहा कि अरे! बुड्ढा हो गया, अब तो भगवान्का भजन कर। बोला कि महाराज, हमारे घरके बच्चे, हमारी पत्नी-इतना प्रेम हमसे करते हैं। वे तो क्षणभर हमारे बिना रह नहीं सकते हैं। महात्माने कहा कि अच्छा ऐसा? ले! और, एक चुटकी भभूत उसके ऊपर डाल दी। सो उसको सुनायी पड़ने लगा। बोले कि देखो, घरमें बिलकुल किसीको मत बताना कि हमको सुनायी पड़ता है। अब वह महाराज घरमें गया तो बेटेकी बात सुने कि यह बुड्ढा मरता नहीं है, चाबी लेकर बैठ गया। पत्नीकी बात सुने कि ये तो हर समय हमारे ऊपर नजर रखते हैं। बहू कहे कि यह ससुरजी हमारी ओर कैसे देखते हैं? अब तो उसने जो लोगोंकी बात सुनी कि अच्छा, इस बातका ध्यान रखो कि ये अपना रुपया-पैसा कहाँ रखते हैं? एक दिन सोवें तो सब खींच लिया जाय। तब फिर उन्होंने घरके सब लोगोंको बुलाया और कहा कि देखो भाई, महात्माकी कृपासे हमारे कानसे अब सब सुनायी पड़ने लगा है। अब आप लोगोंको जो कुछ चाहिए सो ले लो और हमको छुट्टी दो। अब हम भगवान्का भजन करेंगे।

तो, दूसरेके दिलमें ज्यादा नहीं घुसना। पतिमें भी खोट है, पत्नीमें भी खोट है, बेटेमें भी खोट है, माँमें भी खोट है। ये तो जबतक मालूम नहीं है, तबतक सृष्टि चलती है। तो भक्त लोग कहते हैं कि ऐसे ही भगवान्के बारेमें भी ज्यादा जाननेकी कोशिश नहीं करना, उससे प्रेम ही करना। भगवान्के प्रति खुफियागिरी करनेका, सी आई डी पुलिस बनकर और भगवान्के पीछे पड़ें, इसकी जरूरत नहीं है। भगवान् जो कुछ है, जैसा कुछ है, वह प्रेम करने योग्य है। वह भय करने योग्य नहीं है।

कई लोग तो कहते हैं कि भगवान्‌को जानते हैं। निर्गुणके मैं दो नाम आपको बताता हूँ, एक बड़े ऊँचे भक्तके मुखसे सुने हुए दो नाम हैं-एक है गुण दरिद्र। इसका मतलब समझ गये आप? ये भक्त लोग जब आपसमें चर्चा करते हैं तो कहते हैं कि उस गुण-दरिद्रकी चर्चा मत करो। दूसरा नाम है 'प्रमाण-शून्य'। चिन्मात्र जो है, वह प्रमाण शून्य है, किसी प्रमाणका प्रमेय नहीं है और निर्गुण है माने गुण-दरिद्र हैं। तो जिसके होनेमें कोई प्रमाण ही नहीं है और जो बिलकुल गुण दरिद्र है, उसकी चर्चा क्या करना? यह आपको निर्गुण ब्रह्मका दो नाम बताया, जिन्हें वेदान्तियोंसे बात करनेमें समय-समय पर इनका उपयोग कर सकते हो। छुट्टी है। ये उस गुण-दरिद्दरके पीछे लगे हैं भला! हमारे गाँवकी बोलीमें दरिद्रको 'दरिद्दर' बोलते हैं।

आओ,

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो।
मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः।।

जिनको यह अभिमान हो गया कि हम ज्ञानी हैं, हमने जान लिया-उनसे कहो कि बाबा, तुम्हारा ज्ञान तुम्हें मुबारक हो। 'जानन्त एव जानन्तु'-जाननेवाले जाना करें। देखो, उपनिषद् साफ कहता है-अब जो लोग कहते हैं कि हम ज्ञानी हैं, उनके सामने उपनिषद्‌का मंत्र रखो-

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेदसा'।

जिसने नहीं जाना उसने जान लिया। जिसने यह जाना कि ब्रह्म मतिका विषय नहीं है, उसने ब्रह्मको जान लिया और जिसने यह जाना कि ब्रह्म मतिका विषय है, बुद्धिका विषय है, हमने बुद्धिसे उसको जान लिया-उसने नहीं जाना। तो जब आपके सामने कोई दावा करे कि हमने जान लिया तो यह मंत्र याद कर लो,

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेदसा।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातं अविजानताम्।।

जो भक्त कहता है कि मैंने भगवान्‌को नहीं जाना–उसने जान लिया। और जो कहता है कि हमने बुद्धिवृत्तिसे अथवा साक्षी–भास्यके रूपमें परमात्माको जान लिया, उसने नहीं जाना। इसलिए, उपहासास्पद हो गया 'जानत एव जानन्तु किं बहूक्त्या'। अरे, बहुत बकवास करनेसे कुछ सिद्ध होता है। कामकी बात थोड़ी–सी बहुत होती है। सरसोंके दाने भरकी कस्तूरी शरीरकी असमर्थताको दूर कर देती है और एक टोकरी भूसी किं बहूक्त्या? कस्तूरी चाहिए, भूसी नहीं चाहिए। बहुत बोलनेसे क्या लाभ?

न मे प्रभो मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः।

'विभुं' माने व्यापक। उस विभुकी जो वस्तु है, उसको वैभव बोलते हैं। विभोः इदं वैभवं, प्रभुः इदं प्राभवं, गुरुका गौरव बनेगा। आओ, नापें। ब्रह्माजी बोले कि बाबा, मेरा मन तुम्हारे वैभवका स्पर्श नहीं कर सकता–'अचिन्त्यत्वात्'। प्रभुका जो वैभव है, यह मनसे नापनेकी चीज नहीं है। जैसे कूप–मण्डूक–कूएँका मेंढक समुद्रके विस्तारको नहीं समझ सकता, ऐसे संसारके विषयोंमें डूबा हुआ मन भगवान्‌के वैभवको नहीं समझ सकता। मन थक जायेगा। आप सोचने लगो। भगवान् कितने विशाल–मन थक जायेगा। भगवान् कैसा अविनाशी? आपका मन थक जायेगा। अनादि अनन्त है। भगवान् कैसा सर्वात्मा? आपका मन थक जायेगा। क्योंकि, मनके भीतर जब चीज नहीं समायेगी तो जैसे कपड़ेकी थैलीमें कोई पहाड़की चट्टान घुसेड़ने लगो तो वह थैली फट जाती है। ऐसे नन्हें–से मनमें जब कोई परमात्माको भीतर लाना चाहता है तो मन अपना रूप छोड़ देता है।

नारायण! ब्रह्माजीने क्या देखा? ब्रह्माजीको ख्याल था कि मैं सृष्टिका बनानेवाला हूँ। मेरे जितना भगवान्‌को और कोई समझ सकता है? तो उन्होंने देखा कि एक ब्रह्मा चारमुखका और उसकी बनायी हुई सारी सृष्टि प्राणी–वर्ग सब। आपको यह मालूम है कि नहीं, कि ब्रह्मा

केवल प्राणियोंके शरीर ही बनाता है। मिट्टी, पानी, आग, हवा, आसमान-पंचभूतको ब्रह्मा नहीं बनाता। वे तो हर ब्रह्माण्डमें एक ही होते हैं। वे ईश्वरके बनाये हुए होते हैं।

एक बार एक महात्माने हमको यह बात समझायी कि देखो, मकान जीव बना सकता है, लेकिन मिट्टी जीव नहीं बना सकता। रसोई जीव बना सकता है लेकिन अग्नि जीव नहीं बना सकता। पंखेसे हवा कर सकता है मनुष्य। लेकिन वायुका निर्माण नहीं कर सकता। अपनी कोठरीमें इतनी लम्बाई रहे, इतनी चौड़ाई रहे, इतनी ऊँचाई रहे-यह मनुष्य कर सकता है। पर, आकाश मनुष्य नहीं बना सकता। तो यह जो प्राणियोंके शरीरकी रचना है, यह जीव अपने कर्मानुसार भी कर सकता है और कभी-कभी कोई जीव कर्मोत्कर्षसे ब्रह्माका पद प्राप्त करके ब्रह्माण्डके सब प्राणियोंका शरीर बना सकता है। परन्तु, ब्रह्माण्डमें जो पंचभूत हैं, वे जीव नहीं बना सकते। पंचभूतमें जो एक सत्ता है, उसको जीव नहीं बना सकता और उस सत्ताका जो ज्ञान है, उसको जीव नहीं बना सकता और उस सत्ताका जो ज्ञान है, उसको जीव नहीं बना सकता। तो यह जीव सोच ही नहीं सकता कि ईश्वर कितना बड़ा है। तो इसका अर्थ है कि जरा सिर झुकाओ। उपासनाकी सिद्धिके लिए यह बात कही गयी है भला! ज्ञानकी सिद्धिके लिए नहीं। जरा सिर झुकाओ।

चौबीस घंटामें-से जरा एक घंटा ईश्वरके लिए रखो। अच्छा, एक घंटा न सही, आधा घंटा सही। एक ही बारमें एक बटे दो कर दिया। पर, आपके पास जब कालका चौबीस घंटा है तो उसमें थोड़ा-सा ईश्वरके लिए क्यों नहीं? कालको पवित्र करनेके लिए आवश्यक है। इससे आपका जीवन पवित्र होगा। क्योंकि, आपका जीवन कालमें चल रहा है। अच्छा, आपके घरमें बारह फुट चौड़ा, सोलह फुट लम्बा एक कमरा है। उसमें एक फुट जगह ईश्वरके लिए नहीं निकाल सकते? क्या विडम्बना है? शर्मकी बात है भला!

अच्छा, आपके घरमें इतनी वस्तुएँ। फालतू कितनी चीजें हैं, जरा देखना। एक मूर्ति रख लो, एक शालग्रामकी शिला रख लो, एक नर्मदेश्वर रख लो। पत्थरके रख लो, पीतलके रख लो, चाँदीके रख लो, सोनेके रख लो। मिट्टीकी बनी मूर्ति रख लो। एक समय रखो ईश्वरके लिए, एक स्थान रखो ईश्वरके लिए और एक वस्तुके रूपमें ईश्वरको रखो। अच्छा, उनके लिए थोड़ी अंगुली हिलाओ। माला लेकर चलाओ। अगर हाथ हिलानेमें आलस्य आवे तो जरा जीभ ही चला लो भगवान्‌के लिए। जीभ हिलानेमें भी तकलीफ होती है? थोड़ी-सी क्रिया ईश्वरके नाम पर रखो भला! अच्छा भाई, बादाम नहीं है तुम्हारे घरमें, काजू नहीं है, ठीक है। पर क्या चारचनेका बन्दोबस्त भी आप भगवान्‌के नाम पर रोज नहीं कर सकते? उसको दूसरेको मत खिलाओ, खुद खा जाओ। क्या बात है? अरे, तुलसीका एक पत्ता नहीं मिलता है आपको ठाकुरजीके लिए।

इसका मतलब है कि भगवान्‌के सामने झुको। थोड़ा समय दो भगवान् के लिए-एक काल और थोड़ा स्थान-देश दो भगवान्‌के लिए, थोड़ी वस्तु दो भगवान्‌के लिए, थोड़ी क्रिया दो भगवान्‌के लिए! आँखसे एक मिनट उनकी ओर गौरसे देखो! उनके लिए हाथ जोड़ो। उनके लिए घंटी घनघना दो थोड़ी-सी और देखो, वैसे तुम कहोगे कि आज हमारा हलुआ खानेका मन है तो घरवाले कहेंगे कि चटोरा है। कहो कि आज ठाकुरजीको हलुआ भोग लगावेंगे। अरे मोहनभोग लगावेंगे। कोई तुमको चटोरा भी नहीं कहेगा औ तुमको खानेको भी मिल जायेगा। ये साधु लोग हैं न, बड़े ही बुद्धिमान होते हैं। वे यह नहीं कहते हैं कि आज हमारा मालपूआ खानेका मन है। बोले कि देखो, आज खीर-मालपूआ ठाकुरजीको भोग लगानेका दिन है। दिन नहीं मिले तो कहेंगे कि आज हमको ठाकुरजी सपनेमें कह गये हैं कि खीर-मालपूआ खायेंगे। खायेंगे तो वही न!

अच्छा, आप अपने शरीरके लिए रुपया-दो-रुपया खर्च करते

हैं कि नहीं करते हैं? आप एक नया पैसा रोज ठाकुरजीके लिए निकाल दिया करो भला! न्योछावर कर लो एक नया पैसा और किसी गरीबको दे दो। यह नहीं बनता है। अपने लिए सौ रुपयेकी साड़ी खरीद लावेंगे और ठाकुरजीके लिए एक नये पैसेकी न्योछावर नहीं कर सकते।

तो यह जो ब्रह्म-ब्रह्म करके, प्रमाण-शून्य; गुण-दरिद्रकी चर्चा करके जो अपने जीवनको हम ईश्वरसे विमुख कर लेते हैं, ईश्वरसे वंचित कर लेते हैं, वह गलत है। तुम स्त्रीके लिए रोते हो, पुरुषके लिए रोते हो, बच्चेके लिए रोते हो, धनके लिए रोते हो। धड़कन बढ़ जाती है दिन भरमें एकाधबार। परन्तु, ईश्वरके लिए चार बूँद आँसू तुम्हारी आँखोंमें नहीं आते। हमारा प्राणेश्वर, हमारा हृदयेश्वर हमारी अन्तरात्मा युग-युगसे बिछुड़ी हुई, जन्म-जन्मसे हम उससे अलग होकर भटक रहे हैं। उसकी याद नहीं आती है। उसके लिए रोना नहीं आता है। तुलसीदासजीने इसीलिए एक जगह गाली दी। आप बर्दाश्त कर लो, उस गालीको हम सुना देते हैं, भला! क्योंकि, आखिर आपके दुश्मनने आपको गाली दी है कि नहीं? आपको सहना पड़ा है न! आपके भाई भतीजे भी कभी-कभी गाली देते हैं। वह भी सहना पड़ता है। पति-पत्नीमें भी गाली-गलौज हो जाती है। उसको भी सहना पड़ता है।

हम लखि हमहि हमार लखि हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै राम नाम जपु नीच।।

आँखोंमें सगुण बसा है और हृदयमें निर्गुण बसा है और जिह्वा पर नाम-रत्न है।

मनहूँ पुरत सम्पुट लसत तुलसी ललित ललाम।।

मानों सोनेकी डिबियामें-डिबियाका एक पहल आँख है एक पहलू हृदय है। नीचेवाली गहरी ड़िबिया जो है, वह हृदय है और ढक्कनवाला हिस्सा जो है, वह आँखकी तरफ है। और,

जीभ है बीचमें। मानों सोनेकी डिबियामें, सोनेके केसमें हीरा रखा हुआ है।

नारायण! ईश्वरकी अनन्तता जैसी कही जाती है, वैसी ही है। ईश्वर वैसा ही अद्वितीय है। ईश्वर वैसा ही प्रत्यकचैतन्याभिन्न है। लेकिन अपने इस नन्हें-मुन्ने जीवनको अगर नन्हें-मुन्ने ईश्वरके साथ सम्बद्ध नहीं बनाओगे तो यह जीवन सूखा ही रह जायेगा, रूखा रहेगा, भूखा रहेगा।

अच्छा तो मनसे ईश्वरकी पूजा करो।

तव वैभवं वपुषा गोचरं न।

अब कहो कि शरीरसे नाप लेंगे तुमको। तो एक-एक कृष्णके साथ ब्रह्माने देखा-काल, स्वभाव, प्रकृति, गुण, महत्तत्त्व, अहंतत्त्व, पंचतन्मात्रा और ब्रह्मा, विष्णु, महेश। चार-चार मुँहके ब्रह्मा, आठ-आठ मुँहके ब्रह्मा, सोलह-सोलह मुँहके ब्रह्मा, तरह-तरहके ब्रह्मा कृष्णके सामने खड़े होकर स्तुति कर रहे हैं। यह शरीरसे है।

अच्छा, अब वाणीकी बात लो!

तव वैभवं मम वाणी गोचरं न।
परिच्छेतुं यातावनलमनलस्कन्ध वपुषः।

ब्रह्मा और विष्णु शंकरजीके ज्योतिर्लिङ्गका अन्त पता लगानेके लिए गये। क्या ज्योतिर्लिङ्गका अन्त मिला? नहीं। कहाँ जाओगे ढूँढने? आजतक ईश्वरका अन्त किसीने पाया? जिसका अन्त मिल जाय वह क्या ईश्वर है? अच्छा, आओ वाणीसे बोलें। क्या बोलोगे वाणीसे? तो अचिन्त्य होनेके कारण, अनन्त होनेके कारण और शब्दातीत होनेके कारण वाणीके विषय नहीं हैं भगवान्।

इसीलिए यथाशक्ति वाणीसे स्तुति करो, यथाशक्ति शरीरसे पूजा करो और यथाशक्ति मनसे ध्यान करो। इसमें एक दोषसे युक्त हो गये तुम। कोई कहेंगे कि हम पूरा करेंगे। पूरा नहीं होता, इसलिए नहीं करेंगे। एक दिन एक आदमी भूखा था। उसने जाकर चौकेमें देखा तो दो रोटी

पड़ी थी। उसने कहा कि दो रोटीसे कोई हमारा पेट तो भरेगा नहीं, तो खानेसे क्या फायदा है? दो रोटी भी नहीं खायी। भूखा रहा न! तो उसने बुद्धिमानीका काम किया? कि मूर्खताका काम किया? मूर्खताका काम किया!! यदि कहो कि निर्गुण बुद्धिका विषय नहीं होता तो अब बुद्धिको हम निर्गुणमें, सगुणमें, ईश्वरमें नहीं लगावेंगे, संसारमें ही लगावेंगे। तो वह मूर्ख हो गया। तुम्हारी जितनी बुद्धि निर्गुण, सगुण ईश्वरमें लगती है, उतनी लगाओ तो धीरे-धीरे बुद्धिका प्रवेश होता जायेगा।

वह दृष्टान्त आपको याद होगा-पहले-पहल लालटेन बनी थी। मनुष्यको जब वह जलाकर दी गयी और रातको उससे कहा गया कि दो मील जाओ और अमुक काम करके आओ। तो उस मनुष्यने कहा कि इस लालटेनसे हमको दस गज दिखता है। दो मील कैसे जायेंगे? वह तो वहाँ खड़ा हो गया। तो जानकार सज्जनने उसे बताया कि देखो, इस लालटेनसे जब तुमको दस गज सूझता है तो तुम दस गजतक चले जाओ। फिर आगे दस गज और सूझेगा। तो फिर दस गज चले जाना। फिर आगे दस गज और सूझेगा। और इस तरह तुम दो मीलका रास्ता पारकर लोगे और अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाओगे। इसी प्रकार जब हम अपनी बुद्धिसे ईश्वरकी ओर चलने लगते हैं तो पहले ईश्वरके बारेमें थोड़ी जानकारी होती है। उसके अनुसार यदि तुम पूजा करो, नाम-जप करो, ध्यान करो, सेवा करो तो उसके आगे भी जो ईश्वरका भाव है, वह तुम्हारे हृदयमें आवेगा। फिर उसके आगे करोगे तो आगे आवेगा।

पूर्व भूमौकृता भक्तिः उत्तरां भूमिमानये।

एक सीढ़ी पर अगर चढ़ जाओगे तो दूसरी सीढ़ी पर चढ़नेकी योग्यता तुम्हारे अन्दर स्वयं आजायेगी। और, अगर पहली ही सीढ़ी पर न चढ़ो तो आखिरी सीढ़ी पर पहुँचनेकी आशा ही कहाँ रही?

मैं बोरी ढूँढन चली, रही किनारे बैठ।

रोज थोड़ा-थोड़ा समय निकालो भगवान्‌के लिए। थोड़ा नाम-जप करो, थोड़ी पूजा करो, थोड़ा ध्यान करो, थोड़ा चिन्तन करो, थोड़ा सत्संग करो। सब चीज कायदेसे मिलती है, बेकायदे कुछ नहीं मिलती। एक दिनमें किसीको ईश्वरका दर्शन होना मुश्किल है।

अब इसका दूसरा भी एक अर्थ है।

तव मनसो वपुषो वाचो वैभवं मम न गोचरः

एक तो यह है। तुम्हारा जो वैभव है, तुम्हारे मन, वाणी, शरीरका वैभव। और दूसरा इसका अर्थ यह है,

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो।

तुम क्या सोचते हो, तुम्हारा शरीर कितना बड़ा है और तुम क्या बोलते हो-इसका अभिप्राय हमारी समझमें नहीं आता। और हमारे मन, शरीर और वाणी तुमको विषय नहीं कर सकते।

श्रीकृष्ण तो चुपचाप खड़े हैं। बहुत बोलना-यह बड़प्पनका लक्षण नहीं है। तो लोग बोल-बोलकर अपना बड़प्पन जताते हैं। दूसरेको बोलने दोगे तो तुम्हारी जानकारी बढ़ेगी और दूसरेका बोलना बन्द करके तुम खुद ही बोलोगे तो तुम्हारी जानकारी नहीं बढ़ेगी, दूसरेकी जानकारी बढ़ेगी। सामनेवालेकी पूरी बात सुने बिना और उसका अभिप्राय समझे बिना जवाब देने लगना या बीचमें बोलने लगना मूर्खताकी निशानी है। क्योंकि तुम उसकी बात ही नहीं सुनते हो! इतना वेग आता है चित्तमें कि हम सामनेवालेकी बात न सुनें और जैसे हम समझ ही गये-झटसे कुछ बोल दें। और, इसमें सौ में निन्यानवे बार गलती होती है कि हम सामनेवालेका अभिप्राय समझे बिना बोल देते हैं और जब हम अपना अभिप्राय बोल देते हैं तो सामनेवाला हमारे पक्षपातको समझ जाता है और तब वह समझ जाता है कि हमारे दोस्त हैं कि दुश्मन हैं। तब वह अपनी बात कहे कि न कहे! और, तुम चुप रहो, उसके दिलकी सब निकल आने दो, वह अपनी दोस्ती-दुश्मनी उगल दे, उसको तुम पहचान लो, फिर

जैसी मौज हो वैसी बात करो! यह जीभ पर रोक न होना, जो मनमें आया सो बिना बिचारे बोल देना-यह पशुत्वसे भी नीचे है। कैसे? आपको सुनावें!

पशु बहुत कम बोलते हैं। आप गायको देख लो, भैंसको देख लो, ऊँट, हाथीको देख लो, शेरको देख लो। पशु बहुत ज़रूरत पड़ती है, तब बोलता है। हम कुत्ते और गधेकी बात नहीं करते हैं। वे तो बिना मतलब भी बोलते हैं। लेकिन; सिंह कभी-कभी गरजता है। 'किं बहूक्त्या'-बहुत बोलनेसे फायदा नहीं है।

ब्रह्माजी बोल रहे और कृष्ण तो चुप हैं। असलमें जबतक जीव बोलता है, तबतक ईश्वर बोलता ही नहीं है। जब जीवका बोलना बन्द हो जाता है, वह मौन हो जाता है-ईश्वरकी आवाज तब सुनायी पड़ती है। अपने चित्तको मौन कर दो और निर्वासन हो जाओ! नहीं तो वासना बोलने लग जायेगी। वासना ही बोलती है। न ज्योतिष बोलता है, न भूत बोलता है। न प्रेत आकर बात करता है। अपनी वासना बात करती है। ऐसी-ऐसी बात लोग सोचते हैं, हमने देखा है। हमसे ही बात करते हैं तो हमारे बारेमें ऐसी बात करते हैं जो बात हमारे दिमागमें कभी आयी हुई नहीं है। वे अपनी बातका हमारे ऊपर आरोप कर देते हैं तो बड़ा मजा आता है। इसलिए, अपनी वासना और अपना बोलना-वाक् और वासना दोनोंको बन्द कर दो और देखो, ईश्वर बोल रहा है। और, ईश्वर बड़ी प्रेमकी बात करता है।

असलमें यह वासना और ये शब्द-ये हमने अपने अलग कर लिये हैं। ये हमारे हैं-हमारी वासना है, हमारा बोलना है। इसलिए, ईश्वर अलग पड़ गया है। यदि हम अपनी वासना और अपने शब्दको छोड़ दें तो हमारे और ईश्वरके बीचमें कोई अन्तर ही नहीं रहेगा। अन्तर उपाधिका है और उपाधिके केवल दो ही रूप हैं-वासना और शब्द, स्फुरण और शब्द। उपाधिका तीसरा कोई रूप ही नहीं है। केवल उपाधिगत पार्थक्य है।

तो ब्रह्माजी बोले–**अनुजानीहि मां कृष्ण**–कृष्ण, प्यारे! 'कृष्ण' माने आकर्षक। जैसे चुम्बक लोहेको खींचता है, ऐसे कृष्ण जीवके चित्तको खींचता है। उसकी बोलन, उसकी चलन, उसकी चितवन, उसकी मुस्कान, उसकी सुघराई, उसकी रसिकाई–एक–एक वस्तु जीवके चित्तको अपनी ओर खींचती है। इसलिए उसका नाम 'कृष्ण' है।

ब्रह्माजी बोले कि महाराज, बड़ी गलती हुई। क्या गलती हुई? बोले कि–

सर्वं एवं वेत्सि सर्वदृक्

सबकी आँख तो तुम्हीं हो। सबकी आँखकी पुतली हो तुम। इसलिए, सब जो देखते हैं सो तुम देखते हो। 'सर्वदृक्'। तो सब तुमको मालूम है और जिसको सब मालूम है, उससे कहना क्या?

त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम्।

●

: 17 :

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक्।
त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्त्वार्पितम्।।
(10.14.39)

'सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण! आप सबके साक्षी है। इसलिए आप सब कुछ जानते हैं। आप समस्त जगत्के स्वामी हैं। यह सम्पूर्ण प्रपंच आपमें ही स्थित है। आपसे मैं और क्या कहूँ? अब आप मुझे स्वीकार कीजिये। मुझे अपने लोकमें जानेकी आज्ञा दीजिये।

श्रीकृष्ण तो बोले ही नहीं। ब्रह्मासे अपराध हुआ है। कृष्ण कब कहते हैं कि तुमने अपराध किया है? वे तो ब्रह्मा स्वयं मानते है कि मैंने अपराध किया है। कृष्णकी दृष्टिमें कोई अपराध नहीं। कभी-कभी मन ऐसा होता है।

एक बार मेरे पास कहींसे बड़ी सुन्दर कलम आगयी। देखनेमें भी अच्छी थी और काम भी अच्छा करती थी, कीमती भी थी। वृन्दावनमें था मैं। कलमकी चोरी हो गयी। देखो; हमको बिलकुल मालूम नहीं था कि कलम किसने चुराई है। कोई शंका भी मनमें नहीं थी। दादाने किसीके प्रति शंकाकी, पर वह झूठी निकली बिलकुल! ऐसा हुआ कि एक व्यक्ति जो कहीं बाहरसे हमारे पास दर्शन करनेके लिए आया करता था, वह आया। एक बार, दो बार, तीन बार, चार बार आया। परन्तु, वह आवे तो ऐसा संयोग बैठ जावे कि मैं उससे बात न करूँ। मेरे मनमें उसके ऊपर कोई शंका नहीं थी। परन्तु, ऐसा संयोग बैठे कि वह आवे और मैं उससे बात ही न करूँ। किसी दूसरे काममें लग जाऊँ, किसी दूसरेसे बात करने लग जाऊँ। अब उसके मनमें यह द्वन्द्व हुआ कि स्वामीजी समझ गये कि कलम मैंने ही ली है, इसलिए मुझसे बात

नहीं करते हैं। तो दो महीने बाद हाथ जोड़कर अपने आप ही रख गया कि महाराज! आप हमसे बात तो किया करो। अब मुझे तो मालूम नहीं था भाई।

नारायण! एक ईश्वरकी लीला भी तो सृष्टिमें चलती है न! देखो, किसीको देखकर मनमें प्रीतिका उदय होता है। किसीको देखकर मनमें विकारका उदय लेता है। किसीके शान्त चेहरेको देखते हैं तो चित्तमें भी शान्ति आ जाती है। तो यह तो अपने मनकी बात हुई न! सामनेवालेके मनकी बात थोड़े ही हुई। जिसके बारेमें हम ख्याल करते हैं कि यह शान्त है, उसको देखकर शान्ति आती है। ख्याल तो अपना ही है सारा। अब ब्रह्माजीके मनमें अपनी अशान्ति है। कृष्णने थोड़े ही कहा कि तुम चोर हो। अपना अपराध अपनेको काट रहा है।

अब कृष्णका विचार देखो! वृन्दावनमें आये हैं। यदि ब्रह्माजीसे बात करेंगे और कंसका कोई खुफिया सी आई डी का आदमी देख ले कि ब्रह्माजीसे बात कर रहे हैं। तो वह समझ जायेगा कि ये भगवान् ही यहाँ छिपे हुए हैं। ईश्वर हैं-यह पहचान जायेगा। तो सोचे कि नहीं बाबा, अपन तो चुप रहते हैं। तुम्हें जो कहना हो सो कह जाओ।

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक्।

अपनी महिमाको भी तुम्हीं जानते हो, जगत्‌को भी तुम्हीं जानते हो, हमको भी तुम्हीं जानते हो। क्योंकि, तुम 'सर्वदृक्' हो। 'सर्वं च दृक् च'-जगत्‌के अभिन्ननिमित्तोपादन कारण हो। जैसे स्वप्नमें मन ही उपादानकारण और मन ही निमित्तकारण। स्वप्नमें जो सामग्री है-एक चोर है, एक साहूकार है, एक देवता है, एक पुजारी है-वह कौन है? देवता और पुजारी दोनों अपना मन है। चोर और साहूकार दोनों अपना मन है। यह जगत् ईश्वरमें कैसा है?

जगदेतत्त्वार्पितम्

जैसे सोनेके पत्तरमें कोई श्लोक उभार दिया जाये-टांकी मार कर खोद दिया जाये, तो वह चाहे 'क' हो, चाहे 'ख' हो और चाहे 'ग' हो-

देखनेमें क, ख, ग, अलग-अलग हैं, लेकिन दर असल वह सोना है कि नहीं है? इसी प्रकार ईश्वरमें जो यह खचित दुनिया है, यह असलमें ईश्वर ही है। साबरमती आश्रममें गये। तो वहाँ गाँधीका एक चित्र, कहीं चीन, जापानसे बनकर आया हुआ-रखा था। जैसे साड़ीके किनारे पर मोर बना देते हैं। सूतका ही मोर होता है। सूतका ही फूल, सूतका ही पत्ता, सूतकी ही बेल बना देते हैं। तो वह बेल नहीं है, पत्ता नहीं है, फूल नहीं है, सूत है। वहाँ आश्रममें तो मैंने देखा कि बिलकुल सफेद कपड़ा आदमकद और उसमें गाँधीजी हाथमें डंडा लिये। कोई रंग नहीं था। केवल सूत्रका विन्यास ही ऐसा था, ऐसे ढंगसे वे सूत बैठा दिये गये थे कि उसमें मालूम पड़ता कि गाँधीजी हाथमें डंडा लिये और घुटने तक कटिवस्त्र पहने और दांडीकी यात्रा कर रहे हैं। अब उसमें गाँधीजीका डंडा कौन था? सूत। और, गाँधीजीका चलता हुआ पाँव कौन था? सूत। उसमें जो घुटने तक कटिवस्त्र पहने हुए थे। वह क्या था? वह भी सूत ही था। और, उनका सिर सूत, अरे पूरा शरीर सूत। वह रास्ता जो बना हुआ था, वह भी सूत ही था। रंग नहीं था।

सृष्टिमें यह जो आकृति विन्यास है, जो तरह-तरहकी शकल बनी हुई है, ये कैसी हैं? जैसे सूतमें सूतसे ही बनी हुई-ऐसे ढंगसे सूतको बैठा दिया गया-यह हमारा सूत्रात्मा इस ढंगसे विन्यस्त हो गया कि यह सारा प्रपंच अपने स्वरूपमें अध्यस्त दिखता है। ब्रह्मातिरिक्त कोई प्रपंच नहीं है। इस अर्थमें वेदान्तके मतमें जगत् सत्य ही है भला! माने अधिष्ठान सत्तासे सत् है और अध्यस्तरूपमें असत् है। यदि ब्रह्मसे पृथक् कोई जगत् नामकी धातु है, तो वह मिथ्या है। परन्तु, ब्रह्मरूपसे सब सत्य है। 'अधिष्ठान सत्तया सर्वं सत्यम्'। ये बच्चे वेदान्ती जो होते हैं कि अभी घटका द्रष्टा घटसे न्यारा है-ऐसा विवेक कर रहे हैं, उनकी समझमें आने लायक यह नहीं है।

जगदेतत्त्वार्पितम्।

'एतत् जगत् त्वयि अर्पितम्'-यह दुनिया कहाँ रह रही है? तुममें

रह रही है। अरे छोड़ो अभिनिवेश कि हम ऐसे बने रहें। सत्सङ्गमें आनेसे पहले मैंने एक पुस्तक हाथमें उठायी तो उसमें ऐसे लिखा था कि यदि इस शरीरका बाहरवाला हिस्सा भीतर और भीतरवाला हिस्सा बाहर होता तो कैसा होता? उसमें ऐसा लिखा था, सुन्दरियों और सुन्दरो! सजनी और साजन! दोनों इस बातका विचार करें कि यह चाम तो होता भीतर और जो भीतर छिपा हुआ है वह होता बाहर! तो क्या होता? उसमें यह बात बतायी थी-पीप, खून, माँस, हड्डी, विष्ठा, मूत्र जो भीतर भरा है, वह बाहरकी ओर होता और यह चमड़ी भीतरकी ओर होती। तो क्या होता? बोले कि हम अपने आप ही अपनेको थूक देते। एक और उसमें बहुत बढ़िया कल्पना थी-यह धरती है, उसपर दो लाल-कमल औंधे करके रखे हुए हैं, उनके ऊपर दो केलेके पेड़ उलटाकर रखे हुए हैं, उनके ऊपर एक सिंहासन है और उनके ऊपर कमर है शून्य। तो देखो लाल-कमल तो तलवे हैं और उलटे केलेके पेड़-ये जाँघ है, उसके ऊपर सिंहासन माने नितम्ब और उसके ऊपर शून्य माने कमर अर्थात् इतनी पतली कि मालूम ही न पड़े कि कमर है। उसके ऊपर दो स्वर्ण कलश, उसके ऊपर एक चन्द्रमा और उसके ऊपर काले बादल।' बोले कि यह क्या विचित्र रचना है? कहीं कोई तुक भी है इसमें? अरे, वह मैं-मैं करते-करते प्यारा लगने लगता है। न तो कोई जोड़ है, न तो कोई सम्बन्ध है।

आपको बतावें, हमने इस शरीरको अलग-अलग देखा है। यह घुटने हैं, यहाँ कोई जोड़ नहीं है। ऊपरकी हड्डी अलग और नीचेकी हड्डी अलग। जैसे दो चीजको किसीमें फँसा दिया जाय। कहीं कोई जोड़ नहीं है, कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है, कोई तुक नहीं है। यह तो अपना-अपना होनेसे जैसे अपना काला-कलूटा बेटा भी बड़ा सुन्दर प्यारा लगता है, वैसे यह मैं-मैं होनेसे बहुत अच्छा लगता है। अपनी बुद्धि सबसे अच्छी लगती है न! चाहे वह भ्रष्ट ही हो, परन्तु अपनी बुद्धि सबकी बुद्धिसे बड़ी लगती है। ऐसे हम दस चेलोंको जानते हैं जो कहते हैं कि गुरुजी ब्रह्मके

बारेमें समझते होंगे, पर यह बात ठीक-ठीक नहीं समझी। इस बारेमें हमारी बुद्धि बड़ी तेज है। तो अपनी बुद्धिको कोई छोटी नहीं समझता और दूसरेके धनको कम नहीं समझता। समझते हैं कि कुछ-न-कुछ तो छिपाकर रखा ही होगा। तो ऐसा बेतुका असम्बन्ध बेजोड़ असंगत जो शरीर है, इसको 'मैं-मेरा' मानकर हम देखते हैं। अगर ईश्वरकी नजरमें देखें, परमात्मासे जुदा कुछ नहीं है, पर जुदा मालूम पड़ता है।

अनन्यद् अन्यदा भासं, अनाकाशं अनश्वरं।

इसमें लम्बाई-चौड़ाई नहीं है, इसमें काल-वाल नहीं है। इसमें माया भी नहीं है। आश्चर्य है, आश्चर्य है। महान् ज्योतिः स्वरूप! यह किरणोंका खेल है। पर्दे पर आग नहीं लगी है। ज्ञानकी रश्मियाँ आग लगी दिखाती हैं। पर्दे पर बाढ़ नहीं आयी है। ज्ञानकी रश्मियाँ बाढ़ आयी दिखाती हैं। तूफान नहीं आया है। जन्मना नहीं है, मरना नहीं है, बढ़ना नहीं है। रिश्ता-नाता नहीं है। भोग नहीं है, संयोग नहीं है, वियोग नहीं है। एक परमात्मा सर्वरूपसे भास रहा है। बस-बस, यह दृष्टि जहाँ आयी, वहाँ तुम्हारा सारा दुःख दूर हो गया, अज्ञान दूर हो गया।

एक दिन एक भक्तजी आये। महाराज, भक्ति करते-करते जुग बीत गया, अभी तो दर्द सहा नहीं जाता है। आप जरा वेदान्तकी असंगताका उपदेश कीजिये तो मैं असंग हूँ, इस रोगसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने कहा कि भलमानुस, तुम रोओ भगवान्के सामने कि हे भगवान्! मेरा रोग दूर करो। तुम अपनी भक्ति-निष्ठा क्यों छोड़ते हो? क्या तुम्हारी निष्ठामें यह सामर्थ्य नहीं है कि तुम्हारे दर्दको दूर कर दे। काहेको दूसरेके पास जाते हो? जैसे कोई पत्नी पतिको छोड़कर दूसरेसे कुछ माँगने जाय, नौकर मालिकको छोड़कर दूसरेके पास जाय; चेला गुरुके पास ज्ञान प्राप्त न कर सके और दूसरेके पास जाय तो निष्ठाकी च्युति हो गयी न! अपनी निष्ठामें ही सम्पूर्ण सामर्थ्य होना चाहिए। जब हमारे पास सुख नहीं है तब न दूसरेके पास तुम भीख माँगने गये हो? हमारे पास ज्ञान नहीं है, तब न दूसरेके पास जाकर

माँगते हो! हमारे पास रहनेकी, जीवनकी शैली नहीं है, तब न तुम भिखारी बने हो।

असलमें यह भगवद्-दृष्टि है,

जगदेतत्त्वार्पितम्।

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन्
क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रु-
गाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते।।

(10.14.40)

'सबके मन-प्राणको अपनी रूप-माधुरीसे आकर्षित करनेवाले श्यामसुन्दर! आप यदुवंशीरूपी कमलको विकसित करनेवाले सूर्य हैं। प्रभो! पृथिवी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप समुद्रकी अभिवृद्धि करनेवाले चन्द्रमा भी आप ही हैं। आप पाखण्डियोंके धर्मरूप रात्रिका घोर अन्धकार नष्ट करनेके लिए सूर्य और चन्द्रमा दोनोंके ही समान हैं। पृथिवी पर रहनेवाले राक्षसोंको नष्ट करने वाले आप चन्द्रमा, सूर्य आदि समस्त देवताओंके भी परम पूजनीय हैं। भगवन्! मैं अपने जीवनभर, महाकल्प पर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ।'

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे प्रभु, कल्प-कल्प तक-जबतक सूर्य, चन्द्रमा रहे तबतक। नहीं, कल्पवृक्षसे लेकर आकके पेड़ तक-कल्पवृक्ष भी आप ही हैं और अर्क माने आकके पेड़ भी आप ही हैं-जो कुछ दिखायी पड़ता है, चोरसे लेकर साहूकार तक, चींटीसे लेकर ब्रह्मा तक, तृणसे लेकर प्रकृतिके जो कुछ है, सो सब तुम्हीं हो प्रभु! मैं कुछ नहीं, मेरा कुछ नहीं। जो कुछ है सो तोर। आपके चरणोंमें हमारा नमस्कार है।

इत्याभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः।
नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत।।

(10.14.41)

ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की। उनके चरणोंमें तीन परिक्रमा की और नमस्कार करके चुपचाप चले गये। भगवान्‌ने सिर जरा हिला दिया। **अनुज्ञाप्य स्वभुवं।**

सबसे बात करना बड़प्पनका लक्षण नहीं है। अपनी विशेषता अपनी बकवादसे जाहिर करना-यह बड़प्पनका लक्षण नहीं है। शंकरजीकी बारातमें जब सब देवता लोग आये तो कालिदासने बड़ा बढ़िया वर्णन किया है, विष्णु आये, ब्रह्मा आये, इन्द्र आये। शंकरजी तो दूल्हा बने बैल पर सवार थे।

कम्पेन मूर्ध्ना सत्पत्रयोनिम्

जब ब्रह्माजी आये तब शंकरजीने सिर हिला दिया।

वाचाहरिम्

विष्णु भगवान्‌से बोले कि अच्छा, कुशल मंगल है न! विष्णु भगवान्‌के घरमें तो कोई कुशल-मंगल पूछनेवाला है ही नहीं। केवल घरवाली लक्ष्मीजी हैं। उनको वे छोड़ते ही नहीं हैं एक मिनटके लिए। अब पता नहीं अविश्वास विष्णुका लक्ष्मी पर है कि लक्ष्मीका विष्णु पर है। यह तो वही दोनों जानें। लेकिन विष्णु हमेशा अपनी छाती पर लक्ष्मीजीको रखते हैं और लक्ष्मीजीने कहा कि यह जगह ठीक है। दूसरेको छातीसे लगावेंगे तो हमको मालूम पड़ जायेगा। बोले कि बाबा, घरमें शान्ति बनी रहे, तुम छाती पर बैठो।

इन्द्र आये तो शंकरजीने मुस्कराकर देख लिया। ब्रह्माजीके लिए सिर हिला दिया, विष्णुजीसे कुशल-मंगल पूछ ली और बाकी जितने देवता थे, उनकी ओर देख लिया। यह नहीं कि सबसे चबर-चबर बात करना। बहुत बात करना कोई बड़प्पनका लक्षण नहीं है। जब सामनेवाला चुप हो जाये, बोलनेका अवसर दे, अवकाश दे तब बोलना! 'बोलिए तो तब, जब बोलिबे की रीति जानो।' बोलना आता हो, तब बोलना चाहिए। परिणामका विचार करके बोलना चाहिए। प्रतिक्रियाका विचार करके बोलना चाहिए।

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्।

हमारे खेलमें बाधा मत डालो। अब जो पहले वाले बछड़े थे, उनको हाँककर श्रीकृष्ण पुलिन पर ले आये और वहाँ जो पहलेवाले सखा हैं, वे खा रहे थे। एक वर्ष बीत गया बिना श्रीकृष्णके! लेकिन श्रीकृष्णने ऐसी माया फैलायी-

कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः।

ऐसी माया है, आपको क्या सुनावें। कभी-कभी घड़ी देखते-देखते आँख लग जाती है और फिर खुलती है तो यह ख्याल होता है कि पाँच मिनट हुए होंगे। लेकिन घंटे भर बीत गया होता है और पता ही नहीं लगता है। कभी-कभी वर्षोंका सपना देख लेते हैं, आँख खुलती है तो मालूम होता है कि अभी तो दस ही मिनट हुए हैं, मैं जाग रहा था। दस मिनटमें इतना सपना आ गया। इसीका नाम है माया! यह दुनिया ऐसे ही चल रही है।

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहित चेतसः।

दुनियामें लोग भूल जाते हैं। माता-पिता मर जाते हैं तो लगता है कि अब तो हम अनाथ हो गये। वर्ष-दो-वर्षमें याद नहीं आती है। और, कोई याद दिलावे तो कहते हैं कि देखो न, ये हमको याद दिलानेके लिए कहते हैं। याद करना भी पसन्द नहीं करते हैं। तो इसी मायासे मोहित होकर यह सारा जगत् विस्मृतिके गड्ढेमें गिर रहा है। जो पीछे छूट गया सो छूट गया, जो आगे आनेवाला है उसका पता नहीं। एक दुनिया दिख रही है।

श्रीकृष्णको देखकर ग्वाल-बाल बोले, 'आओ-आओ, कृष्ण आओ! क्या बात है। वाह-वाह! शाबाश नन्दके लाड़ले! इतनी जल्दी बछड़ोंको लेकर आगया। अभी तो हमने एक ग्रास भी नहीं खाया है।

नैकोऽप्यभोजिकवल एहीतः साधु भुज्यताम्।

आओ, आओ, हमारे साथ बैठो।

अब तो ऋषिकेश भगवान् भी हँसने लगे। भगवान्को हँसी

आगयी और ग्वाल-बालोंके साथ बैठकर भोजन किया। उन्होंने भी कहा कि देखो, यह ग्रास मैं हाथमें लेकर गया था कि खाता भी रहूँगा और बछड़ोंको ढूँढता भी रहूँगा। क्योंकि वे कोई काशीके पंडित तो थे नहीं कि चलते-चलते न खायें। वे तो ग्वाले थे। आजकलके बाबू लोग समझते हैं कि हमहीं चलते-चलते खाते हैं। पहलेके लोगोंको यह विद्या नहीं मालूम होगी। हमने देखा-कानपुरमें एक पार्टी हुई थी तो बड़े-बड़े मिनिस्टर आये थे। तो वे महाराज अपने हाथसे तो निकालें और घूमते हुए खाते जा रहे हैं और गप्प हाँकते जा रहे हैं और चलते जा रहे हैं। न बैठनेके लिए आसनकी जरूरत, न थालीकी जरूरत, न पानी पीनेके लिए गिलासकी जरूरत। यह बड़प्पनकी निशानी है। यह लोग समझते हैं कि हमलोग क्लबमें जाते हैं, नाचते हैं तो बड़े अग्रगामी हैं। कृष्णको कोई नाचना थोड़े ही आता है? तुम्हारे लिए जो बड़प्पनका लक्षण है, उसके लिए कृष्णमें तुम मीन-मेख निकालनेवाले कौन होते हो!

अब जब कृष्ण लौटे तो दिखाते हैं कि एक वर्ष पहले जो अघासुर मारा गया था, उसका चाम पड़ा हुआ है। अध्यास तो मिट गया, जीवत्वका भ्रम तो मिट गया, परन्तु प्रतीतिमात्र शरीर बना हुआ है।

बर्ह प्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः
प्रोद्दामवेणुदल शृङ्गरवोत्सवाढ्यः।
वत्सान् गृणन्ननुगगीत पवित्र कीर्ति-
र्गोपीदृगुत्सव दृशिः प्रविवेश गोष्ठम्।।

(10.14.47)

सिरपर है मयूरका मुकुट, फूलोंसे अपने बालको सजा रखा है, बनकी धातुएँ अपने शरीरमें लगा रखी हैं, चित्र-विचित्र शरीर मालूम पड़ता है। कोई बाँसुरी बजा रहा है, कोई पत्ता बजा रहा है। बाँसके भी पत्ते जब छोटे-छोटे, नरम-नरम होते हैं तो उनको बजा सकते हैं। और एक नरकट होता है, जिसके भीतर छेद होता है, पहले लिखनेके लिए उससे कलम बनाते थे, उसके पत्ते बहुत बढ़िया बजते हैं। उसकी सीटी

बनाकर बच्चे बजाते हैं। खूब आनन्द आ रहा–आगे–आगे बछड़े चल रहे, पीछे–पीछे ग्वाल–बाल कीर्तिका गान कर रहे और श्रीकृष्ण मोर-मुकुट धारण किये, कानमें फूलका कुण्डल पहने, पीताम्बर कन्धेपर धारण किये, बाँसुरी बजाते हुए और मण्डलाकर नृत्य करते हुए–कभी पीछे घूम जाँय, कभी बायें घूम जाँय, कभी सखाके कन्धे पर हाथ रख दें और कभी उछलकर किसीके कन्धे पर चढ़ जाँय। कहीं खड़िया लगी है शरीरमें कहीं गेरु लगा है शरीरमें। जरा ले चलो अपने मनको। और, देख–देखकर गोपियोंके आनन्दका पारावार नहीं। उनकी आँखें आनन्दमें मग्न हो रही हैं। भई, जिससे प्रेम होता है उसको देखनेमें बड़ा आनन्द आता है।

आनन्द अपने हृदयमें होता है, दूसरेमें नहीं होता है। पर उसको जगानेका निमित्त क्या होता है? अपने प्रियका दर्शन, प्रियका नाम, प्रियका धाम, प्रियकी वस्तु। जैसे चन्द्रमाको देखकर समुद्रमें ज्वार आता है, वैसे हृत्देशस्थित जो आनन्द है, वह अपने प्रियतमको देखकर आँखमें छलक आता है। भीतरके आनन्दको जगानेवाला कौन? बोले कि प्रियतम! तो भीतरके ज्ञानको जगानेवाला कौन? महावाक्य! इसीको प्रमाण बोलते हैं।

'यशोदानन्दसूनुना'–यह यशोदानन्दका बेटा। कोई बोलता है यशोदाका बेटा, कोई बोलता है नन्दका बेटा और कोई बोलता है यशोदानन्दका बेटा। कोई संकोच थोड़े ही था। सब नाम लेकर पुकारते थे। ब्रजमें बोलते हैं, 'अरे ओ नंद के'!

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना।
हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजेजगुः।।

(10.14.48)

ब्रजमें आकर बोलने लगे कि इसने बड़े भारी अजगरको मार दिया और हमारी रक्षा कर दी। एक वर्षके बाद आकर ग्वाल–बालोंने यह बात कही।

यह जल्दी मैंने की है सुनानेमें क्यों जल्दी की है? उसका भाव बता दूँ। एक महात्मा कहते थे कि जब कथा बन्द करनी हो तो भगवान्‌को खिला-पिलाकर, मैयाको मिलाकर, उसको गोदमें सुलाकर तब कथा बन्द करनी चाहिए। नहीं तो कथामें तुम जैसे भगवान्‌को छोड़ोगे वैसे ही वे कितने दिनों तक रह जायेंगे। तो संतने कहा कि कथा जहाँ-तहाँ नहीं बन्द करनी चाहिए। कथा ऐसी जगह बन्द करनी चाहिए कि भगवान् घरमें हों, भोजन कर चुके हो। अन्तमें थोड़ा दूध भी पिलाना और मैयाकी गोदमें हों, तब कथा पूरी करना।

लेकिन; इसके बाद एक बहुत बढ़िया प्रसंग है। उसको सुनानेकी लालच अपने मनमें थी, इसलिए भी यहाँ तक आगया। वह प्रसंग क्या है? तो आप प्रश्न सुन लो पहले! राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजी महाराजसे प्रश्न किया-

ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत्।
योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम्।।

(10.14.49)

दुनियामें देखने आता है कि सब लोग अपने-अपने बच्चेसे प्रेम करते हैं। परन्तु, व्रजवासियोंमें यह देखनेमें आया कि जबतक उनके घरमें अपने बच्चे थे, तबतक तो वे नन्दनन्दन श्रीकृष्णसे ज्यादा प्रेम करते थे और जब श्रीकृष्ण उनके बच्चे बनकर आ गये तो कृष्ण बने बच्चोंको ज्यादा प्रेम करने लगे। गौएँ अपने बछड़ोंसे ज्यादा प्रेम नहीं करती थीं। परन्तु; जब कृष्ण बछड़े बनकर आ गये तो गौएँ उन बछड़े बने हुए कृष्णसे प्रेम करने लगीं। इसका मतलब है कि यह प्रेमका चुम्बक है। ऐसा लगता है कि कृष्णके शरीरमें प्रेमको आकृष्ट करनेवाला कोई चुम्बक था। गायका प्रेम खींच लें, गोपीका प्रेम खींच लें, मैयाओंका प्रेम खींच लें, ग्वालोंका प्रेम खींच लें, बाप-दादाओंका प्रेम खींच लें।

अरे! ब्रजमें तो ऐसा वर्णन है कि चिड़िया जो है, वह देखती ही रह

जाती थी और गौएँ देखती रह जाती थीं। मोर नाचने लग जाते थे। कोयल कुहकने लगती थीं। ऐसा वर्णन है श्रीमद्भागवतमें कि श्रीकृष्ण जिस पेड़के नीचे निकलते थे, पेड़ झुक जाते थे। और यदि किसी लताको जाकर छेड़ दें तो वह लता पेड़ छोड़कर कृष्णके शरीरमें लिपटनेकी कोशिश करे। गाय घास चरना छोड़ दे, बछड़ा दूध पीना छोड़ दे और गोपी अपने पतिको छोड़ दे और मैया अपने बेटेको छोड़ दे और भोजन करनेवाला भोजन करना छोड़ दे-श्रीकृष्णमें इतना चुम्बक।

प्रश्न यह किया गया कि दूसरेके बालक कृष्ण अपने बालक भी नहीं-ऐसे कृष्णमें इतना प्रेम कैसे हो गया? अपने तनसे जो पैदा हुए, अपने जो हृत्-पिण्ड, अपने दिलके टुकड़े-उनसे भी इतना प्रेम नहीं और कृष्णसे इतना प्रेम हुआ-इसका कारण क्या? प्रश्न तो आपके ध्यानमें आगया। अब अगले प्रसंगमें श्रीशुकदेवजी महाराज प्रश्नका उत्तर देते हैं। यह उत्तर क्या है-यह तो वेदान्तका सार है, प्रेमका सार है। जिस भूमिकामें बैठकर उत्तर दिया गया है, उस भूमिकामें बैठ जाने पर ज्ञान और प्रेमका भेद नहीं रह जाता।

असलमें जहाँ ज्ञान और संसारका भेद है, वहाँ भी मूर्खता है। भेदमात्र ही मौर्ख्य है, और क्या है? तो जहाँ प्रेम और ज्ञानका भेद है, वहाँ थोड़ी-थोड़ी मूर्खता तो माननी पड़ेगी न! तो शुकदेवजीने इतनी ऊँची भूमिकामें बैठकर समझाया है। प्रेम और ज्ञानकी खिचड़ी नहीं है यह। अच्छा, नारियलमें जो पानी होता है, वह क्या शक्कर और पानीका बनाया हुआ शर्बत है? शर्बतमें मिठास होती है, परन्तु बाहरसे मिलायी हुई होती है। ज्ञानकी एक ऐसी अवस्था है, जहाँ आनन्द अध्याहार्य नहीं है। 'अध्याहार्य' माने उधार। आनन्द जहाँ उधार लिया हुआ नहीं है। ज्ञानस्वरूप आनन्द है और आनन्द स्वरूप ज्ञान है। जहाँ ज्ञान और आनन्दमें, आत्मा और परमात्मामें, सत् और चित्में जहाँ भेद नहीं होता-ऐसा प्रेम। ऐसा प्रेम जहाँ अहं मर जाता है। अच्छा! आप

क्या समझते हैं कि आपका अहं मर जायेगा तो आपका प्रियतम जिन्दा रहेगा? अच्छा, अगर प्रियतम मर जाये तो क्या अहं जिन्दा रहेगा? ये दोनों एक साथ मरते हैं और एक साथ जिनदा होते हैं। मर-मरकर जिन्दा होते हैं, जिन्दा हो-होकर मरते हैं। न मरते हैं, न जिन्दा होते हैं, एक रस-एक रहते हैं-ऐसी इनकी स्थिति है।

तो आओ, जहाँ प्रेम और ज्ञान, जहाँ मैं और तुम, जहाँ आत्मा और परमात्मा, जहाँ चेतन और आनन्द जहाँ सत्ता और चित्ता एक है, जहाँ प्रेम-ही-प्रेमकी सृष्टि हो तो उस भूमिकामें बैठकर श्रीशुकदेवजी महाराज इस प्रश्नका उत्तर देते हैं।

अब वह उत्तर हम आपको कल सुनावेंगे।

●

: 18 :

श्रीकृष्ण गोकुलमें पहुँच गये। खान-पान, लालन-पालन, शयन सब हो गया। अब राजा परीक्षित्‌का एक प्रश्न है। प्रश्न यह है कि अपने पुत्रसे भी अधिक प्रेम कृष्णमें क्यों? सारे ब्रजवासी करते हैं, सारी गौएँ करती हैं? पक्षी प्रेम करते हैं। मार्गमें जब कृष्ण निकलते हैं तो चिड़िया अपने बच्चेको चारा देना छोड़कर उनकी ओर देखने लगती है। गाय घास चरना छोड़कर उनकी ओर देखने लगती है। बछड़ा दूध पीना छोड़कर उनकी ओर देखने लगता है। लता वृक्षसे लिपटना नहीं चाहती है, कृष्णके शरीरसे लिपटना चाहती है और वृक्ष अपने फल, फूल, पत्ते सहित कृष्णकी ओर झुक जाते हैं। कमल खिल जाते हैं, यमुनाका बहना बन्द हो जाता है। धरतीको रोमांच हो जाता है। सूर्य, चन्द्रमा ठिठक जाते हैं। तो यह श्रीकृष्णके प्रति इतना प्रेम, इतना प्रेम ब्रजवासियोंका क्यों? इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए श्रीशुकदेवजी महाराज बोलते हैं।

आपको यह बात मैंने सुनायी होगी कि जब मनुष्य अपने जीवनमें थोड़ेसे बँटवारे कर लेता है-कर्म तो करेंगे धन कमानेके लिए और प्रेम करेंगे भोग करनेके लिए और सत्संग करेंगे भगवान्‌को पानेके लिए-तो जीवन छिन्न-भिन्न हो गया। असलमें जब कर्म भी भगवान्‌के लिए होंगे, जब भोग भी भगवान् के लिए, जब प्रेम भी भगवान्‌के लिए होगा और सत्संग ज्ञान भी भगवान् के लिए होगा तो जीवन भगवान्‌की ओर चलेगा। ये थोड़ी देर तो सत्संग करते हैं और

वासना है भोगकी, कर्म करना है संसारके लिए सत्संग बेचारा छिन्न-भिन्न जाता है।

देखो, धर्मका दो रूप है-एक बहिरंग और एक अन्तरंग। बहिरंग रूप जो है, वह चरित्रको शुद्ध करनेवाला है और अन्तरंग रूप जो है, वह मनको शुद्ध करनेवाला है। तो योगाभ्यासके द्वारा हम विषयरहित सत्तामें स्थित हो जाते हैं और यह प्रेम जो है, यह मनमें जो बाहरके विषयोंकी वासना है, उस वासनाको शुद्ध करता है, तब हम शुद्ध आनन्दरूपमें स्थित हो जाते हैं और ज्ञान द्वैतके अस्तित्वका ही शोधन करता है। दूसरा कुछ है ही नहीं। भगवान्‌में प्रेम होनेसे वासना शुद्ध होती है और धर्मानुष्ठान करनेसे चरित्र और जीवन शुद्ध होता है और ज्ञान होनेसे वस्तुका स्वरूप शुद्ध होता है।

तो आओ, थोड़ी-सी बात यह सुनाते हैं कि कृष्णसे आखिर इतना प्रेम क्यों?

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः।

(10.14.50)

सबसे पहले यह देखो कि सबसे प्यारा कौन? सबसे प्यारा अपना आपा। बेटाके लिए मोह होता है, मरने पर थोड़े दिन रो लेते हैं। फिर दूसरे बेटेके लिए कोशिश करते हैं। पति-पत्नीका वियोग होता है तो थोड़े दिन रो लेते हैं। फिर दूसरे पति, पत्नीके लिए प्रयास करते हैं। सब सती सावित्री नहीं होते। एक प्रकारसे पैसा नहीं मिलता है तो दूसरे प्रकारसे कोशिश करते हैं। उसमें आत्मा प्रधान होती है।

एक बार अकबरने बीरबलसे पूछा कि अगर दोनोंकी दाढ़ीमें साथ-ही-साथ आग लगे तो तुम पहले किसकी बुझाओगे? वह बोला कि अपनी बुझावेंगे जहाँपनाह! पहले अपनी बुझा लेंगे तब आपकी बुझानेकी बात आवेगी। तो धन प्यारा है, बेटा प्यारा है-यह क्यों प्यारा है? उसमें भी अपनी आत्माका थोड़ा अंश मालूम पड़ता है। भई, अपने दिलका टुकड़ा है बेटा, और अपनेको खाना-पीना देकर पालन

करनेवाला है कल। परन्तु, बेटा भी जब दुःख देने लगता है तो उसको घरसे निकाल देते हैं। बँटवारा कर देते हैं, मुकदमा लड़ लेते हैं, मार-पीट हो जाती है। पर, अपनेको तो देखते ही हैं।

अपने शरीरके लिए हितकारी होनेके कारण ही हम बेटे और धनसे प्रेम करते हैं। अपना प्रेम शरीरसे है, अपना प्रेम धन और बेटेसे नहीं है। प्रेमका मुँह अपनी ओर है, दूसरेकी ओर नहीं है। अपने-अपने शरीरसे जितना प्रेम देखनेमें आता है, उतना प्रेम जो 'मेरे कहे जाते हैं उन पुत्रोंसे, धनोंसे, घरोंसे नहीं होता है।

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम।
यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये चतम्।।
(10.14.52)

जो लोग देहात्मवादी हैं, वे अपने देहसे ही सर्वाधिक प्रेम करते हैं, अन्य प्रिय कहे जानेवाले सम्बन्धियोंसे नहीं।

यह देह सब कुछ नहीं है। यह तो कोटको जरा उलटा करके देखो, तब पता लगेगा। एक दिन वृन्दावनमें हम अपने तख्ते पर बैठे हुए थे। उसपर बहुत बढ़िया पलंग पोश बिछाया हुआ था। इतनेमें आगयीं कानपुर वाली माँजी। उन्होंने पाँव छूआ और झट पलंगपोश उलट दिया। उलट दिया तो उसके नीचे जो बिस्तर बिछा हुआ था, वह वही था जो पन्द्रह वर्ष पहले उन्होंने बिछाया था। वे बोली कि यह क्या? आपके कैसे शिष्य हैं? इतना पुराना, इतना गंदा। बड़ी विचित्र, अद्भुत लीला होती है। तो यह कोट जो पहने हुए हो-क्या ख्याल है? यह काला चाम, यह गोरा चाम, यह चमकता चाम। इस कोटको जरा उलटकर देखो। हे भगवन्। इसके भीतर वह मजा है। अच्छा, एक व्यवहारकी बात आपको और भी बताते हैं-आपका चाहे कोई प्रेमीसे प्रेमी हो, मित्रसे मित्र हो, माँ-बाप हो, पति-पत्नी हो-उसके कहनेसे आप बुरा काम मत करना कभी। चोरी मत करना। इसका क्या नतीजा निकलता है, आप जानते हैं? आप उसके कहनेसे जिसदिन चोरी करोगे, उस दिन

तो वह आपकी खूब तारीफ करेगा-वाह-वाह-वाह, हमारी बात मानते हैं, हमसे बहुत प्रेम करते हैं। हमारे कहनेसे चोरी कर लिया। कितना प्रेम है हमसे। लेकिन जिस दिन उसके घरमें कोई चोरी होगी, उसदिन पहली शंका वह आप ही पर करेगा। पड़ोसमें भी चोरी होगी तो वह आप ही पर शंका करेगा। क्यों करेगा? अरे हमारे कहनेसे जैसे की थी, ऐसे यह भी किसीके कहनेसे कर ली होगी।

किसीके कहनेसे बुरा काम नहीं करना चाहिए! अपने सौजन्यको तुम स्वयं सुरक्षित रखो। अपनी सज्जनताको तुम स्वयं सुरक्षित रखो। तुम्हारे सौजन्यका आदर दूसरा करनेवाला कोई नहीं है।

देहात्मवादिनां पुंसाम्-जो देहको आत्मा माननेवाले हैं उनसे पूछो तुम्हारा प्रियतम कौन है? बोले कि देह। जितना प्यारा देह है, उतना प्यारा न बेटा है, न पति है, न पत्नी है, न धन है, न सगा-सम्बन्धी है, न कोई यार-दोस्त है। यह प्रेमका प्रवाह आत्माकी ओर है। परन्तु, यह तो देह मरनेवाला है। हमने ऐसा देखा है कि सत्तर वर्षकी जिनकी उम्र हो जाती है, उसको कहें कि अब तो बुढ़ापा आगया। तो वह कहता है कि अभी क्या महाराज, देखो नब्बे वर्षके तो वे हैं, सौ वर्षके तो हैं और अभी आप सत्तर ही वर्षमें हमको बुड्ढा बताते हो। क्या मालूम है कि मौत सिरपर सवार है। यह साधु-महात्मा लोग भी नहीं जानते हैं। किसी-किसीको थोड़ा आभास हो जाता है-यह बात दूसरी है। ज्यादा समझदारके चक्करमें नहीं पड़ना चाहिए। जितनी दुनिया दिखती है, उतनी मालूम पड़ती है। सब कालकी धारामें बहते जा रहे हैं। यहाँ कौन टपसे गिर पड़ेगा-इसका कोई ठिकाना नहीं है। किसीके साथ तुम अच्छा करोगे तो तुम्हारा मन प्रसन्न होगा। पर देखा यह है कि मरते दम तक यह आत्माकी जो अमरता है, वह देहमें आजाती हैं। अपनी अमरता देहमें भासने लगती हैं। पाँच मिनट पहले तक मनुष्यको यह ख्याल रहता है कि मैं जाऊँगा। मैं अच्छा हो जाऊँगा।

एक वैद्यजी थे। उनको बड़ी अच्छी-अच्छी जड़ी-बूटी मालूम थी। वे जिन्दगी भर किसीको बताते नहीं थे। तो जब मरने लगे तो उनको कस्तूरी दी गयी कि अब तो बता जाओ, लोगोंका उपकार हो जाय। तो जब कस्तूरी खिलाने पर थोड़ी ताकत आयी तो मुस्कराए और बोले कि तुम लोग क्या समझते हो अभी मैं मर जाऊँगा। गोविन्दाय नमो नमः। नहीं बताया। तो, **यज्जीर्यत्यपि देहेस्मिन् जीवितासा बलीयसी**-भले ही काबूके बाहर हो गया, लेकिन जिन्दा होनेकी आशा जो होती है, वह आत्माका अमृतत्त्व ही देहमें आरोपित होता है, इसलिए अविवेक दशामें मालूम ही नहीं पड़ता। और, जब विवेक हो गया तो, '**तर्ह्यमौनात्मवत् प्रियः**' विवेक करके देखो कि देह 'मैं' नहीं हूँ, देह 'मेरा' है। इसके लिए पाप करते हो, चोरी करते हो, व्यभिचार करते हो। जिस शरीरके लिए दूसरोंको ठगते हो-विवेक करके देखोगे कि यह तुम्हारा नहीं है। तुम जब अपनेको देहसे अलग देखोगे कि आत्मा प्रिय है, तब धर्मसे जुड़ोगे, सद्भावनासे जुड़ोगे, सद्गुणसे जुड़ोगे।

अपनेको दुःख देनेवाला कोई नहीं है। मनुष्य अपने आपको दुःख देता है। एक गरीबने हमसे कहा कि देखो, यह अशरफी पड़ी है, यह उठाकर तुम हमको दे दो। मैंने कहा कि नहीं देंगे तुमको। हम तुम्हारे लिए चोरी करें? तो उसने कहा कि तुम हमारी गरीबीका तिरस्कार करते हो। मैंने कहा कि हम तुम्हारी गरीबीका तिरस्कार नहीं करते हैं, हम तुम्हारे महात्मापनका सम्मान करते हैं। यह अपना देह भी छूट जाता है। कौन पकड़कर रख सकता है? मरते समय हाथ ढीले पड़ जाते हैं, मुट्ठी खुल जाती है। इससे सिद्ध क्या हुआ? इससे सिद्ध यह हुआ कि देहके सम्बन्धी प्यारे नहीं हैं। अरे, उनका तो कोई मतलब होता है तो झूठा-ही रिश्ता जोड़ते हैं। और, यह देह भी प्यारा नहीं है। तब प्यारा कौन है? तो बोले, **तस्मात् प्रियतमः स्वात्मा**। कृष्णसे प्रेमकी बात बता रहे हैं। सबसे ज्यादा प्रियतम कौन है? दुनियामें सब प्राणी अपनेसे प्रेम करते

हैं। चींटीको भी दबाओ तो वह भागती है। जूआँको भी पकड़ना चाहो तो वह छिपता है, बिच्छू भी भागता है, साँप भी भागता है। क्यों भागता है? अपनेको बचाना चाहता है।

तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम्। (10.14.54)

उसी आत्माके लिए हमको जिससे सुख मिलता है, उसके साथ सम्बन्ध रखते हैं और जिससे दुःख मिलता है, उससे सम्बन्ध धीरे-धीरे ढीला पड़ जाता है। पत्नी चाहे कि हम अपने पतिको कोसेंगे, रोज दुःख देंगे। दिनभर तो बेचारा ऑफिसमें रहता है और वह सोचती है कि जब वह आवेगा तो कौन-सी ऐसी बात है कि जिसके कहनेसे उसको दुःख हो, वह चिढ़े। तो जो दिनभर चिढ़ाने-कुढ़ाने, कोसने, दुःख देनेकी बात ही जो सोचती रहेगी, उसके साथ कबतक सम्बन्ध बना रहेगा? अरे भई, कुछ खिलावे, कुछ पिलावे, कुछ सुख दे, कुछ हँसे, कुछ मुस्कराये! यह दुनियाकी रीति है।

तो सारे सम्बन्ध जो दुनियाके हैं, वे अपने सुखके लिए हैं। अपना आपा कौन है?

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्। (10.14.55)

अरे! जरा अपने आत्माको ही झाँक लिया। 'आत्मा' माने छोटा आत्मा, जीवात्मा। जीवात्मा तो जरा मोटा है, स्थूल है, जरा गोल-मटोल है, सोपाधिक है और वह निरुपाधिक आत्मा-जरा सूक्ष्मतामें है यह कृष्ण। अपने प्राणोंसे भी प्यारा कृष्ण, अपनेसे भी प्यारा कृष्ण! अपने आपसे ही प्यारा कृष्ण! '**कृष्णमेनमवेहि**' अब देखो, यहाँ वेदान्त और भक्ति एक हो गयी। सबकी आत्माका नाम श्रीकृष्ण है और श्रीमद्भागवतमें जगत्के कल्याणके लिए उसीका साकारके रूपमें वर्णन किया गया है।

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नुचरिष्णु च। (10.14.56)

एक तरहके लोग कृष्णको शकल-सूरतसे पहचानते हैं और एक तरहके लोग तत्त्वसे उसको पहचानते हैं। एक बालकके सामने सोनेकी

बनी मूर्ति रख दो तो यह देखेगा कि आँख कैसी बनी है, मुँह पर कैसी मुस्कराहट है, ललाट कितना बड़ा है, देखनेमें कितनी सुन्दर मूर्ति है। वह छातीसे लगावेगा, वह चूम लेगा। बालक उस मूर्तिके बारेमें इतना ही जानता है। और, घरके लोग जानते है कि पाँच हजारमें बनी यह सोनेकी मूर्ति है। बच्चा सोनेको नहीं पहचानता, शकल-सूरतको पहचानता है। तो जो लोग श्रीकृष्णको केवल शकल-सूरतसे नहीं, जिस धातुसे सच्चिदानन्द धातुसे बने हुए हैं ऐसा जानते हैं, उनके लिए तो चर भी कृष्ण हैं और अचर भी कृष्ण हैं। '**भगवद्रूपमखिलं**' उनके लिए तो भगवान्के सिवाय और कुछ नहीं है। '**नान्यद् वस्त्विह किंचन**'-दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है। इसका अर्थ हुआ-ब्रह्म ही कृष्ण है और कृष्ण ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही आत्मा है। अपने आपसे तो सुख लोगे भाई! अपने आपसे तो प्रेम करोगे।

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः।
तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद् वस्तु रूप्यताम् ।।

(10.14.57)

दुनियामें जितनी भी वस्तुएं होती हैं, उनका भावार्थ अपने कारणमें स्थित होता है। *'भवति इति भवः कारणं तस्मिन् भवति स्थितः'।* भवति माने कारणमें स्थित। 'तस्यापि भगवान् कृष्णः'-उस कारणका भी जो कारण है, उसका नाम कृष्ण है। कृष्णके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। अगर कृष्णको तुम गाली दे रहे हो तो अपनेको गाली दे रहे हो। कृष्णसे प्रेम कर रहे हो तो अपनेसे प्रेम कर रहे हो। क्योंकि, कृष्ण अपना आपा भी है और सब कुछ भी है।

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं
महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं
पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्।।

(10.14.58)

जब तुम निर्गुणको सगुण बना दो, तब तुम्हारे प्रेमकी महिमा है। जब दूरको निकट कर ले, तब प्रेम है। जब परायेको अपना बना ले, तब प्रेम है। जब निराकारको साकार बना ले, तब प्रेम है। प्रेमका सामर्थ्य-विलक्षण है। प्रेम सारी सृष्टिको बदल सकता है। प्रेमने विष्णुको शालग्राम बनाकर रख दिया। प्रेमने शिवको नर्मदेश्वर बनाकर रख दिया। प्रेमने कृष्णको जगन्नाथ बनाकर धर दिया। न हाथ, न पाँव, न मुँह, न आँख। प्रेममें ईश्वरको साकार बनानेका सामर्थ्य है। निर्गुणको सगुण बनानेका सामर्थ्य है। आत्माको जगत् बना दे-यह सारा जगत् आत्मरूप हो जाय-यह सामर्थ्य प्रेममें है।

जिन्होंने श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण की, उनके लिए यह भवसागर बछड़ेके खुरके बराबर हो जाता है। '**परं पदं पदं**'-परं पदं-उनके पाँवके नीचे आजाता है और 'यद् विपदां पतं तद् तेषाम् न भवति'-उनके जीवनमें कोई विपत्ति कोई दुःख नहीं होता है। यह परमानन्द मार्ग है।

जो दूसरोंसे भीख माँगे, सो कंगाल। जो दूसरेसे सुख चाहे सो कंगाल। और, जो भिखारी लोग होते हैं, वे कपड़ा बिछाकर सड़क पर बैठते हैं-आप लोगोंने देखा होगा। तो क्या होता है कि आते-जाते कोई पैसा डाल गया, तो कोई दाल-चावल डाल गया, कोई गेहूँ डाल गया। आप अपने ज्ञानका कपड़ा फैलाकर बैठे हैं और उसमें कोई दुनियाका शब्द डाल गया, कोई स्पर्श डाल गया, कोई रूप डाल गया, कोई रस डाल गया, कोई गन्ध डाल गया। यह तुम्हारा ज्ञान है कि भिखारी है? तुम्हारा प्रेम क्या है? तुम्हारा प्रेम प्रेम नहीं है, कंगाल है। तुम्हारा ज्ञान ज्ञान नहीं है, कंगाल है। तुम्हारी सत्ता सत्ता नहीं है, कंगाल है। तुम्हारे भीतर जो है, उसको निकालो, बाहर करो। धन लुटा दो गरीबोंको। रोटी खिला दो। शरीर लगा दो लोगोंकी सेवामें। अपने प्रेमको सबके ऊपर बिसेर दो। तुम तो मँगते बनकर दुनियामें बैठे हो! तुम्हारा ज्ञान भिखारी, तुम्हारा सुख भिखारी, तुम्हारा प्रेम भिखारी, तुम्हारा जीवन भिखारी। जरा एक बार समुद्रमें ज्वार आने दो!

एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारे-

रघार्दनं शाद्वलजेमनं च।

व्यक्तेतरद् रूपमजोर्वभिष्टवं

शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ।।

(10.14.60)

'भगवान् श्रीकृष्णकी ग्वालबालोंके साथ वनक्रीड़ा, अघासुरको मारना, हरी-हरी घाससे युक्त भूमिपर बैठकर भोजन करना, अप्राकृत रूपधारी बछड़ों और ग्वालबालोंका प्रकट होना और ब्रह्माजीके द्वारा की हुई इस महान् स्तुतिको जो मनुष्य सुनता और कहता है-उस-उसको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है।'

●

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं सम्प्रति उपलब्ध साहित्य

वेदान्त	
मुण्डक सुधा	110.00
माण्डूक्य प्रवचन (आगम प्रकरण) भाग-1	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (वैतथ्य प्रकरण) भाग-2	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अद्वैत प्रकरण) भाग-3	150.00
माण्डूक्य प्रवचन (अलात शान्ति) भाग-4	100.00
ईशावास्य प्रवचन	20.00
ईशानुभूति (ईशावास्योपनिषद् के आधार पर)	40.00
केनोपनिषद्	70.00
कठोपनिषद् (दो भागोंमें)	250.00
बृहदारण्यकोपनिषद्	60.00
श्वेताश्वरोपनिषद्	150.00
कैवल्योपनिषद्	10.00
छान्दोग्य-बृहदारण्यक एक दृष्टिमें	10.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 1	
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 2	75.00
ब्रह्मसूत्र प्रवचन-भाग 3	60.00
दृग दृश्य विवेक	100.00
विवेक कीजिये (विवेक चूड़ामणि प्रवचन)	100.00
अपरोक्षानुभूति प्रवचन	80.00
वेदान्त बोध	60.00
साधना और ब्रह्मानुभूति	70.00
महाराजश्रीकी डायरीसे	6.00
आनन्द सूत्र	15.00
आनन्दानुभव	20.00
जीवन्मुक्ति विवेक	75.00
अष्टावक्रगीता	25.00
अष्टावक्रगीता प्रवचन	80.00
मिथ्यात्व ज्ञान	20.00
ध्यान और ज्ञान	
श्रीमद्भगवद्गीता	
गीता-रस-रत्नाकर (सम्पूर्ण गीता)	130.00
सांख्ययोग (गीता अध्याय-2)	200.00
कर्मयोग (गीता अध्याय-3)	60.00
ध्यानयोग (गीता अध्याय-6)	150.00

ज्ञान-विज्ञान-योग (गीता अध्याय-7)	130.00
अक्षर ब्रह्मयोग (गीता अध्याय-8)	50.00
राजविद्या राजगुह्ययोग (गीता अध्याय-9)	90.00
विभूतियोग (गीता अध्याय-10)	175.00
भक्ति योग (गीता अध्याय-12)	90.00
ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (गीता अध्याय-13)	120.00
पुरुषोत्तमयोग (गीता अध्याय-15)	120.00
दैवी-सम्पदयोग (गीता अध्याय-16)	50.00
दैनिक जीवनमें गीता	60.00
योगः कर्मसु कौशलम्	20.00
मामेकं शरणं ब्रज	20.00
गीतामें भक्तिज्ञान समन्वय	30.00
गीतामें मानवधर्म	25.00
वासुदेवः सर्वम्	10.00
मया ततमिदं सर्वं (मेरा सब ताना-बाना)	25.00
गीता दर्शन - भाग 1, 2, 3	600.00

श्रीमद्भागवत

भागवत दर्शन (दो भागोंमें)	450.00
भागवत - दशम स्कन्ध	150.00
मुक्ति स्कन्ध (भागवत-एकादश स्कन्ध)	270.00
रास पंचाध्यायी	150.00
श्रीकृष्णलीला रहस्य	45.00
भागवतामृत	70.00
भागवत व्यंजन	50.00
भागवत सर्वस्व	25.00
गोपीगीत	60.00
वेणुगीत	40.00
युगलगीत	50.00
गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	20.00
उद्धवगीत	25.00
कपिलोपदेश	60.00

- प्रधान कार्यालय : **सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट,** विपुल 28/16 बी. जी. खेरमार्ग मालाबार हिल, मुम्बई-400006, फोन : (022) 23682055, मो. : 09619858361
- शाखा कार्यालय : **सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट,** श्रीअखण्डानन्द पुस्तकालय, आनन्द कुटीर, मोतीझील, वृन्दावन-281124 फोन : (0565) 2913043, 2540487, मो. : 09837219460



अखण्डानन्द सरस्वती

ब्रह्म-स्तुति

ब्रह्माजी कहते हैं–'हे भूमन्! 'भूमन्' भगवान्‌के लिए संबोधन है। मैं बड़े–बड़े योगी महापुरुषोंको जानता हूँ जो पहले तो बड़ी–बड़ी साधना करते रहे, लेकिन उनको शान्ति नहीं मिली। किन्तु जब उन्होंने परम्परासे दीक्षा लेकर सारे कर्मोंको, सारी चेष्टाओंको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पणकर दिया। अब भगवान्‌को अर्पण करनेकी बात कहाँसे आयी? 'निजकर्म लब्धया'–उन्होंने जो सदाचारका, धर्मका पालन किया था, उसके फलस्वरूप ही यह दृष्टि उनको प्राप्त हुई कि छोड़ो सारे चक्करोंको। भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लो। और, उन्होंने भगवान्‌को सब अर्पण कर दिया। इसके पहले वे भटक रहे थे। पद्मपुराणके माहात्म्यमें यही तो कहा है–ऋषियोंने सूतजीसे पूछा कि महाराज, हमने सुना है कि लोग भगवान्‌का साक्षात्कार कर लेते हैं और काम, क्रोध, लोभ पर विजय पा जाते हैं उनको शान्ति मिल जाती है। और, हम तो सौ–सौ वर्षसे लगे हुए हैं, कुछ भी नहीं मिला अबतक! उनको यह सब कैसे मिल जाता है–आप यह रहस्य बताइये? इसी प्रश्नके उत्तरमें सूतजीने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया है....

पूज्य महाराजश्रीकी कर्ण–प्रिय–अमृतरसवाणी अलौकिक आनन्द प्रदान करनेवाली बन पड़ी है। आप भी इसका रस लें।

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति
सत्साहित्यप्रकाशनट्रस्ट

आनन्द कानन प्रेस
टेढ़ीनीम, वाराणसी • फोन : 2392337